वीरसिंह देव चरित

[सटीक]

श्याम सुन्दर द्विवेदी
लेक्चरर सेन्ट टॉमस इटर कालेज
शाहगंज, जौनपुर

प्रकाशक
मातृ-भाषा-मंदिर, दारागंज प्रयाग

प्रथमबार] २०१३ [मूल्य ४॥)

महाकवि केशवदास रचित

वीरसिंह देव चरित

प्रस्तावना

रचनाकाल :—इस ग्रन्थ को लिखना केशव ने वसत ऋतु के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, दिन बुधवार, संवत् १६६४ मे शुरू किया था।

२—'संवत् सोरह सै तैंसठा। बीति गए प्रगटे चौसठा ॥
अनल नाम सवत्सर लग्यौ। भाग्यो दुख सब सुख जगमग्यो ॥
ऋतु वसत है स्वच्छ विचार। सिद्धि जोग मिति वसु बुधवार ॥
सुकुल पच्छ कवि केशवदास। कीनो "बीरचरित्र प्रकास' ॥

केशव के अन्य ग्रन्थों के आधार पर उनकी आलोचना न करके वीरसिंह देव चरित ग्रन्थ के आधार पर आलोचना प्रस्तुत करना ठीक समझा। इसी हेतु वीरसिंह देव चरित पर विहगम दृष्टि डालकर उसे सक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। ग्रन्थ मे किन-किन विषयों पर प्रकाश पडता है इसे ही थोड़े शब्दों में प्रस्तुत कर रहा हू।

जीवनी—केशव अपने जीवन के सम्बन्ध मे स्वयं कुछ भी कहना उचित नहीं समझते थे। इसीलिये उन्होंने कहीं पर भी अपने सम्बन्ध मे कुछ भी नहीं कहा और उन्हे इस बात का आश्चर्य है कि व्यक्ति अपने मुँह से अपनी बात कहते हुए लज्जा का अनुभव कैसे नहीं करते हैं।

अपनी आन न अपनी बात। अचरज यहै न कहत लजात

वीरसिंह देवचरित ग्रन्थ को देखने से ज्ञात होता है कि रामशाह

तथा वीरसिंह देव दोनों ही केशव पर पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा रखते थे क्योंकि जिस समय रामशाह और वीरसिंह देव मे युद्ध छिड़ा, उस समय रामशाह की आज्ञा से केशव वीरसिंह के पास संधि प्रस्ताव लेकर गये थे और उसमें उन्हे आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई थी।

'मगद पायक प्रेम बनाय पठये केशव मिश्र बुलाय।
जो कछु करि आवहु सु प्रमान, यों कहि पठये राम सुजान।'

वीरसिंह

कासीसनि के तुम कुलदेव, जानत हौ सबही के भेव।
जानत भूत भविष्य विचार, वर्तमान को समुझत सार।
जिहि मग होय दुहुन को भलो, तेहि मग होंहि चलावौ चलौ।

केशव

यह सुनि केशवदास विचारि, बात कही सुनिये सुखकारि।
नृपति मुकुट मनि मधुकर साहि, तिनके सुत द्वै दिन दुख दारि।
दुहु भांति सुख के फर फरे, परमेश्वर तुम राजा करे।
तुम नरहरि नृप कीने नाउ, कहौं कौन पर मेटे जाउ।
हैं द्वै बाट भलो अनभली, चलिबौ कुसल कौन की गली।
बाईं एक दाहिनी ओर सुखद दाहिनी बांई घोर।

वीरसिंह

वीरसिंह तजि बोले मौन, कौन दाहिनी बाईं कौन।

केशव

सकल बुद्धि तेरे नरनाथ, दल बल दीरघ देख्यौ साथ।
देह दाम बल दीसहि घनै, धर्म कर्म बल गुन आपनै।
सोधि सील बल दीनो ईस, सकल साहि बल तेरे सीस।
तुमहि मित्र अकपट बलवन्त, जुद्ध रिद्धि बल अरु श्रमवन्त।

इनके रन में एक न आज कीने चित्त जुद्ध को साज।
जुद्ध परे ते जानि न परै, को जानै को हारै मरै।
इत को उत को दल दल मँघरै, तुमको दुहू भाँति घटिपरै
उन आगे भुवपाल अजीत, सौ जूझै जूझै इन्द्रजीत।
इन्द्रजीत बिन राजा मरै राजा बिन पुर जौहर करै।
पुर में ब्राह्मन बसत अपार, कीजै राज जु परै बिचार।
यह में बाट बताई वाम, महा विषम जाके परिनाम।

भैया राजा ब्राह्मनि मारे यह फल होय।
स्वारथ परमारथ मिटै बुरो कहै सब कोय।

सुनिये बाट दच्छ दाहिनी, जो दिन दुःसह दुःख दाहिनी।
इक पुरिखा अरु राजा वृद्ध, दूहूं दीन दीरघ परसिद्ध।
नैन बिहीन रोग संयुक्त, जोवन नाहीं जेठो पुत्र।
ताके द्रोह बड़ाई कौन, सुख देके बैठारो भौन।
सेवा कै सुख दे सुखदानि, पांव पखारि आपने पानि।
भोजन कीजौ तिनके साथ, टारौ चौर आपने हाथ।
पूजा यों कीजे नरदेव, जो कीजे श्रीपति की सेव।
जौ लगि राम माहि जग जियै, बनिहै राज सेव ही कियै।
पीछे है सब तुमहो लाज, लीचो पद, अन, माज समाज।
निपटहि बालक भारत साहि, तिन तन कृपा दृग चाहि।
भारत साहि राउ भूपाल, उग्रसेन सब बुद्धि बिसाल।
इनको तुम्हैं सुर्खो नरनाथ, राजा सौंपे अपने हाथ।
तब तुम जानौ ज्यों त्यों करौ, राज ताज अपने सिर धरौ।
अपने कुल की कीरति रखो, यहई बाट दाहिनी भलो।

वीरसिंह

यह सुनि सुख पायौ नरनाथ, कह्यो आपन जिय की गाथ।
राजहि मोहि धरौ इक ठौर, विविध विचारनि की तजि दौर।

मैं मानी, जो मानै राज, सफल होहिं सबही के काज,।

विषय :—ग्रन्थ को रोचक तथा विश्वस्त ग्रन्थ बनाने के लिये लेखक ने दान लोभ और ओड़छा नगर की विध्यवासिनी देवी के सवाद के रूप मे किया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ मे तैंतीस प्रकाश हैं।

प्रकाश १, २ मे दान और लोभ ने अपने-अपने महत्व का वर्णन किया है। द्वितीय प्रकाश के अंत मे ओड़छा नरेशों की वशावली वर्णित है प्रकाश ३ से १४ तक मे ओड़छा नरेश मधुकर शाह के पुत्रों का विशद वणन है और वे आपस मे किस प्रकार अपनी शक्ति बाढने के लिए शत्रुता रखते थे, इसका सजीव वर्णन केशव करने मे सफल हुए हैं।

अकबर और वीरसिंह के बीच मे जो अनेक युद्ध हुए हैं उनका वर्णन अन्त मे अकबर की मृत्यु और उसके सिंहासनाधिस्थ जहाँगीर का कृपापात्र वीरसिंह का होना वर्णित है। यह वर्णन इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

प्रकाश १५ से ३३ तक मे वीरसिंह के ऐश्वर्य और तेज, नगर शोभा, सरोवर, वाटिका आदि का वर्णन है। ग्रन्थ के अतिम प्रकाशों मे कवि ने राजा के कर्तव्य तथा राजनीति का वर्णन किया है।

जन्मस्थान प्रेम :— मनुष्य जिस स्थान पर जन्म लेता है उस स्थान से उसे स्वाभाविक प्रेम होता है केशव को भी अपने स्थान की सभी वस्तुये प्रिय थीं। केशव ने वेतवा नदी को गंगा और यमुना से कम महत्व नहीं दिया है। गंगा यमुना मे स्नान करने पर पापों

का विनाश होता है और बेतवा नदी को देखने मात्र से तनताप नष्ट हो जाता है और स्नान कर लेने से हृदय में ज्ञानोदय हो जाता है।

मित्र :—केशव के सबसे बड़े मित्र महेशदास दुबे उपनाम बीरबल थे। केशव ने बीरबल को वीरसिंह देव चरित में "मोरेहित" विशपण से सम्बोधित किया है।

समय-समय पर केशव बारबल जी से मुलाकात करने आया करते थे। बीरबल के कारण से अकबर के दरबार में आने जाने से कोई केशव को रोकना नहीं था।

केशवदास टोडरमल से भी भली प्रकार परिचित थे। टोडरमल को केशव अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। यह बात दान लोभ के के वार्तालाप से स्पष्ट होती है —

'टोडरमल तुव मित्त मरे सबही सुख सोयो।
मोरे हित वरवीर मरे दुख दीननि रोयो'।
'योंही कह्यो जु बीरवर माँगु जु मन में होय'।
माँग्यो तब दरबार में मोहिं न रोके कोय॥१९॥

केशव का ज्ञान

संगीत :—नृत्य के अनेक भेद है। वीरसिंहदेव चरित नाद ग्राम स्वर, ताल, लय, गमक आदि सगीत शास्त्र सम्बन्धी विशेषताये तथा अडलि, टेकी, उल त ग हुरमति आदि नृत्य के भेदों का वर्णन किया है।

'प्रभु आगे कुसुमाजलि छाड़ि। नृत्यति नृत्य कलनि कौ माड़ि॥
नाद ग्राम स्वर पाद विधि ताल। गर्भविविधि लय आलति काल॥
जानति गुन गमकनि बड़ भाग। जो रति कला मूर्छना राग॥

जोरति अरु वचन अकासहि चालि। तीवट उर पति रय अडाल॥
राग डाट अनुरागत गाल। शब्द चालि जानैं सुप ताल॥
ढेकी उलथा आलम डिड। हुरमति संकति पटरी डिड॥
तिनकी भ्रमी देखि मति धीर। सीरात मिस सत चक्र समीर'॥

राजनीति :—केशव के अनुसार राजधर्म यह है :—
अविचारी दडन संचरै। मंत्र न कहू प्रकाशित करै॥
लोभी निधन न सौंपिय जीति। अपकारिनि सों करै न प्रीति॥
लोभ मोह मद तैं जौ करै। जब तब करता कौ घटि परै'॥

धर्मशास्त्र :—वीरसिंह देव चरित के २७वें प्रकाश मे केशव ने अनेक भेद गिनाये हैं। सात्विक दान के संबध मे केशव का विचार है :—

'आपु न देय देय जुग दान। तासौं कहियै राजसुदान।
बिन श्रद्धा अरु बे॰ विधान। दान देहि ते तामस दान॥
तीन्यो तीनि तीनि अनुसार। उत्तम मध्यम अधम विचार।
उत्तम द्विज बर दीजे जाइ। मध्यम निज घर देह बुलाइ॥
मागैं दीजे अधम सुदान। सेवा कौ सब निष्फल जान'।

अश्व ज्ञान :—वीरसिंह देव चरित के १७वे प्रकाश मे केशव ने हयशाला का वर्णन किया। इसी अवसर पर केशव ने घोड़ों के गुणों और दुर्गुणों का विशद वर्णन किया है। उदाहरण के लिये :—

'रात औठ जौगरी हीन। रातौ जीभ सुगधनि लीन।
रातौ तरवा कोमल खाल। ऐसो घोरो सुभ सब काल'॥[४]

रस विवेचन :—वीरसिह देव चरित मे वीररस ही प्रमुख है। शृंगार रस गौण रूप मे नखशिख के वर्णन के प्रसग पर किया है। चेत्रपाल अकबर की सेना से मुठभेड़ करने मे असफल रहा है। इसलिये कुमार भूपाल राय चेत्रपाल से कहता है :—

'मीत करहि जनि मीति बंस रनजीति हमारो।
व्रतधारी जस अमल ताहि अब करो न कारो।
राजनि के कुल राज कहा फिरि फिरि अवतरियौ।
अब तब जर कब करन कहत अब ही किनि मरियौ।
मुर सरज मंडल भेदि ज्यों बिना गये से हरि सरन।
सब सूरनि मडल भेदि त्यों रामदेव देखैं सरन'॥

रौद्ररस :—का वर्णन बड़ा ही सुन्दर वीरसिंह देवचरित में केशव ने किया है। वीरसिंह की सेना युद्ध करने के लिए चली है। उसके चलने से संसार भर में खलबली मच गयी है।

'भूतल सकल भभितह्वै गयो। लोक लोक कोलाहल भयो।
गाजि उठे दिग्गाज तिहि काल। संकित सकल अंक दिगपाल।
रौर परी सुरपुरी अपार। गाढे सुरपति चित्त विचार।
कल्पवृक्ष गज बाजि समेत। सौंपे सुरगुरु को इहि हेत।
धर्म राज के धक पक भई। नंदनीति कुंभज को दई।
चिंता लग्न बग्न उर गुनी। तबही उतरि गई बारुनी॥

वीभत्स रस :—ओड़छा में युद्ध समाप्त हो जाने के बाद क्या अवस्था हो गयी थी।

'अति भरी राजत रन थली। जुझि परे तहं हय गय बली।
खण्डनि खण्ड लसैं गज कुम्भ। श्रोनित भर भमकन्त भसुण्ड।
× × ×
घन घाइनि घाइल धर परैं। जोगनि जोरि जह सिर धरैं।
अचल मुख पोंछति जगमगी। कण्ठ श्रोन पिय मारग लगी॥

प्रकृति वर्णन :—केशव के अधिकांश प्रकृति वर्णन परम्परा युक्त है। किन्तु कुछ वर्णनों में केशव ने बिम्ब ग्रहण कराने की चेष्टा की है। शाब्दिक चित्र खींचने में केशव को पूर्ण सफलता प्राप्त हुयी है।

गरजत व्याजनि बजै निसान। अङ्गपात निर्वात निधान।
इन्द्र धनुष धन मञ्जल धार। चातक मोर सुभट किलकार।
खद्योतन को विपदा भई। इन्द्रवधू घर घरनिहि दई'॥

युद्ध वर्णन :—ऐसा लगता है केशव ने युद्धों को बड़े ही निकट से देखा था। इसीलिए युद्धों का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है।

'जंगम जीवन को जल राइ। उमगि चल्यो जनु कालहि पाइ।
देस देस के राजा घने। मुगल पठाननि कौ को गने।
जहाँ तहाँ गज गाजत घने। पुरवाई के जन घन बने।

× × ×

या रङ्ग एक चलेई जात। एक देखिए पीवत खात।
उलहत ऊँट एक देखिये। लादत माजु एक पेखिए।
एक तंबू दियो गिराय। रसत उठावत एक बनाइ।
वनिक चलत इक लादि अपार। एकनि के बैठे बाजार।
एल मे सबको चित्त भुलाइ। कूच मुकाम न जान्यौ जाइ'॥

भाषा :—वीरसिंह देव चरित मे केशव ने बुन्देलखण्ड के शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। स्यों, ममदों, भांड्यों, थोक, गौरमदाइन, आनिवी, जानिवी आदि शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। सच तो यह है केशव की भाषा को बुन्देलखण्डी मिश्रित व्रजभाषा कहना चाहिये।

कुछ स्थानों पर अवधी के शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा वीरसिंह देवचरित मे अवधी के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं।

'मं तरी बलि वधु बधायो वावन यह ठें'।

'यहै मुक्ति जग जाहिय'।

अरबी फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है।
'सोवहिं सातहु सिंधु सात हज्जार रसातल'।
'हौ गरीब तुम प्रगट हौ सदा गरीब निवाज'।
'हजरत सों जो मिलिहै आज'।
'साहि सलेम कियो फरमान'।
'हमसै दीनन दीनी दादि'।
'करौ नवाजसु वाको जाइ'।

केशव ने कुछ अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। आज ये शब्द प्राप्त नहीं होते हैं। इस प्रकार के शब्द वीरसिंह देव चरित मे अधिक है। विचूचे, उनमान, औसिला, साथी आदि ऐसे शब्द हैं जो कि आज प्रयुक्त नहीं होते है।

'बहुत विबूचे तासे घने'।
'बात कहहि अपने उनमान'।
'कहि धौ कछु औसिलौ भयो।
दस नगर साथर गढ़ ग्रामा'।
फूल्यो अङ्ग न समाय।

अलंकार :—वीरसिंह देव ने प्रयाग मे जो हाथी का दान किया है उसका वर्णन उत्प्रेक्षा अलकार की सहायता से किया है, किन्तु हाथी की उपमा तुलसी वृक्ष से देना उपहासास्पद हो गया है।

'जब गज गगाजल मह गयो। बहुत भाति करि सोभित भयो।
स्वेत कुसुम चोसर मय स्वच्छ। सोहत तुलसी कैसो वृच्छ'।

एक स्थान पर वर्षा के वर्णन के प्रसग पर उपमा अनुसूया से की है, जिसका कोई साम्य नहीं है।

'अनुसूया सी सुनौ सुदेस। चारु चन्द्रमा गर्व सुवेस।
पावस पति सो दल देखियो। स्वग सामुहो गति लेखियो।

× ×

द्रुपद सुता कैसो द्रुति धरै। भोल भूरि भावनि अनुसरै"॥

किन्तु कुछ वर्णन उत्प्रेक्षा अलकार के बड़े ही सजीव है। अकवर अबुलफजल की मृत्यु का समाचार पाकर रो पड़ा। उसके नेत्रों से प्रवाहित अश्रुधारा को केशव के रहटघरी कहा है।

'भरि भरि रीति रीति रीति रीति भरै पुनि।
रहट घरी सी आँख साहि अक्वर की"॥

अकवर से अश्रुपूर्ण नेत्रों के लिये केशव ने लिखा है।

'चचल लोचन जल झलमले।
पवन पाइ जनु सरमिज हले।

विचारधारा

केशव के अनुसार राजा सत्यवादी तथा धर्मात्मा होना चाहिये।

२—'राज चाहिये साचौ सूर। सत्य सुसकल धर्म को मूर।
जो सूरो तौ सबै डराइ। साचे को सब जग पतियाइ।
साचौ सूरौ दाता होय। जग मे सुजस जपै सब कोइ'।

राजा को चाहिये की वह मंत्री और मित्रों के दोषों को हृदय मे ग्रहण न करें। मूर्ख व्यक्ति को मंत्री, पुरोहित, सभासद ज्योतिपी दूत न बनाना चाहिये। इसको जो राजा ध्यान मे नहीं रखता उसका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

१—मंत्री मित्र दोष उर धरै। मत्री मित्र जु मूरख करै।
मत्री मित्र सभासद सुनौ। प्रोहित बैद जोतिसी गुनौ।
लेखक दूत स्वार प्रतिहार। सौंपि सुकृत जाहि भंडार।
इतने लोगनि मूरख करै। सो राजा चिरु राज न करै।
जाको मतो दुरयो नहि रहै। खल प्रिय सुरापान मग्रहै"।

राजा को चाहियें धन धर्म का उपार्जन करना चाहियें और धन का व्यय धर्म के लिये करना चाहिये।

२—'उपजावै धन धर्म प्रकार। ताकी रक्षा करै अपार।
धन बहु भाँति बढ़ावै राज। धन बाढ़े सबही को काज।
ताको खरचै धर्म निमित्त। प्रति दिन दीजै विप्र निमित्त'।

राजा को चाहिये की वह सज्जन को पदवी दे और असज्जन को दण्ड दे।

२—'अपने अधिकारिनि को राज। चोरन ते ममुझै सब काज।
साधु होय तौ पदवी देइ। जानि असाधु दंड को देइ'।

प्रजा में पाप की वृद्धि रोकने के लिये धर्मदण्ड को प्रसारित करें।

'प्रजा पाप तें राजा जाय। राज जाय तो प्रजा नसाय।
अन्याई ठग निकट निवारि। सब तें राखहि प्रजा विचारि'।

५—'राजा सबको दंडिहि करै। जो जन पाइ गुपेंडे धरै।
नाती गोती कछु नहि गनै। प्रीतम सगौ न छोडत बनै।
....

ब्राह्मण मात पिता परिहरै। गुरु जन को नृप दडन धरै।
रोगी दीन अनाथ जु होय। अतिथिहि राजा हनै न कोय।
इतने जानि परै अपराध। वृत्ति हरै निकारै साधु'।

सेवक, भट्टर्मा, भिक्षुक, सहोदर वशिष्य आदि यदि अपराध की क्षमा याचना करें तो उनका वध नहीं करना चाहिये।

१—'मचला दगाराज बहुभांति। चेरे वैरी सेवक जानि।
भिक्षुक रिनिया थानेदार। अपराधी अधिकारी ज्वार।
जे सुत सोदर सिष्य अपार। प्रजा चार अरु रत परदार।
ये सिख देत भरै जो लाज। हत्या तिनका नाहिन राज'।

वीरसिंह देव-चरित

शिखावान कर कलित जलज अच्छत सिर सोहै।
हरि चरनोदक बृन्द बुन्द दुति अति मन मोहै॥
अंग विभूति विभाति सहित गनपति सुखदायक।
वृष वाहन संग्राम-सिधि-संजुत सब लायक॥
उर चतुर चारु चक्री बसतु संग कुमार हर मार मति।
जय शंकर शंका हरन भव पारवती पति सिद्ध गति॥१॥

विष्णु जी के शिर पर चोटी, सुन्दर हाथों में कमल और शिर के ऊपर अच्छत शोभा दे रहे हैं। गणपति ने अपने शरीर पर विभूति लगा रखी है, वह शोभा दे रही है। सब प्रकार से योग्य और संग्राम में सिद्धि प्राप्त किए हुए शिव (वृषवाहन) जी हैं। शिव जी के हृदय में चक्र धारण करने वाले (चक्री) विष्णु भगवान निवास करते हैं और हर को मारने वाले कार्तिकेय (कुमार) साथ रहते हैं। शंकाओं का विनाश करने वाले, पार्वती के पति शंकर भगवान की जय हो॥१॥

एक राजा मानसिंह कछुवाहो केसौदास,
जिहिवर वारिधि के उदर विदारे हैं।
दूसरे अमरसिंह राना सिसौदिया आजु,
जासों अरिराज गजराज हिय हारे हैं॥
तीसरे बुंदेला राजा बीरसिंह ओड़छे कौ
जाके दुख दुसह जलाल दीन जारे हैं।

निज कुल-पालिवे को अखिल घालिवे कौं,
तीन्यौ नरसिंह नरसिंह जू सुधारे हैं ॥२॥

केशव ने मानसिंह, अमरसिंह और वीरसिंह के शौर्य का वर्णन किया है। कुशवाहा वंशी मानसिंह ने समुद्र के हृदय तक को चार डाला है। महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह सिशोदिया से शत्रु और सिंह दोनों ने हार मान ली है। ओड़छा नरेश वीर सिंह के दुसह दुख में जलालदीन स्वत जल रहा है। अपने वंश का पालन करने के लिए और शत्रु वंश का विनाश करने केलिए तीनो वीरो ने नरसिंह का रूप धारण किया है ॥२॥

वीरसिंह नृपसिंह मही महँ महाराज मनि।
गहरवार कुल-कलस ईस अंसावतारै गनि॥
जहांगीर पुर प्रगट दीह दुर्जन दिन दूपन।
नदी बेतवै तीर बसत भव भूतल भूपन॥
तिहि पुर प्रसिद्ध केसव सुमति विप्रवंस अवतंस गुनि।
बुधि बल प्रबन्ध तिनि बरनियो वीर चरित्र विचित्र सुनि॥३॥

राजाओं मे मणि वीरसिंह पृथ्वी पर नृपसिंह हैं, जो कि गहरवार वंश म ईश्वर के अंश के रूप में उत्पन्न हुआ है। बीरसिंह का जन्म जहांगीर पुर में हुआ, जो कि बेतवा नदी के किनारे बसा हुआ है और सभी ओर जो कि समस्त पृथ्वी का आभूषण है। उसी ग्राम में प्रसिद्ध केशव ने ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया। उन्हीं केशव ने अपने बुद्धिबल से वीरसिंह के शौर्य को सुनकर वर्णन किया ॥३॥

चौपाई

सबतु सोरह से तैंसठा। बीति गए प्रगटे चौंसठा॥
अनल नाम सवत्सर लग्यौ। भाग्यौ दुख सब सुख जग मग्यौ॥४॥

वीरसिंह देव की रचना केशव ने संवत १६६३ के व्यतीत होने पर और १६६४ के आरम्भ पर की। अनल नाम का सम्वत्सर लग चुका था,

जिसके कारण मे समस्त दुःख भाग चुके थे और सुख का उदय हुआ था ॥४॥

रितु बसत, है स्वच्छ विचार।
सिद्धि जोग मिति वसु बुद्धवार।
सुकुल पच्छ कवि केसवदास।
कीनौ वीर चरित्र प्रकास ॥५॥

बसन्त ऋतु होने के कारण स्वच्छ विचार उदित हो रहे थे। सिद्धि को प्राप्त करा देने वाली अष्टमी तिथि, दिन बुधवार और शुक्ल पक्ष के अवसर पर केशव ने वीरसिंह देव के चरित्र पर विचार किया ॥५॥

दोहा

नवरस मय सब धर्म मय राजनीति मय मानि।
वीर चरित्र विचित्र किय केसव दास प्रमान ॥६॥

केशवदास ने वीरसिंह के विचित्र चरित्र का वर्णन किया है। वीरसिंह नवो रसों—शृंगार, हास्य, करुणा रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत एवं शान्त—से युक्त है और धर्मयुक्त राजनीति का व्यवहार करने वाला है ॥६॥

दच्छिन दिसि सरिता नर्मदा। थिर चर जीवनि की सर्मदा ॥
पद पद हरि बासा जग मगै। स्वच्छ पच्छ पच्छासी लगै ॥७॥

दक्षिण दिशा मे नर्मदा नदी बहती रहती है जो कि जीवन को सब प्रकार से सुख देने वाली (नर्मदा) है। उस नर्मदा नदी के किनारे बने हुए मन्दिर पग-पग पर उसमें झलमलाते हैं और सफेद हस पक्षी से लगते हैं ॥७॥

जदपि मतंगिनि लौं मद मती। तऊ देव देवनि मे सती ॥
जदपि सुरा सुर बंदित पाइ। तदपि दीन जन कैसी भाइ ॥८॥

यद्यपि नर्मदा नदी हाथी की भाँति अपने मद में मस्त रहती है, फिर भी देवों के साथ में सती की भाँति रहती है। यद्यपि इसकी वन्दना सुर

असुर दोनों ही करते हैं, किन्तु दीन जनों की वह माँ के समान है ॥८॥

जद्यपि निपट कुटिल गति आप।
देति सुद्ध गति हवि अति पाप ॥
आपुन अधो अधोगति चलै।
पवितनि कौ ऊरध फल फलै ॥६॥

यद्यपि वह स्वत कुटिल गति की है। अर्थात टेढे-मेढे बहती है, किन्तु दूसरे के पापों का विनाश करके शुद्ध गति को देती है। स्वतः तो नीचे की ओर गिरता हुई चलती है अर्थात ढाल की ओर बहती है, किन्तु पतित लोगों को मोक्ष फल देती है ॥६॥

सिव पुत्री पश्चिम दिसि बहै। सकल लोक दुख देखत दहैं ॥
एक समैवा सरिता तीर। भई सुर सुर नर की भीर ॥१०॥

पश्चिम दिशा में शिवपुत्री बहती है, जिसके देखने मात्र से ही सारे दुख भाग जाते हैं। उस नदी के किनारे एक बार सुर, असुर और नरों की भीड़ इकट्ठा हुई ॥१०॥

एकै होम करि स्नान। देत देखियत षोडस दान ॥
एकनि केशव लगी समाधि। पूजा करत वेद विधि साधि ॥११॥

कोई होम कर रहा है और कोई स्नान। कोई षोडस दान (श्राद्ध आदि के अवसर पर देय भूमि, आसन, गाय, सोना आदि) दे रहा है। कोई वहा पर समाधि लगाये हुए बैठा है और कोई वेदों द्वारा बनाई गई रीतियों से पूजा कर रहा है।॥११॥

आसन असन वसन इक देत।
भूषन भाजन बसन समेत ॥
फलित फलाफल बाग सुवेष।
एक देत रस अन्न असेष ॥१२॥

कोई आसन, और रहने के निमित्त मकान, भूषण, पात्र तथा

वस्त्र दे रहा है। फल फूलों से बाग लदे हुए हैं। कोई सब को अन्नदान रहा है ॥१२॥

एक देत सुरभी जुग मुहीं। बछरनि संग सुगंधनि छुहीं।
एक देत पुरषन को नारि। एक पुरुष सुंदरिनि सँवारि ॥१३॥

कोई उस गाय (जुगमुहा) का दान कर रहा है, जो कि बच्चा दे रही है (ऐसी गाय का दान करने से बहुत अधिक पुण्य होता है।) कोई पुरुषों को नारि दे रहे हैं अर्थात विवाह कर रहे हैं और कोई स्त्री का शृंगार कर रहा है ॥१३॥

तुला आदि सब दान प्रयोग। जहं तहं देत देखियत लोग॥
तन मन पूरन उपज्यो छोभ। देखि दान की महिमा लोभ ॥१४॥

यत्र-तत्र लोग तुलादान (अपने को किसी चीज के बराबर तौल लेना और फिर उस तोली हुई वस्तु को दान में देना) तथा अन्य:दान दे रहे हैं। दान की इस प्रकार की महिमा को देखकर लोभ का शरीर और मन अत्यधिक क्षुब्ध हो उठा ॥१४॥

सहि न सक्यो सब विधि अवदात।
लाग्यौ कहन दान सौं बात ॥१५॥

जब लोभ दान के गुणों को सहन न कर सका तब उससे कहने लगा ॥१५॥

लोभ उवाच

दान बिगारयौ तैं संसार। भूलि गयौ तोकौं करतार॥
विद्यमान जे देखत मोहिं। कहा करै जग पूजन तोहिं ॥१६॥

हे दान! तूने कर्त्ता (ईश्वर) को भूलकर सारे संसार को बिगाड़ दिया। संसार जब मुझे अपने पास देखता है तब तेरी उपासना क्यों करे ?१६।

छपद

हौं धरनी धर धन्य धीरु हौं धनुक धुरन्धर ।
हौं इक सूर सुजान एक रस सदा सिद्ध कर ॥
अद्भुत अमर अनादि अचल अचला अनन्त गति ।
हौं उत्तिम हौं उच्च उदित हौं अति उदिम मति ॥
कहि केसर दास निवास निधि मो समान अब और नहिं ।
सुनु दान, दीन दिन मान तू हौं समर्थ संसार महिं ॥१७॥

मैं समस्त पृथ्वी को धारण करने वाला हूँ और साथ ही धैर्य धारण करने वाला भी हूँ और धनुर्विद्या में निपुण हूँ। एक चतुर सूर (योद्धा) हूँ और एक रस में मैंने सिद्धि प्राप्त कर ली है। इस पृथ्वी के ऊपर मैं अद्भुत अमर, अनादि, स्थिर और अनन्त गति वाला हूँ। अति उत्तम, अति उच्च एवं उदय प्राप्त तथा उद्यमी मति वाला मैं हूँ। इस संसार में मेरे समान और कोई निधि नहीं है। हे दान ! तू अच्छी प्रकार से सुन ले कि इस संसार में तू दान दिनमान है और मैं संसार में सब प्रकार से समर्थ हूँ ॥१७॥

दान उवाच

लोभ, समुझ अपनौ ब्योहार। जानतु हैं सगरो संसार ॥
अपने आनन अपनी बात। अचरजु यहै न कहत लजात ॥१८॥

हे लोभ ! तू अपने व्यवहार को अच्छी प्रकार से समझ ले। सारा संसार तुझे भली प्रकार से जानता है। अपने मुख से तू अपना बात कहता है। मुझे तो आश्चर्य यही है कि तू लज्जा का अनुभव क्यों नहीं करता है ॥१८॥

सुर नर सुनत चहूँ दिसि घनै। उत्तरु मोहि दियैं हीं बनै ॥
मत चल ठग ठठेर बट पार। पासिया चेरे चोर लवार ॥१९॥

सभी दिशाओं में देव और मनुष्य सुन रहे हैं, इसलिए मेरा उत्तर

देना आवश्यक हो गया है। ठग, ठठेर, बटमार, पामी (एक जाति) चोर, झूठे तेरे दास हैं ॥१६॥

बधिक जगाती बनिक सुनार।
इन्हे आदि हौ मीत अपार॥
पुस्ता पीवहि भगाहिं खाइ।
मदिरा पी विस्वा पह जाइ ॥२०॥

बधिक, जगाती (कर वसूल करने वाले), बनिया सुनार और पुस्ता को पीने वालों तथा भाँग खाकर, मदिरा का पान कर वेश्याओं के पास जाने वालों के तुम परम मित्र हो ॥२०॥

जैसौ सेवक तैसौ नाथ। मों दासन पह जोड़त हाथ॥
एसौ तू मोसो सरि करै। सुनि सुनि सुर कुल लाजनि मरै॥२१॥

जैसे तुम्हारे सेवक हैं, उसी प्रकार के तुम उनके स्वामी हो। हम दासों से क्यों हाथ जोड़ते हो। तू मुझसे प्रतिद्वन्दिता करता है ऐसा देखकर देव-कुल को अत्यधिक लज्जा का अनुभव होता है। उनके लिये तेरा यह व्यवहार मरण का कारण बन रहा है ॥२१॥

छपद

तू समर्थ क्व भयौ विस्व वचक निरुद्धकर।
तू लोकस लोक्स कियौ परलोक लोक हर॥
तू अति कृपन कुबुद्धि कूर कातर कुचील तन।
तू कुरूप पढि कपट कटु सठ कठोर मन॥
तिय नातु न मातु न पुत्र पति मित्र न तेरे मानिये।
दिनवान वहाँ तूं लोभ लघु कैसे बड़ो वखानिये? ॥२२॥

संसार को धोखा देने वाला और उसकी रीतियों के विरुद्ध आचार करने वाला, तू संसार में समर्थ कैसे हो गया है। इहलोक (सासारिक जीवन) और उहिलोक (पारलौकिक जीवन) दोनों का विनाश कर तुमने

संसार को लोकम बना दिया है। तू अत्यधिक कृपण, कुबुद्धि, कातर तथा कुटिल शरीर वाला है। तेरा मन अत्यधिक कुरूप, कपटी, कटु, शठ एवं कठोर है। तू स्त्री, माता, पुत्र, पति मित्र आदि से किसी भी प्रकार अपना सम्बन्ध नहीं मानता है। हे लोभ! तू तो बड़ा छोटा है। तुझे भाग्यवान और बड़ा कैसे माना जाय? ॥२२॥

लोभ उवाच

ज्यों राजा रासत परजान। त्यों हौं धन कौ राखहु दान॥
देखु विचारि जगत के माह। राखी लछिमी लै उर मांह॥२३॥

हे दान! जिस प्रकार से राजा प्रजा की रक्षा करता है। उसी प्रकार मैं भी धन की रक्षा करता हूँ। हे संसार के रक्षको! तू अपने मन में विचार कर देख ले, तुझे भला प्रकार ज्ञान होगा कि संसार की लक्ष्मी को मैंने अपने हृदय में रख लिया है ऐसा कहते हैं (कि लोभ के हृदय पर वत्स चिन्ह है)॥२३॥

सुरपति कीन्हीं मन्दिर मेरु। नव निधि राखे रहै कुबेरु॥
जौ पुर पुरी प्रकार न होइ। तौ सुख सौं चिर बसै न कोइ॥२४॥

इन्द्र ने सुमेर पर्वत को मन्दिर बना रखा है और कुबेर नवा निधियों-महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नाल और खर्व—को रखता है। यदि ग्राम सुरक्षा के निमित्त दीवाल न हो, तो कोई भी उस ग्राम में सुख पूर्वक निवास नहीं कर सकता है। इस कथन के द्वारा लोभ ने धन सुरक्षा के लिए अपने अस्तित्व का होना आवश्यक ठहराया है॥२४॥

छप्पद

मो तैं बड़ो न और विस्व मैं रंग विशेष करि।
हौं रावत रजपूत राज हौं तू रैयति मरि॥
तू बालकु, हौं वृद्ध, सिद्ध हौ तू साधक गुनु।
कह केसव परसिद्ध भयो तूं मोही तैं सुनु॥

तूं फलित होत परलोक कहं, हौं इहई फल सों लसौं।
सुनु दान, रहे तू दिन दुरयौ हौं परगट पुहुमी वसौं ॥२५॥

इस कारण से मुझमें और बहुत विरोध कर विरत्र में कोई नहीं है। मैं इस संसार का राजा हूं और तू उसकी प्रजा है। तू बालक है और मैं वृद्ध। तू साधन है और मैं सिद्धि हूँ। इस बात को तू अच्छी प्रकार से समझ ले। इस संसार में जो तेरी इतनी ख्याति हुई है, वह मेरे ही कारण है। तू लोगों को परलोक में फल देता है और मैं इसी संसार में सब का फल दे देता हूं। हे दान! तू छिपा रहता है और मैं इस पृथ्वी पर प्रगट रूप में वास करता हूँ ॥२५॥

दान उवाच

बिढ़वै नित अपनी अदिप्ट। कहु केसव उदिम के इप्ट॥
तोतें कबहुं धरम ना होइ। धरम बिना वित लहै न कोइ॥२६॥

तू अपने अदृष्ट रूप में धन-सम्पत्ति को मोल लेता (बिढ़वै) है। उद्यम तेरा इष्ट है। तुमसे धर्म का कार्य तो कभी हो ही नहीं सकता है। धर्म के अभाव में धन सम्पत्ति को कोई नहीं ग्रहण करेगा ॥२६॥

नीकौ खाइ न पहिरै अंग। दया दान के तजै प्रसंग॥
बिन अपराध वित्त बिनु करै। जैसे व्याध जन्तु असु हरै॥२७॥

न किसी प्रकार से अच्छा आहार ही कर सकता है और न अच्छे वस्त्र ही धारण कर सकता है। धन-सम्पत्ति के आने पर अकारण ही तेरी उपस्थिति में व्यक्ति अपराध करता है, जिस प्रकार से व्याध जन्तुओं के प्राणों (असु) का विनाश किया करता है ॥२७॥

छपदु

तू भैयन महं भेद, मित्र मित्रनि उपजावैं।
पति पतिनी कहं प्रगट, पिता पुत्रनि बिहरावैं॥
राज दोष द्विज दोष, दीन के दोष बिचारै।
छल बल गुन गन हरहि, प्रान-पुनि हरत न हारै॥

कह केसव केवल वित्त पर, विनय विनासन अपनि मति।
तू लोभ, छोनि छायचो छ रिंतु,छनकु छुद्र अति तिच्छगति ॥२८॥

तू भाइयों और मित्रों के बीच भेद पैदा करता है। पति पत्नी, पिता और पुत्र के बीच में प्रकट रूप में फूट डाला करता है। राजदोष द्विजदोष तथा दान दोष का तू कुछ विचार ही नहीं करता है। अपने इलबल से तू लोगों के गुणों का हरण करता है और यहाँ तक कि प्राणों को लेने में भी तू नहीं हिचकता है। केवल वित्त के लिए अपना विनाश सम्पूर्ण पृथ्वी मंडल पर क्यों क्षत्रियों को क्षुद्र और क्षणिक बना दिया है।।२८॥

लोभ उवाच

देखु दान, जो यह संसार। ता महं एकै हौं ही सार॥
गुनी गुनज्ञ धर्मी सुचि सूर। आनद कन्द सिंगार समूह॥२६॥

हे दान! इस संसार में मैं ही एकमात्र सार हूँ अर्थात मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है गुणी, गुणज्ञ क्षमा, सूर, आनन्द उत्पन्न करने वाला शृंगार आदि की जड़ में मैं ही हूँ अथवा मेरे अभाव में इनका होना असम्भव है।।२६।

जीव धरै या धरनी माह। बसत सदा सुख मेरी छांह॥
दान, जानु हौं सब के प्रान। देहि बताइ जु मो बिनु आन॥३०॥

परमात्मा से विरक्त होकर जीव इस संसार में आकर मेरी ही छत्र छाया में बढ़ता है। हे दान! मैं सभी का प्राण हूं। मेरे अभाव में यदि कोई वस्तु हो तो उसे बता दो।।३०॥

छपदु

मोहि लीन पसु पच्छि जच्छ रच्छस सब छिति धर।
विद्याधर गंधर्व, सिद्ध, किन्नर, नर बानर॥
पूरन देव अदेव जिते नर देंव रिषी मुनि।
चतुराश्रम चहुँ बरन पदारथ चहू मद्धि गुनि॥

दिन दान, दिव्य दर्ग देख तू मो महं, हौं तो मैं लसौं।
कहू केसव केसनराइ ज्यौं हौं सब के घट घट बसौं ॥३१॥

समस्त पृथ्वीतल के पशु, पक्षी यक्ष, राक्षस, विद्याधर, गंधर्व सिद्ध, किन्नर नर वानर, सभी देव. अदेव, नरदेव, ऋषी, मुनी, चारों आश्रम, चारों वर्ण, सभी पदार्थों के बीच में मैं तुझे दिखाई पड़ूंगा। मैं सभी के घट घट में वास करता हू ॥३१॥

दान उवाच

बात कहहि अपनी मुख देखि।
मन क्रम वचन बिचारि विसेखि॥
कूप मांझ उपज्यौ मंडूक।
मूरख महा इते पर मूक ॥३२॥

हे लोभ ! तू अपनो ही बात करता है। कुछ भी तो मन, क्रम वचन से विचार कर देख। तू उसी प्रकार का है जिस प्रकार कुए में उत्पन्न होने वाला मंडूक होता है। एक तो यह महा मूर्ख होता है उस पर भी मूक ॥३२॥

सुर पुर कौ क्यों जानै बात। ते मूरख जे पूछन जात॥
अपनैं मुख आपनैं चरित्र। बिन भीतहि कित चित्रहि चित्र ? ॥३३॥

जो मूर्ख दूसरों से पूछने जाते हैं, उन्हें सुरपुर का कैसा ज्ञान होगा। अपने चरित्र का बखान अपने ही मुख से करते है। बिना भित्ति के चित्र किस प्रकार तैयार होगा ? ३३॥

छप्पय

तू कृतघ्न, हौं कृती, पाप तू, हो पुनीत मति।
तूं झूंठो, हौ साचु, निलज तूं, हौं सलज्ञ मति॥
तूं दुख दायक, दुखी, सुखी हौं सब सुख-दायक।
तूं सेवक सब काल सदा साहिब हौं लायक॥

सुनु लोभ ! कविंद लबार जग, हौं दाता तूं मांगनौं।
कह केसव देस विदेस महं मोहि तोहिं अंतर घनौ ॥३४॥

तू कृतघ्न है और मैं कृती हूँ। तू पापी है और मैं पवित्र बुद्धिवाला हूँ तू झूठा है और मैं सच्चा हूँ। तू निर्लज्ज है और मैं सलज्ज हूँ। तू दु:खी है और सभी को दु:ख देने वाला भी है और मैं सुखी भी हूँ और सभी को सुख देनेवाला भी हूँ। तू सभी युगों में सेवक रहेगा और मैं स्वामी के योग्य रहूँगा। हे लोभ ! तू संसार भर में झूठा है। मैं दाता हूँ तू याचक है। इस संसार में मेरे और तेरे बीच में बहुत बड़ा अन्तर है ॥३४॥

लोभ उवाच

सुनु दान, जिते नर दाता भए। तिन कहं मैं दीरघ दुख दए॥
साधु सर सब परम निसंक। मैं नलु कियौ राज ते रंक ॥३५॥

हे दान ! इस संसार में जितने भी दानी हुए हैं, मैंने उन सभी को अत्यधिक कष्ट दिया है। अनेक निःशंक साधुओं को तथा नल राजा तक को मैंने राजा से रंक बना दिया। ३५॥

मत्री मित्र सत्रु ह्वै गए। जात हथ्यारन हाथा न लए॥
दह पारौं भूंजी मांकरी। कहूं पुत्र, कहुं कामिनि करी ॥३६॥

मंत्री और मित्र राजा के शत्रु हो गये। वे उसके कहने से हथियार तक नहीं धारण करते हैं। स्त्री कहीं और पुत्र कहीं कर दिया अर्थात् सभी को विलग करने में मैं समर्थ रहा ॥३६॥

छप्पदु

मैं तेरो सुनि सखा स्याम पै सिंधु मथायौ।
मैं तेरो हरि हितू मोहिनी रूप हंसायौ॥
मैं तेरो बलि बधु बंधायौ बावन यह है।
मैं तेरो हरिचंद मित्र वच्यौ सुपचहिं है॥
प्रिय पंडु पुत्र तेरे तिनहिं दु:ख दियै केति कन नौं॥
तैं, दान ! दीन सांची कही मोहिं तोहिं अंतर घनौं ॥३७॥

मैंने तेरे सखा श्याम से सिंधु का मंथन करवाया। मैंने ही तेरे हित विष्णु को मोहिनी के रूप पर हँसा दिया। मैंने ही तेरे बन्धु राजा बलि को वावन की बातों में बँधा दिया था। तेरे मित्र राजा हरिश्चन्द्र को नीच श्मशान के हाथ बिकवा दिया था। तेरे प्रिय पाडु पुत्रों को मैंने ही अत्यधिक कष्ट दिया था। हे दान ! तूने सत्य ही कहा है कि मेरे और तेरे में बहुत अधिक अन्तर है ॥३७॥

दान उवाच

दमयंती राजा नल बरै। देव अदेव सबै परि हरै॥
इहि दुख देवनि कीनौ कोह। नल दमयंती भयौ बिछोह ॥३८॥

राजा नल ने दमयन्ती से विवाह किया। इसके कारण देव अदेव सभी ने उसे त्याग दिया। देव, राजा नल के इस व्यवहार से अत्यधिक दुःखी हो गए। परिणामतः नल दमयन्ती का विछोह हो गया था ॥३८॥

तू बपुरा को दुख दे सकै। कैसैं पंगु सिंधु को नकै॥
साहि छिवाई[1] की लै जाइ। विहना[2] फूल्यौ अंग न माइ[3] ॥३९॥

१—एक सुंदरी स्त्री जिसे मुसलमान बादशाह ले गया था। २—धुनिया जैसे—तुरकों भए तो विहना ॥३—फूले उमंग नहीं समाता है।

तू बेचारा किसी को क्या दुःख देगा। पंगु किस प्रकार से सिंधु पार कर सकता है। एक सुन्दरी स्त्री को एक बादशाह ले गया था। यह देख कर धुनिया (विहना, मुसलमानों के बीच का नीच जाति) प्रसन्नता से अपने अंग अंग में फूले नहीं समा रहा था ॥३९॥

छप्पय

मेरे हित श्री नाथ सिंधु मैं कियौ सदन, मुख।
जारि छार कियो काम नैंक हर हेरि रोष रुख॥
केसव सपुर सदेह गए हरि चंद देव पुर।
द्वारपाल बलिद्वार भए त्रैलोक्यपाल गुर॥

पंडव प्रसिद्ध भए युद्धमि प्रभु जाति सकल कौरव कुमति।
सुनु लोभ, छोभ छिन छोभ हति मों प्रताप समुझै सुमति ॥४०॥

मेरे लिए चोर मित्र है। उसको मैंने सुख का घर बना रक्खा है। शंकर भगवान ने क्रोध में केवल एक दृष्टि ही काम पर डाला था कि वह जल कर राख हो गया। हरिश्चन्द्र सदेह स्वर्गपुरी को गए थे। पाण्डवों ने कौरवों को पराजित कर समस्त पृथ्वी को अपने वश में कर लिया था। हे लोभ! क्षोभ क्षणिक है। उसको मारकर हम मेरे प्रताप को तुम समझ सकते हो। ४०॥

लोभ उवाच

काहू को नहिं कोऊ मित्त। मित्त अकेला ईं जग वित्त ॥
सोई पंडित सोई साधु। जाके घर मे वित्त अगाधु ॥४१॥

संसार में कोई किसी का मित्र नहीं है। इस संसार मे केवल धन ही सब का मित्र है। वही पंडित और साधु है, जिसके घर में अगाध धन सम्पत्ति है ॥४१॥

नीच ऊंच सब जातैं होइ। ऊंचहि नीच वसासत लोइ ॥
ना वित्तहिं तू तृनवर गनैं। बहुत विबूचे तो से घनैं ॥४२॥

४—विबूचना [सं० विवेचन] = संकट मे पड़ना जैसे—काकित तून जिन धरयौ न यौन। प्रान न उठे घड़ी दो तीन ॥ वारे गुना न ध्याइन बने। भले विबूचे दोनों जने ॥

धन के कारण ही सभी ऊँच और नीच होते हैं। धन के अभाव में ऊँच को भी नीच कहते हैं। धन के अभाव में तृण भी नहीं प्राप्त होता है और अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है ॥४२॥

छपदु

जौ पर वित्त त मित्र समान आयक घर आवैं।
पुत्र कलत्र चरित्र चित्त चित्रहि-उपजावें ॥

कह केसव कोटि कलानि करि लोभ न छोभ उपाइये।
जा धनहिं धनी मानत घरनि सु मो बिनु रंच न पइये ॥४६॥

अनेक सिद्ध साधना करते हैं, उसकी प्राप्ति में बहुत से मनुष्य आत्मोत्सर्ग कर देते हैं। अनेक प्रकार की विद्यायें उसे जानने की चेष्टा कर रही हैं। चारों वेद ब्रह्म से पूछते हैं। मानो सिंधु उसे ढूढ़ रहे हैं, सात हजार रसातल उसे पाने के लिए लालायित हैं। सातों द्वीपों को देखकर और संसार के सातों वलों को देखकर हे लोभ! तू अनेक कलाओं द्वारा अपने मन को क्षुब्ध मत कर। जिस धन को धनी इस संसार में धन मानते हैं, उसे मेरे अभाव में नहीं प्राप्त किया जा सकता है ॥४६॥

लोभ उवाच

एतो गर्व न कीजै दान। बात कहहि अपने उनमान ॥
बहुत वित्त उपजावनहार। उपजत वित्त न लागहि बार ॥४७॥

हे दान! इतना गर्व तू अपने ऊपर मत कर। तू अनुमान से बात करता है। बहुत सा वित्त उत्पन्न करने वाला हूँ। वित्त को उत्पन्न करने में बहुत अधिक समय नहीं लगता है ॥४७॥

लेवा देई विविध प्रकार। खेती कीजै बहु व्योपार।
खानि, मुकातै लीजै गांउ। धन पावै मठ पती सुभाउ ॥४८॥

लेन देन तो अनेक प्रकार से चलता है। खेती और अनेक प्रकार का व्यापार भी किया जाता है। गाँवों में खेतों का ठेका लीजिए और मठपति तो स्वाभाविक रूप से ही धन पाता है ॥४८॥

छप्पय

सम दम के जम नियम ध्यान धारन जु धीर मति।
तप जप साधि समाधि व्याधि निहि जाति आधि मति ॥
मन्त्र जन्त्र बहु तन्त्र सिद्धि रस रास रसायन।
केसवदास उपास वास हरि तीरथ गायन ॥

पारस प्रसिद्ध गिरि कलप तरु कामधेनु धन काज सब।
साधन अनेक धन हेतु तूं दान भयौ कि भयौ न अब ॥४६॥

धैर्य-बुद्धि वाले राम का दमन कर सयम और नियम में ध्यान धारण करते हैं। जप तप करके समाधि लगाते हैं। अनेक प्रकार से जन्त्र-मन्त्र की साधना कर रस, रास और रसायन तैयार करते हैं। अनेक प्रकार के उपवास, तीर्थों पर वास तथा गायन करते हैं। प्रसिद्ध गिरि पर पारस, कल्प वृक्ष, कामधेनु आदि सभी साधन धन के निमित्त ही हैं ॥४६॥

दान उवाच

हौं न सकौं कछु कहि सकोच। सबही तैं दुर्ल्लभ धन पोच॥
बसुधा कहत भरी बहु रत्न। हाथ न आवे कोनहु जत्न ॥५०॥

सकोच के कारण मैं कुछ कहना नहीं चाहता हूं। सबसे अधिक दुर्लभ नीच धन ही है। लोग कहते हैं कि पृथ्वी अनेक रत्नों से भरी हुई है, किन्तु उनमें से एक भी यत्न करने पर नहीं मिलता है ॥५०॥

धन धरनी पति रूप प्रमान। सो-पुनि जायतु दान विधान॥
दाता श्रद्धा ईं तैं करैं। तूं न कछू श्रद्धहिं अनुसरै ॥५१॥

धन पृथ्वी पर पति के रूप में है। वह दान देने पर ही जाता है। दाता श्रद्धा-पूर्वक उसे देने के बाद फलता-फूलता है, किन्तु तू कुछ भी श्रद्धा का अनुसरण नहीं करता है ॥५१॥

छपदु

स्मृति अष्टादस मुनि पुरान अष्टादस जेते।
चौंदह विद्या चारि वेद बुध बूझहिं तेते।
जल थल सकल पुनीत सुधा स्वाहा सुदेसमति।
सुभ तिथि वार नियोग जोग उपराग काल गति।
सुनु लोभ लाभ कारन कहै तपजपादि तैंहू अवै।
धर्म कर्म इहि कर्म भुइ सुहिं बिहीन निष्फल सबै ॥५२॥

इसी कारण से अठारहों स्मृतियाँ, अठारहों पुराण, चौदहों विद्यायें और चारों वेद पूजे जाते हैं। समस्त जल-थल पवित्र है। योग और वियोग, शुभ तिथि और दिन काल की गति से होते ही रहते हैं। फिर भी हे लोभ! तू लोभ के कारण जप तप की बात कहता है। मुकुन्द विहीन इस पृथ्वी पर सभी धर्म कर्म व्यर्थ हैं॥५२॥

लोभ उवाच

दीने हीं जीये है सत्ति। राजा नल कब दई विपत्ति?
सुपचनि दीने कब हरिचन्द? सत्यासुर तरु आनँद कन्द॥५३॥

यदि तुम्हारे अन्दर शक्ति है, तो तुमने कब राजा नल को विपत्ति दी? नीच लोगों को कब तुमने राजा हरिश्चन्द्र को दिया? क्या कभी सत्यासुर तरु आनन्दकन्द रहा है?५३॥

कबहीं लंक विभीषन दई। मन्दोदरी रूप दिन नई?
गनिका[1] कबहीं दीनो मुक्ति? दान छेड़ि दे अपनी जुक्ति॥५४॥

विभीषण को लंका कब दी? मन्दोदरी रूप में क्या नित्य नई थी? गणिका को कब मुक्ति दी? हे दान! तू अपनी युक्तियों को छोड़ दे॥५४॥ १—वेश्या

छप्पय

दीननि दान दिवाइ करत तू वित्तहीन दिन।
वित्त गए बुधि जाइ, गए बुधि जाति सुद्धि तिन।
सुद्धि गए नहिं सिद्धि, सिद्धि बिनु सुख नहिं पावै।
सुख विहीन बहु दुःख, दुःख घर घर भटकावै।
कह केसव पर घर जाइ तू हरिहू की सोभा हरहि।
रे! मिले मामे[1] यह बूझिये मित्र दोष दिन दिन करहि॥५५॥

दीनों को दान दिला कर तू सभी को वित्तहीन करता रहता है। धन के अभाव में बुद्धि चली जाती है और बुद्धि के चले जाने पर स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति के अभाव में सिद्धि नहीं मिल सकती है और सिद्धि के

बिना सुख मिलना असम्भव है। तू दूसरे के घर पर जा कर हरि की शोभा का भी हरण कर लेता है। तेरे मिले रहने पर मित्र प्रतिदिन दोष करने रहते हैं ॥५५॥ १ – तेरे मिले रहने पर

दान उवाच

दान दिए नासत सब रोग। दान दिए उपजत दिन भोग॥
दान दिए दिन सम्पति बढ़ै। दान दिए जगती जसु बढ़ै ॥५६॥

दान देने से सारे रोगों का विनाश हो जाता है। दान देने से नित्य-प्रति भोग की वस्तुयें प्राप्त होती रहती हैं। दान देने से ही नित्य सम्पत्ति बढ़ती है और संसार में यश फैलता है ॥५६॥

लोभ, सु जी महँ जैसी होइ। तैसोई समुझै सब कोइ॥
तावे हों बरनत हौं तोहिं। आपुन सो जिनि जानहि मोहिं ॥५७॥

हे लोभ! जिसके मन में जैसा होता है, वह वैसा ही समझता है। इसलिए तुझसे कहता हूँ कि तू अपने ही समान मुझे मत समझ ॥५७॥

छपदु

लिखि देत पत्र रिन काढि बहुरि लै रहत लोभ लचि।
उरगावत रजपूत उरग[१] नितु जात सोचि पचि।
दै जगदीसहि बीच नीच तू भूठहि पारै।
दै पादारथ द्विजनि प्रेत[२] पुनि लेत न हारै।
इहि लोक करत निरवस उहि लोक नरक पारहि कुमति।
हौं जाउँ मित्र के साथ, तू छोड़हि मित्र समूल हति ॥५८॥

केवल पत्र मात्र लिख देने से ऋण मिल जाता है। उस समय लोभ लज्जित होकर रह जाता है। राजपूत ऋण का परिशोध करते हैं और यदि ऋण का परिशोध नहीं कर पाते हैं तो उन्हें इसका बड़ा शोक रहता है। तू ईश्वर को बीच में लाकर झूठ बातें क्यों करता है। ब्राह्मणों को दान देने के बाद जीव सभी वस्तुओं को ग्रहण कर लेता है। तू इस संसार में

सबको यशहीन करता है और उस लोक में नर्क वास में कराता है। मैं मित्र के साथ जाता हूं और तू मित्र का समूल विनाश करके छोड़ देता है ।।५८।। १—ऋण का परिशोध, २—जाव ।

लोभ उवाच

जौ धन होइ त दीजतु दान । धनही ते सब सनमान ॥
जाही के धन सोही धन्य । ताते भलो न धरनी अन्य ॥५६॥

यदि धन होता है तभी तो दान दिया जाता है। धन से ही सब प्रकार सम्मान प्राप्त होता है। जिसके धन है वही धन्य है। उससे अधिक अच्छा इस पृथ्वी पर और कोई नहीं है ॥ ५६ ॥

धनि वहि धनी की जीवन जानि । हानि भए सबही की हानि ॥
जैसे तैसे धन रच्छिए । धन ते धरनी घर लच्छिए ॥६०॥

उस धनी का जीवन धन्य समझिए जिसकी हानि होने से सभी की हानि हो जाती है। जिस प्रकार से भी हो धन को रक्षा करना चाहिए क्योंकि धन से ही पृथ्वी पर घर दिखाई पड़ता है ॥ ६० ॥

छपदु

जिहि धन पतित पुनीत होत साधन बिनु पावन ।
जा बिन पुरुष पुनीत होत ज्यों पतित अपावन ।
जा धन लगि सब काल होत सुर असुरनि बिग्रह ।
जा धन लगि धरनीस करत धरमनि कौ निग्रह[1] ।
सुन, सु धन धन्यायो धरनि महँ धर्म काम कारन करन ।
दिन दान देत दीननि सो धन होत मित्तजीवन हरन ॥६१॥

पवित्र साधनों के अभाव में भी पतित व्यक्ति धन से पवित्र हो जाता है। धन के अभाव में पवित्र पुरुष भी अपावन हो जाता है। धन के कारण से सभी कालों में सुर असुरों का विग्रह होता रहा है। जिस धन से परनीस सभी धर्मों का निग्रह किया करते हैं, वह धन धन्य है, जो कि

इस पृथ्वी पर धर्म-कार्यों में लगता है। हे मित्र! दोनों को धन देने से जीवन ही समाप्त हो जाता है॥ ६१॥ १—अवरोध

दान उवाच

दान दिए कहु को मरि गयो?
अजर अमर को लोभी भयो?
ज्यों खैये पीजे धन धान।
जथा सक्ति त्यों दीजे दान ॥६२॥

इस संसार में दान देने के कारण कौन मर गया और कौन ऐसा लोभी है जो कि अजर-अमर हो गया है? जिस प्रकार से खाया-पिया जाय, उसी समान दान भी दिया जाय॥ ६२॥

अनदीजे सब हसी करै।
चोर लेइ अगिहाई जरै।
कि तौ घरथोई धरनी रहै।
जौ मरि जाहि त राजा लहै ॥६३॥

यदि दान न दिया जाय, तो सभी उपहास करते हैं। या तो उस धन को चोर चुरा ले जाता है या आग के लगने से नष्ट हो जाता है या घर में रखा हा रह जाता है और मरने के बाद उसे राजा ले लेता है॥ ६३॥

छप्पदु

तेरो सखा समूल गयो लंका पति रावन।
करे विभीषन राज सदा मेरो मन भावन।
टोडरमल तुव मित्त मरे सबही सुख सोयो।
मोरे हित बरबीर[1] बिना दुख दीननि रोयो।
तुव सुजनु जगमनि प्रात उठि लेइ न कोऊ नावँ कहँ।
मो मीत मधुक्कर साहि की जस जग मगत जगत्त महँ ॥६४॥

तेरा मित्र लक्षपति रावण समूल नष्ट हो गया और मेरा मनभावन विभीषण वहाँ राज्य करता रहा। तेरा मित्र टोडरमल (अकबर का सचिव जिसने भूमिकर बढ़ाया था) मर गया और उसके साथ ही उसका सम्पूर्ण सुख भी इस पृथ्वी पर सो गया। मेरे राजा बीर बल गरीबों के दुःखों पर रोया करते थे। तेरे जनमनि का प्रातः काल उठकर कोई नाम भी नहीं लेता है। किन्तु मेरे मित्र मधुकरशाह की कीर्ति सारे संसार में जग मगा रही है ॥६४॥ १—बीरबल

लोभ उवाच

दान करहु जनि अति हठ हिये।
बांध्यों बलि अति दानहिं दिये ॥
हर्यो छिताई अति सुदरी।
सो पुनि छल बल तुरकनि हरी ॥६५॥

हे दान ! अत्यधिक हठ मत करो। बलि अत्यधिक दान के कारण ही बांधा गया था। छिताइ अत्यधिक सुन्दरी थी इसलिए उस तुरको ने छलबल से हर लिया था ॥६५॥

अधिक गर्व मारयो सिसुपाल।
अति सूरौ अर्जुन बेहाल ॥
अति हित सीतहिं भयो वियोग।
रोगी भी ससि कियौ वियोग ॥६६॥

अत्यधिक गर्व के कारण ही शिशुपाल मारा गया था। अत्यधिक बली अर्जुन का भी बेहाल हो गया था। अत्यधिक स्नेह के कारण सीता का भी वियोग हो गया था ॥६६॥

छप्पदु

अति उदार धर्मेश्च विदुर तैं मारि निकास्यो।
डसे परीक्षित सांप, भस्त तैं भूरन मारयो।

भोज कियो तैं तुरक बन्दि पुनि परथों पिथौरा[१]।
सुनु भगवान पवारु पूत नहि पावत कौरा।
थति दानि सब दीन भए जिन दीननि दिन दान दिए
कह केसव तोतें होइ सब मैं काको अपमान किए ॥६७॥

अत्यधिक उदार धर्मज्ञ विदुर को मार कर निकाल दिया गया था। राजा परीक्षित को साँप ने काट लिया था और भरत राजा को भूखों रहना पड़ा था। तुरकों को भोज दिया (कौन सा ?) जिसके कारण पृथ्वीराज को बन्दी होना पड़ा। भाग्यवान (भगवान) परमार (पवारु) पुत्र भोजन को तरस रहे हैं। वे सभी दाता अत्यधिक दान दे गये जो कि दीनों को दान देते रहे। तुम्हारे कारण सब कुछ होता है तो मैंने किसका अपमान किया है ॥६७॥ १—पृथ्वीराज

दान उवाच

उलटी, लोभ, लोक की रीति। तातैं हार भयै हूँ जीति ॥
देइ कछू न आपु कौ लहै। तिनहू को मेरोई[१] कहै ॥६८॥

संसार की रीति कुछ उलटी है। इस लिये जीत होने पर भी हार ही रहती है। जो किसी को कुछ भी नहीं देते हैं, उन्हें तू अपना कहता है ॥६८॥ १—अपना ही

जबही जाको होइ विनासु। सबै कर तेरो उपहासु ॥
तू कर सकै कहा बापुरो। तिनकौ तोहि लगावत बुरो ॥६९॥

जभी किसी का विनाश हो जाता है तभी तेरा सब उपहास करते हैं। तू बेचारा क्या कर सकता है। तुझे सभी बुरा कहते हैं ॥६९॥

छप्पदु

केतु बान बलि दड हिरन कस्यप दुख दावन।
सहस बाहु सिसुपालु अहै तेरे मन भावन।

कलित कलंक त्रिसकु बन्धु जालन्धर को गनु।
केसव कस निसक सकुनि राजा दुर्जोधनु।
सुनु लोभ, जीव जानत सबनि जैसी कछु जाकी भई।
लोभ कियो जा धरनि कौं सो काहू संग नहिं गई ॥७०॥

बेनु, बान, बीरबंड, हिरनकस्यप, सहस्त्रबाहु, शिशुपाल आदि दुःखों को देने वाले तेरे मन भावन हैं। त्रिशंकु का भाई जालन्धर संसार का कलंक है। कंस, शकुनि, राजा दुर्योधन आदि की जैसी भी दुर्गति हुई वैसी संसार के सभी लोगों को ज्ञात है। जिस किसी ने भी इस संसार में लोभ किया वह उसके साथ कभी नहीं गया है ॥७०॥

लोभ उवाच

अजहूँ तैं रे अधिक सयान!
जग को जानत जदपि विधान ॥
भले बुरे जग में अवतरैं।
पाप पुन्य सब को अनुसरैं ॥७१॥

संसार का विधान जानने के बाद भी तू चतुरता की बातें करता है। भले बुरे सभी इस संसार में अवतरित होते हैं और वे पाप पुन्य का अपनी इच्छानुसार अनुसरण करते हैं ॥७१॥

कोऊ स्वर्ग नरक महं परै।
तिन को तूं मेरे सिर धरै ॥
लिख्यौ कर्म को मेटि न जाइ।
कहा रंक कहा राजा राइ ॥७२॥

कोई स्वर्ग नर्क में पड़े, उसे तू मेरे शिर पर क्यों थोपता है। कर्म में लिखे हुये का किसी भी प्रकार से विनाश नहीं होता है, वह चाहे राजा हो चाहे भिखारी ॥७२॥

छप्पदु

भूप भूमि पर प्रगटि मेंटि मारत प्रति पारत।
सुख तें रासत निकट, दुःख ते देस निकारत

करत रंक ते राज, राज तैं रंक करत अब।
सासन सुभ अरु असुभ सदा सेवक मानत सब ॥
नृप स्वारथ सिद्धि प्रसिद्ध नृप देत लेत रसहू विरस।
कहु,दान,दोष ह्यां कौन को ? जीवत मरत अदिष्ट वस ॥७३॥

राजा भूमि पर जन्म लेकर प्रतिपालन करता है और मारता भी है। सुख को अपने निकट रखता है और दुख को देश से बाहर निकालता है। राजा से भिखारी और भिखारी से राजा बनाता है। सभी सेवक शासन को शुभ और अशुभ दोनों ही मानते हैं। स्वार्थ वश प्रसिद्ध एवं सिद्धि को प्राप्त राजा भी नीरस वस्तुओं में रस लेते हैं। हे दान ! कहो यहाँ पर किसका दोष है ? अदृष्ट के वश में होकर सब जीवित मर जाते हैं ॥७३॥

दान उवाच

बहुत निहोरो तोसों करौं। कहै त तेरे पाइन परौं ॥
तोकों ही सिख एक। छाड़ि देइ जो अपनी टेक[१] ॥७४॥

तुझसे मैं बहुत विनती करता हूँ और यदि तू इससे भी सन्तुष्ट न हो, तो मैं तेरे पैर पड़ सकता हूँ। तुझे मैं एक सीख देना चाहता हूँ और वह यह कि तू अपनी टेक छोड़ दे ॥७४॥ १—हठ

जो तू सबही को सब लेइ। एक बात तू मोकों देइ ॥
जिहि तैं तेरौं नीको होइ। चिर जीवैं तेरे सब लोइ ॥७५॥

यदि तू सब का सब कुछ ले लेता है तो, मुझे भी एक वस्तु माँगे दे दे। कम से कम जिनसे तेरा लाभ हो, वह तो सब लोग **(लोटे)** चिरंजीवी रहें ॥७५॥

छप्पय

करु ग्रुग्रहन ग्रह दान ग्रहन, समहू धनु पावहि।
वरु वेचहि संतान वरु कुसुपचनि[१] सिर नावहि।

वरु लंघन[1] करि परहि मांगु वरु भीख छांडि पति।
ववन अन्न वरु भखहि हियेजो भूख भई अति ॥
गनि एक कोद सब पुन्य अरु एक कोद जी दीजई।
वस पाय पाप लाखनि करैं दीनौं, लोभ, न लीजई ॥७६॥

कुग्रहों का दान कर धन का संग्रह कर ले, संतानों को बेच कर स्वरचों के सम्मुख नत मस्तक हो। उपवास कर ले अथवा भिक्षा माग ले। यदि अत्यधिक भूख लगाहो तो वमन (उल्टी) किए हुए अन्न को ग्रहण कर ले। एक ओर सम्पूर्ण पुण्य को दे दे और दूसरी लाखों पाप भी कर ले, किन्तु लोभ को किसी भी प्रकार ग्रहण न करे ॥७ ॥ १—उपवास

लोभ उवाच

भली कही तुम मोसों बात।
मैं सुनि सुख पायौं सब गात ॥
तुम अति बड़े धर्म के तात।
सिखवत हौ सिख अति अवदात ॥७७॥

तुमने सुमने अच्छी बात कही। मैं उसे सुनकर अत्यधिक सुखी हुआ। तुम धर्म धुरन्धर हो, इसी लिए सीख दे रहे हो ॥७७॥

हौं जु कहौं सो चित दे सुनौ।
सुनि सुनि अपन मन मैं गुनौ।
जो कछु जग में होई प्रमान[1]।
मोपै कैसे छूटै, दान ॥७८॥

मैं जो कह रहा हूँ उसे चित्त लगाकर सुनो और उस पर विचार करो। हे दान! संसार में जो कुछ भी प्रमाणित हो चुका है, उसे कैसे छोड़ जा सकता है ॥७८॥ १—प्रमाणित

छपदु

भूल्यों गुन सब सीखि लेइ सब कहैं सयाने।
भूल्यों मारग लेइ फेरि अव चलै पयाने।

भूल्यो लेखो लेइ फेरि यह न्याउ कहावे।
भूल्यो व्रत जो लेइ फेरि तौ सोभा पावे।
कह केसव देव अदेव यह कहत दोष कीजै न चिरि।
सुनु दान, यहै गति दान की भूलि जु देइ सु लेइ फिरि॥७६॥

सभी चतुर लोग कहते हैं कि भूले हुए गुणों को साथ लेना चाहिए। पुनः जब कभी प्रकाश मिले तो भूले हो मार्ग को अपना लेना चाहिए। भूली हुई बात को धैर्य से देख ले, यही न्याय है। भूले हुए व्रत को ही यदि व्यक्तिचारण कर ले, तो उससे व्यक्ति शोभा पाता है। देव और अदेव सभी कहते हैं कि दोषों की पुनरावृत्ति नहीं होना चाहिए। हे दान! तेरी भी यही गति है कि जो दान देता है वही फिर दान लेता भी है॥७६॥

दान उवाच

लोभ कहाँ यह सीखी युक्ति? किधौं आपने उर की उक्ति॥
विप्र पूजि दीजतु है गाइ। लीजै दुहती बेर छुड़ाई? ॥८२॥

हे लोभ! तूने इस युक्ति को कहा से सीखा है? या यह तुम्हारे हृदय की ही खोज है। विप्र की पूजा करके गाय दी जाती है और क्या यह उपयुक्त होगा कि किसी के लिए उस गाय को ब्राह्मण से ले लिया जाय॥८०॥

दीजत वेटो वोर व्याहि। देव दाइजौ[१] दीरघ ताहि।
सुदर साधु हिय मैं हेरि। कहि धौं, लोभ, लेइगौ फेरि?॥८१॥

पुत्री के व्याह के अवसर पर बहुत सा दहेज दिया जाता है। हे लोभ! विचार कर बता कि क्या उस धन को वापस ले लिया जायगा॥८१॥ १—दहेज

छप्पय

राम भूमि, हरिचन्द राज, दीनी लीनी मुनि।
कर्ण तुचा, सिवि मास दियो जगदेव सीस सुनि।
दीनी सुता जजा त तासु की छोभु न कीनौ।
जैसे प्रगट दधीचि देह छल बल हूँ दीनो।

बिन यह संसार असार गनि भूलि दातु कौनें न दिय।
कहु कौन भूप सुरलोक महँ सपनें हू दिय फेरि लिय ! ॥८२॥

राम ने भूमि का दान किया, राजा हरिश्चन्द्र ने राज्य का दान दिया, कर्ण ने त्वचा का दान दिया, जगदेव को रक्षा के लिए शिव ने अपने शरीर का माँस दिया। ययाति ने बिना किसी क्षोभ के अपना पुत्री दे दी, दधीच ने अपने शरीर का अस्थियाँ दे दी। इनमें से कितनों ने संसार को असार समझकर दान नहीं दिया। हे लोभ ! बता कि इनमें से कितनें ने स्वर्गपुरी में जाकर दान को वापस माँगा॥ ८२॥

लोभ उवाच

दोहा—देइ लेइ को कौन को ? एक रूप सब जानि।
सरग नरक को आइ अब, जग प्रपंचमय मानि ॥८३॥

देने और लेने वाले में भेद कैसा ? दोनों हो एक रूप के अंश हैं। संसार को प्रपच मान कर लोग स्वर्ग नर्क को जाते है॥ ८३॥

एकै लेवा देवा दान। दान लोभ कै एक निदान।
एक आत्मा घट घट बसै। एकै रूप सकल जग लसै॥८४॥

दान को लेने वाला और दने वाला एक ही है। दान और लोभ का निदान भा एक ही है। एक आत्मा है और वह सभी के अन्दर-वास करती है और वही एक रुप सभी को दिखाई देता है॥ ८४॥

सबही की गति एकै जानि। पाप पुन्य को एकै मानि।
जाको आदि न जाको अंतु। ऐसो ई जग समुझ्यो संत॥८५॥

सभी का एक गति है और पाप पुण्य भी एक हो हैं इनका कोई आदि अत नहीं है, ऐसा ही ससार को संतो ने समझा है॥ ८५॥

छप्पै

मीच भीच जल धाम काम क्रोध मद लोभ बस।
जनमु मरनु सबकी जु होतु सन काल एक रस ।

को पितु को सुत मित्र सत्रु को कहि केसव गुनि
कहि गये स्वर्ग नर्क को गयौ लिये कौन को नर्क भय।
सुनि दान दीन छिन छीन मति प्रपचमय[1] ॥८६॥

मात , भ्रात , जल , धाम , काम, गर्व , मोह लोभ के वश में सभी का जन्म एव मरण एक समान हुआ करता है। इस ससार मे कौन किसका पुत्र है और कौन किसी का शत्रु है। स्वर्ग नर्क के सम्बन्ध मे सभी ने कहा अवश्य है, किन्तु क्या कोई ऐसा भी है जिसे नर्क का भय ले गया हो। हे दान ! इस ससार के दानों की मति क्षीण है और ससारप्रपचमय है ॥ ८६ ।

१—जल कपट से पूर्ण

दान उवाच

तू जु कहत सब एकै आइ। दूजै है न बताऊ काहि।
ऐ वी सन्यासिन के धर्म। तिनके है सुख दुख के कर्म ॥८७॥

तू जो यह कहता कि सब कुछ एक ही है और दूसरा कुछ भी नहीं है। इस प्रकार का समझना सन्यासियों का धर्म है। वे बिना सुख दुख की अभिलाषा के कर्म किया करते है ॥ ८७ ॥

हो गृहस्थ की बरनों बात। जिनके मन जगमग अवदात।
एक बुद्धि जो तेरैं भई। सो नौ तौ झगरौ क्यों ठई ॥८८॥

मैं गृहस्थों के जीवन की बात कर रहा हू, जो कि इस ससार में रहते है। तू अपनी एक बुद्धि के कारण मुझसे झगड़ा क्यों कर रहा है। ॥ ८८ ॥

छप्पै

ऐक राज इक रक एक नर राज रक।
ऐक सुखी एक दुखी एक नहीं सुखी दुखी तन।
सुखी दिए जिन दान दुखी जिन दै फिर लीनै।
दुखी सुखी सुन ते न दिये नहि लिये न दीनै।
अवलोभ निलज यकवादु तजि तू वालिसुअति वालिभद्र।
दिन स्वर्ग नर्क द्द सदा देपिय दानि अदानि कह्व ॥८९॥

एक ही राज्य में रंक भी रहता है और राजा भी। कोई उसमें सुखी रहता है और कोई दुखी। किन्तु जिन लोगों को सुख दुख दोनों ही स्पर्श नहीं करते हैं वे लोग सुखी रहते हैं और दान देते हैं और वे दुखी रहते हैं जो दान देकर वापस ले लेते हैं। उन लोगों को न तो सुख सताता है न दुःख, जो कि न किसी से कुछ लेते है और न किसी को कुछ देते हैं। हे लोभ तू अब व्यर्थ का बकवाद छोड़ दे। दान देने के कारण ही स्वर्ग, नर्क देखने को मिलता है। ८६॥

चौपाई

जब उपज्यो वह रोष विलास। तब यह बानी भई अकास।
बिन्ध्यवासिनी देवी जहां। तुम दोऊ जन जावौ जहां ॥६०॥

जिस समय रोष और विलास दोनों ही बढे, उस समय आकाशवाणी हुई कि विन्ध्यवासिनी देवी जहा है वहीं तुम दोनों जाओ ॥६०॥

दूरि होइगो कलह कलेसु। सो कीजे जु करै उपदेसु।
यह सुनि बिंध्याचल कहँ चले। जहाँ वरुन वरु फूले फले ॥६१॥

जो कुछ विन्ध्यवासिनी आदेश दे, उसको स्वीकार करना। उसी से तुम दोनों का कलह और क्लेश दूर होगा। यह सुनकर दोनों विंध्याचल की ओर गये, जहा पर तरुण वृक्ष फूले-फले थे ॥६१॥

इति श्री भूमडलाखडमडलेस्वर श्री महाराजधिराज श्री वीर सिंह देव चरित्रे मिश्र केसवदास विरचिते दान लोभ विंदवासिनी दरसन नाम प्रथम प्रकासः ॥१॥

देषी तिन विंध्याचल वनी। फल दल पग मृग सोभा घनी।
प्रलयकाल वेला सी लगै। अर्क समूह जहाँ जगमगै ॥१॥

दोनों ने विध्याचल में जाकर विन्ध्यवासिनी देवी-देखा। सम्पूर्ण नगर फल-फूल, पशु पक्षियों से शोभायमान था। वहाँ पर अर्क समूह जगमगा रहा था और प्रलय काल की वेला का सा अनुभव हो रहा था ॥१॥

उत्तिम नरपति कीसी भेव। फलै सकल श्रीफल की भेव।
बहु पलास जुत लक सुरूप। हरि कैसी मूरति बहु रूप ॥२॥

उत्तम पुरुष के सदृश उसका वेश था। श्रीफल की भांति सभी फलों का देने वाली थी। बहुत से पलासों से युक्त था। हरि के समान अनेक रूपों वाली ज्ञात हो रहा था ॥२॥

कहुँ सुग्रीउ चमू सी चोर। पनस कुमुद जुत नल परिवार।
अति सुंदर सुभागी सी वसै। सुभ सिंदूर तिलक सी लसै ॥३॥

कहीं पर ऐसा लगता है कि सुग्रीव अपनी सेना को चुराकर पड़ा हुआ है और कहीं जल पनस कुमुद से युक्त सपरिवार है ॥३॥

कुरु सेना सी मैरे जान। द्रोनादिक जइ सकुनि प्रधान।
विंध्याचलु तुइ देख्यो जाइ। अचला घरु अचलनि की राइ ॥४॥

कौरवों की सेना सी लग रही है। द्रोण शकुनि आदि जिसके प्रधान हैं। उन्होंने विंध्याचल अचला का घर है और अपने अचलों का राजा भी ॥४॥

अखिल अडंबर कर जानु। रिषि सकोच सकोची मानु।
सोइ तु है सुग्रीउ समानु। रिच्छ सरिभ के सरिस निधान ॥५॥

विश्व के आडंबर को अच्छा प्रकार से समझ लेना चाहिये। ऋषि अत्यधिक संकोच युक्त है वहाँ तू सुग्रीव के समान है। रिच्छ सरिभ की सब प्रकार से खान है ॥५॥

महादेव सी केसवदास। मलिन विभूत नाग उस्वास।
नारयन ज्यो नैननि हरै। बहु विलास सवन माला धरै॥६॥
महादेव के समान है जो कि विभूति को रमाये हुए है और गले में नाग को लपटे हुए है। नारायण के समान नेत्रों को अपनी ओर खींचती है। अत्यधिक विलास के कारण सभी लोग मालाओं को धारण किए हुए हैं ।६॥

सिसु सो सरसु धारी सग। सिव सो सोहै सिवा प्रसंग।
कबहु कुकंम कर्न सेल सैं। मुष कदरानि वानर बसे॥७॥
पृथ्वी शिशु समान सरस लगती है। शिवजी के साथ पार्वती शोभित होती है। कभी कुकर्म कर्ण के समान लगती है। मुख-कंदराओं में वानर वास करते हैं।७।

सेप असेप छोभ सघरै। प्रति सीसमन मला धरै।
विंध्यवासिनी देखी जाय। देखत ही दुख गये नसाइ॥८॥
शेष और अशेष क्षोभ का संहार करते हैं। शिक्षा प्राप्त करने के लिए माला धारण करते हैं। विंध्यवासिनी को देखते ही सारे कष्ट नष्ट हो गये।८॥

देइ अचल दुति ज्यों दामिनी। सिंघासन थिर ज्यो दामिनी।
विद्याधरा बुधि जिं जघनी। पकज लोचन चन्द्राननी॥६॥
बिजली की भांति अचल द्युति प्रदान करती है। उसका सिंहासन भी दामिनी की भांति ही जगमगा रहा है। वह पंकज लोचना एवं चंद्र-मुखी है॥६॥

कोमल तन बाला पद्मिनी। ईडा नीसी सब सुखदाय।
सकल सुरासुर वंदत पाइ। गधर्वनि गावत रसभरी॥१०॥
यह बाला पद्मिनी कोमल शरीर वाली है। सब प्रकार से सुख देने वाली है। सभी सुर असुर उसको पाकर वंदना करते हैं। गधर्व रसयुक्त अपनी रस युक्त वाणी में गान करते हैं॥१०॥

घानित करति किनरी किनरी । नाचति वहु विधि घाघरी ।
ठारति चोर सिंघ सुन्दरी । बैठी अक वत्र घर लसै ॥११॥

अनेक किन्नर विनाश कर रहे ह और घाघरी अनेक प्रकार से नृत्य कर रही है । चोर सिंधु सुन्दरी में आकर ठहरते है । वस्त्र में बैठी अक शोभा दे रही है ॥११॥

देषि देषि भांवन हँसै । रुद्रानी की सी दुति धरै ।
परभ्रत गजमुख व्योमुख करै । ब्रह्मानी सी पुस्तक धरै ॥१२॥

अनेक प्रकार से देख-देख कर हँमती है । पार्वती के समान द्युति धारण करती है । प्रभात बेला में अपने गणेश जी को व्योमुख करती है । ब्राह्मणी के समान पुस्तक धारण करती है ॥१२॥

चतुर चतुर मुख को मनुहरै । नैन हरति ज्यों नारायनी ।
कमलपानि वनमाला बनी । ऐक पानि असि ऐकत सूल ॥१३॥

चतुरता के साथ मुख को देखता है । नेत्रों को नारायणी के समान अपनी ओर आकर्षित करती है । विन्ध्यवासिनी कमलपानि वनमाला सी बन गई है । एक हाथ मे तलवार है और दूसरे में शूल है ॥१३॥

एक पानि पकज को फूल । ऐक फरस इक सरहि लिये ।
एक चक्र चितामनि किये । जुग कर कलित वजावत वीन ।१४।

एक हाथ में कमल का फूल है और दूसरे में फरस और शर है । एक हाथ में चक्र-चितामनि है और दूसरे मे बजाने वाली वीणा है ॥१४॥

मोहत पग मृग परम प्रवीन । किये प्रनाम दंडवत देषि ।
जीवन जनम सुफल करि लेषि । निकट बोलि दोउन लिये ॥१५॥

पग और मृगों को अनेक प्रकार से आकर्षित करती है । देवी को देखकर दण्डवत-प्रणाम किया । दोनों ने ही अपने जीवन को सफल समझा । देवी ने दोनों को अपने निकट बुला लिया ॥१५॥

दोहा—एक साथ केहि हेतु तुम आये इहि वन बीर।
दान लोभ दोऊ जने कहौ सु उर धरि धीर ।।१६।।

एक साथ तुम दोनों वीर यहां पर क्यों आये। तुम दोनों (दान, लोभ) अपने हृदय में धैर्य धारण कर आने का कारण बताओ ।।१६।।

लोभ उवाच

कहा कहौं सुनु जग स्वामिनी। देवि देवि अंतर जामिनी।
हम में बाढ़यो विविध विवादु। उपज्यो उर में विषय विषादु ।।१७।।

हे संसार स्वामिनी ! तुमसे क्या कहूं। तुम तो अन्तर्यामी हो। हम दोनों में अत्यधिक विवाद बढ़ गया है, इस कारण मन हृदय में अत्यधिक दुख उत्पन्न हो गया है ।।१७।।

सोरठा—देव देखिये जाहु। मिटि है जी को दाहु।
यह अकास बानी भई। ....।।१८।।

विवाद के अवसर पर यह आकाशवाणी हुई कि तुम दोनों देवी के पास जाकर मिलो और उसके मिलने पर तुम्हारे हृदय का दाह समाप्त हो जायेगा ।।१८

छप्पय

बीरसिंह नृपसिंह महामहि मंडल मंडनु।
गहरवार कासी नरेसु दिल्ली दलु खंडनु।
अवि पुनीतु रन जीतु सत्यवर्ती जगवंदन।
धर्म धुरीन..... ... . .. दुष्ट निकंदन।
बुधि विधि निधानु समान निधि केसव कहि तापह चलौ।
सुभ सूरज वंस प्रसंस जग जाहि थपे सोइ भलौ ।।१६।।

राजा वीरसिंह महामंडल की रक्षा करने वाला है। गहरवार वंशी काशी नरेश दिल्ली के दल का खंडन करने वाला है। सत्यवर्ती रण जीत कर संसार में वंदनीय हुआ। वह अत्यधिक धर्म धुरीण था और दुष्टों

का विनाश करने वाला था। अब जो सब प्रकार से बुद्धि का घर है, उसी के पास हम लोग आये। सूर्य वंश ही समार के लिए अच्छा है। संसार में जिसकी स्थापना हो, वही भला है ॥१६॥

दान उवाच

विनवौ सब कुल क्रम को राजु।
नृप शील गुन सकल समाजु॥
परम पराक्रम प्रगट प्रतापु।
कहि ये देवि करि आपु ॥२०॥

उनके कुल का सम्पूर्ण क्रम और राज्य का व्यवस्था तथा राज्य के शील और गुण को कहें। हे देवी! तू उनके सारे पराक्रम को हमें बता ॥२०॥

दिव्य उवाच

दोहा—दशरथु नृप रवि कुल भये कौशिल्या भरतारु।
तिनके पूरब पुन्य किय रामचद्र अवतारु ॥२१॥

सूर्य वंश में कौशिल्या के पति राजा दशरथ हुए। उनके पूर्व पुण्यों के परिणाम स्वरूप राजा रामचन्द्र का अवतार हुआ ॥२१॥

सकल भूमि को भार उतारि। अखिल लोक को काज सुधारि।
चलन लगे बैकुंठहि जबै। कुस को राज दयो है तबैं ॥२२॥

सम्पूर्ण पृथ्वी का भार उतारा और सारे संसार के कार्यों को ठीक किया। जब राम बैकुण्ठधाम को चलने लगे तब कुश को सारे राज्य का भार सौंप दिया ॥२२॥

अवध पुरी तव ऊजर भई। सबै सदेह राम सँग गई।
कुसस्थली कुस बैठे जाइ। आसमुद्र पृथ्वी को राइ ॥२३॥

उस समय सम्पूर्ण अवधपुरी अत्यधिक उज्जवल हो गई और सभी सदेह राम के साथ गये। आसमुद्र पृथ्वी का राजा कुश कुशस्थली में जाकर रहने लगा ॥२३॥

कुस के कुल को एक कुमार। आनि धर्यौ कासी भुव पार।
देखि रूप, गुन सील समाज। ता कहँ पुरजन दीनों राज ॥२४॥

कुश के वंश का एक कुमार काशी में आकर रहने लगा। उसके गुण रूप, शील एवं स्वभाव को देखकर लोगों ने उसे राज्य दिया ॥२४॥

राजा वीरभद्र गम्भीर। तिनके प्रगटे राजा वीर।
तिनिके करन नृपति सुत भए। दान कृपान करन गुन लए ॥२५॥

उनके पुत्र वीर, गम्भीर राजा वीरभद्र हुए और उनके भी पुत्र वीर कर्ण हुए जिन्होंने दान देने और कृपाण चलाने के गुण को अपनाया ॥२५॥

वहां कर्ण तीरथ तिन कर्यौ। पूरन पुन्य प्रभावनि भर्यौ।
तिनके प्रगटे अर्जुनपाल। अर्जुन सम जन पद प्रतिपाल ॥२६॥

राजा कर्ण ने वहाँ पर कर्ण तीर्थ की स्थापना की, जो कि सब प्रकार से पुण्य प्रभाव से पूर्ण था। राजा कर्ण के पुत्र अर्जुन पाल हुए जो कि अर्जुन के समान ही लोगों की सुरक्षा करने वाले थे ॥२६॥

रूठि पिता पै काशी तजी। आनि महोनी नगरी भजी।
जीति लयो तिन गढ़ कुडार। तिनके साहन पाल कुमार ॥२७॥

राजा अर्जुनपाल पिता से रुष्ट होकर काशी से चले आये और मोहिनी नगर में आकर रहने लगे। उन्होंने गढ़कुडार को जीत लिया। इनके पुत्र साहनपाल हुए ॥२७॥

सहज इद्र तिनके गुन ग्राम। तिनके नृप नौनगदेव नाम।
तिनके सुत नृप-कुल सिरताज। प्रगटे पृथु ज्यों पृथ्वीराज ॥२८॥

साहनपाल में स्वाभाविक रूप से ही इन्द्र के समान गुण थे। इनके पुत्र नौनकदेव हुए। इनके पुत्र पृथ्वीराज हुए, जो कि पृथु के समान थे और वे राजाओं के सिरताज हुए ॥२८॥

तिन कें भए मेदिनी मल्ल। राइसेन देव, पूरन मल्ल।
तिन कें, सुत जीते भव भूप। अर्जुन देव नृप अर्जुन रूप ॥२९॥

पृथ्वीराज के पुत्र मेरनामल्ल राइनेन और पूरन मल्ल हुए । इनके पुत्रों ने सम्पूर्ण पृथ्वो से जात लिया । अर्जुन देव साक्षात अर्जुन के समान थे ॥२६॥

सकल धर्म तिन धरनी किए । पोडस महादान दिन दिये ।
स्मृति अष्टादस सुने पुरान । चारयौ वेद सुने सुनु दान ॥३०॥

उन्होंने सब प्रकार के धर्म को पृथ्वी पर किया । उन्होंने सोलह प्रकार के दान दिये और स्मृतियों और अठारहो पुराणों और चारों वेदों को सुना ॥३०॥

तिन के सुत भयौ परम सुजानु । रिपु खडन राजा मलखान ।
जब जब जहँ जहँ जूझहि अरे । भूलि न पाउँ पिछहडे धरे ॥३१॥

उनके पुत्र राजा मलखान हुए, जो कि सब प्रकार म चतुर और रिपु का विनाश करने वाले थे । जहा कहीं भी युद्ध में वे आगे बढ जाते थे, फिर कदम पोछे नहीं हटाते थे ॥३१॥

तिनको सुत भो सील समुद्र । नृपति प्रताप रुद्र जनु रुद्र ।
दया दान कोऊ न समान । मानहुँ कलम वृच्छ परमान ॥३२॥

उनके पुत्र प्रतापरुद्र हुए जो कि रुद्र के समान थे और शोल में समुद्र के समान विशाल थे । दया तथा दान में उनके समान कोई नहीं था ॥३२॥

नगर ओडछो गुन गँभीर । आनि वसायो धरनी धीर ।
कृष्णदत्त मिश्रहि तिन दई । पौरान की वृत्ति दिन नई ॥३३॥

राजा प्रताप रुद्र ने नगर ओडछे को पृथ्वी पर बसाया । और कृष्णदत्त मिश्र को उन्होंने पौराणिक वृत्ति दी ॥३३॥

मेरे कुल को राजा राउ । सब पूजिहैं तुम्हारे पाउ ।
तिनको सुत भो भारति चद्र । भरत खड मडल ज्यो चद ॥३४॥

मेरे कुल के सभी राजे तुम्हारे चरणों की आराधना करेंगे । उनके पुत्र भारतिचन्द हुए, जो कि भरतखड पर शशि के समान थे ॥३४॥

तुरकीन सिर न नवायौ नेम। पचिहारे सेरनु असलैम
एक चतुर्भुज ही सिर नयो। बहुरि सु प्रभु वैकुंठहिं गयो ॥३५॥

भरनिचन्द ने कभी भी तुरकों के सामने अपना सिर को नहीं झुकाया। शेर अस्लेम परिश्रम करते-करते हार गये। उन्होंने यदि किसी के सामने मस्तक नवाया, तो विष्णु भगवान के सामने। वह सीधे वकुन्ठ धाम को गये ॥३५॥

पुत्र न, राज देइयतु काहि ? राजा भए मधुक्करसाहि।
रानि गनेश देवि घर तासु। चौदह भुवन भये जस जासु ॥३६॥

कोई पुत्र नहीं, इसलिए राज्य किसको दिया जाय ? अतएव राज्य का भार अपने भाई मधुकर शाह को दिया। उनकी रानी गनेशदेवी को चौदहों भुवन यश गान थे ॥३६॥

जिन जीत्यो रन न्यामति खान। अली कुली खा बुद्धि निधान।
जाम कुलीखा जालिम जयो। साहि कुली खा भाग्यो गयो ॥३७॥

मधुकरशाह ने युद्ध में न्यामत खां, अलाकुली खां को जीता। दुष्ट जामकुली खां भी युद्ध में पराजित हुआ। शाहकुली खां तो इनके सामने से मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ ॥३७॥

सैदखान तिन लीन्यों लूटि। अबदुल्लह खां पठयो कूटि।
गनो न राजा राउत वादि। हारयो जिन सों साहि मुराद ॥३८॥

मधुकरशाह ने सैदखां को तो लूट लिया और अब्दुल्ला खां को मार पीट कर भेज दिया। उन्होंने कभी भी राजा राउत को कुछ नहीं माना। और लोगों को कौन कहे उनसे शाहजादा मुराद भी हार गया था। ३८॥

जिहि अकबर लीनी दिसि चारि। वेंहू तिन सों छाड़ी रारि।
एकै प्रभु नरसिंह अराधि। स्वारथ परमारथ सब साधि ॥३९॥

जिस अकबर ने चारों दिशाओं को जीत लिया था, उसने भी उनसे लड़ना बन्द कर दिया। उन्होंने एकमेव नरसिंह की आराधना की और उसी के आधार पर स्वार्थ और परमार्थ दोनों को साध लिया था। ३९॥

ब्रह्म रंध्र मन छाड़ि शरीर। हरिपुर गयो नृपति रन धीर।
तिनके प्रगटे आठ कुमार। आठों दिशा समान उदार ॥४०॥

मधुकरशाह ने ब्रह्मरंध्र को फोड़कर नश्वर शरीर को छोड़ दिया और धीर वीर राजा हरिपुर को (स्वर्ग) चला गया। उनके आठ पुत्र थे, जो कि सभी उदार थे ॥४०॥

जेठे रामसाहि रनधीर। गुन गन मन बल बुद्धि गँभीर।
तिन ते लहुरे होरिल राउ। खड्ग दान दिन दूनो चाउ ॥४१॥

मधुकर शाह के ज्येष्ठ पुत्र रामशाह थे जो कि शक्ति मन, तथा बुद्धि से गंभीर थे। उनसे छोटे होरिलराव थे जिन्हें खड्ग चलाने का बहुत चाव था। ॥४१॥

सादिक महमद खा जिन रयो। रवि मंडल मग हरिपुर गयो।
तिन थें लघु नरसिंह सुजानु। जूझ जुरै नहि तासो आन ॥४२॥

होरिलराव ने सादिक और महमद खां को पराजित किया और वे सूर्य मार्ग में स्वर्ग को गये। उनसे छोटे नरसिंह थे, जिन्होंने कि आन के लिए युद्ध में जूझना अधिक उपयुक्त समझा ॥४२॥

रतन सेन तिनि तें लघु जानि। गहि जान्यौ तिनही खग पानि।
बानो बाध्यो जाके माथ। साहि अकब्बर अपने हाथ ॥४३॥

नरसिंह से छोटे रत्नसिंह थे जो कि खड्ग चलाने में बहुत निपुण थे, जिनके शिर पर शाह अकबर ने स्वयं पगड़ी बांधी थी ॥४३॥

बानो बांधि बिदा करि दियो। जीति गौर को भूतल लियो।
गौर जीति अकबर को दयो। जूझि ब्याज बैकुंठहि गयो ॥४४॥

अकबर ने पगड़ी बांधकर रत्नसिंह को बिदा कर दिया और गौण देश को जीतकर अकबर को दे दिया और स्वतः (रत्नसिंह) युद्धस्थल में स्वर्गगामी हुए ॥४४॥

ताको पुत्र राउ भूपाल। जिहि जान्यौ गहि कर करवाल
तिन तें इन्द्रजीत लघु लसैं। सो गढ़ दुर्ग कछौवा वसैं ॥४५॥
रतनसिंह के पुत्र भूपाल हुए, जिन्हें तलवार अच्छे प्रकार से चलाना आता था। उनसे छोटे इन्द्रजीत थे, जो कछौवा गढ में रहते थे ॥४५॥

गुहरवार कुल कौं तन जान। साहिराम कौं जानौं प्रान।
ताको सकल सुखानि कहि देखि। सुरपति जनम वृथा करि लेखि।४६।
गहरवार कुल का वह शरीर था और शाहिराम का प्राण ही था। उसके सभी सुखों को देखकर इन्द्र भी अपना जन्म निरर्थक मानते थे ॥४६॥

तिनके उग्रसेन सुत भए। जासों हारि बघेरे गए।
तिन ते लहुरे राउ प्रताप। दाहत दिन दुर्जन कौ दाप ॥४७॥
इन्द्रजीत के पुत्र उग्रसेन हुए, जिनसे बघेरे हार गये थे। उनसे छोटे राजा प्रताप थे जो नित्य बैरियों को जलाया करते थे।४७।

तिन ते लहुरे उर आनियैं। राजा वीरसिंह जानियें।
सुत तिनके एकादस सुनौं। एकादस रुद्रहि जनु गुनौं ॥४८॥
उनसे छोटे राजा वीरसिंह थे। उनके ग्यारह पुत्र थे जो कि ग्यारह रुद्रों के ही समान थे ॥४८॥

जेठ जुझार राइ रन धीर। पुनि हरदौल बुद्धि गम्भीर
प्रबल पहारसिंह रनकाल। बाघराज रिपु दुर्जन साल ॥४९॥
उनके ज्येष्ठ पुत्र जुझार राय थे जो कि रण में कभी भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ते थे। उनसे छोटे हरदौल थे जो कि बड़ी ही गम्भीर प्रकृति के थे। रण में काल के समान पहारसिंह थे और दुष्टों का विनाश करने वाले बाघराज भी थे ॥४९॥

भीम समान वली चंद्रभान। पुनि बलवीर राई भगवान।
नर नरकेहरि नरहरि दास। कृष्ण दास अरु माधवदास।५०।

भीम के समान महाबली चन्द्रभान था और अत्यधिक शक्तिशाली राजा भगवान था। मनुष्यों में नरहरि दास, माधवदास और कृष्णदास सिंह के समान थे ॥५०॥

तिन तें लहुरे तुलसी दास। विमल कृत्ति अति जग में जासु।
तिन तें लहुरे हरिसिंह देव। मूरति वंत मनौं कोउ देव ॥५१॥

उनमें छोटे तुलसीदास थे जिनकी विमल कृति अभी तक संसार में प्रसिद्ध है। उनसे छोटे हरिसिंह देव थे जो कि साक्षात मूर्तिमान देव थे ॥५१॥

तिनके पुत्र दोइ सुखदाई। राइ अमृत अरु खाडेराइ।
सब के राजा राजाराम। जिनि की दसहू दिसि है नाम ॥५२॥

उनके दो पुत्र—अमृतराय खाडेराइ—सुख देने वाले हुए। और सभी के राजा राजाराम (रामशाह) हुए जिनकी कीर्ति दसों दिशाओं में फैली हुई है ॥५२॥

अकबर साहि कृपा करि नई। राम नृपति कहँ बैठक दई।
जिनके सुत भए साहि सग्राम। दच्छिन दिसि जीत्यौं संग्राम ॥५३॥

अकबर बादशाह ने कृपा करके उन्हें बैठक दी अर्थात अपनी सभा में सम्मिलित किया। उनके पुत्र संग्राम शाहि हुए जिन्होंने कि दक्षिण दिशा को संग्राम में जीत लिया ॥५ ॥

तिन सुत मे श्री भारथ साहि। भरत भगीरथ के सम आहि ॥५४॥

उन्हीं पुत्रों में से एक भारथशाहि हुए जो कि भरत और भगीरथ के समान थे ॥५४॥

दोहा

वंस बखान्यो सकल गुन, बहु विक्रम उतसाहु।
वीरसिंह जिहिं पुर बसैं, तह दोऊ जन जाहु ॥५५॥

वंश का वर्णन सभी गुणों एवं उनके पराक्रम के साथ मैंने किया। अब आप दोनों हो वहां जावें, जहां पर वीरसिंह निवास करता है ॥५५॥

इति श्री सत्सकल्प भूमंडलाखडलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विंध्यवासिनी संवाद वर्णनं नाम द्वितीय प्रकाशः ॥२॥

लोभ उवाच

बोल्यो लोभ छोभ मति भई। सुनि सुनि राजनीति यह नई।
मुनियतु एक पिता के पूत। दोई जन धरमज्ञ सपूत ॥१॥

नव न राजनीति की नई-नई बातों को सुनकर लोभ अत्यधिक क्षुब्ध होकर बोला। सुना है कि दोनों एक ही पिता के पुत्र हैं और दोनों धर्मज्ञ और सपूत हैं ॥१॥

ऐसी कहूँ सुनी नहिं होइ। एकहि घर में राजा दोइ।
अब यह हार जीति क्यों भई। वे जो एक अनेक कौन विधि ठई ॥२॥

पिता मैंने अभी तक कहीं नहीं सुना है कि एक ही घर में दो राजा हों। यह हार इस समय जात में कैसे बदल गई। जो कुछ भी ठीक हो वह कृपा करके सब कहें ॥२॥

कहो मात! कौन पाप बहु विरोध बाढ़ियो।
राम बानधाम दीन, वीरसिंह वाढ़ियो ॥३॥

हे माता! यह बताओ कि पाप किस प्रकार से इतना बढ़ गया। राम सिंह को बानपुर को रियासत दी गई किन्तु फिर भी वीरसिंह बढ़ता ही रहा ॥३॥

श्री देव उवाच

सुनहि लोभ तैं यूझी भली। फेरि दुहुनि की कीरति चली।
कहौं विरोध पाप ज्यों वढ्यो। पूरव पूरे पुन्यनि गढ्यो ॥४॥

हे लोभ! तूने अच्छा ही तो पूछा। उसके बाद फिर दोनों का कीर्ति बढो। विरोध और पाप दोनों ही किस प्रकार से बढे उन्हें और तुम्हारे पूर्व पुरुषों को मैं कहूंगा ॥४॥

हौं उनकी कुल देवी दान। देखत दुहुँ मैयाचि समान।
कहिहौं पाप विरोधनि सने। चित दै सुनिये दोई जने ॥५॥

मैं उनकी कुल देवी हू अतएव मेरे लिए दोनों भाई समान हैं। दोनों ही चित्त लगाकर सुनो कि दोनों किस प्रकार विरोध तथा पाप में लिप्त होते गये ॥५॥

दोहा

मधुकर साहि महि मतु राखि प्रेम को भौन।
वीरसिंह की वृत्ति को बैठक दई बडोन ॥६॥

मधुकरशाह ने तो प्रेम भवन रखा है और वीरसिंह की वृत्ति के निमित्त बडौन को बैठक दी। ६।

सवैया

वीर नृपति के भुज दड अखड पराक्रम मडप मौंडी।
जाइ जटी जड़ सेस के सीस, सिंची दिन दान जलावलि ओडी।
फैलि फली मन काम सबै दुज पुजनि कैं करि सींव पिछोडी।
देखत दूरि भये दुख केसव साच की वेलि बड़ौंन मैं चौड़ी ॥७॥

राजा वीरसिंह की भुजाओं का पराक्रम सभी जगह छाया हुआ था। उसके पराक्रम का यश शेष भगवान तक को पता चला और दान देने के कारण वह यमुना की भांति बढ़ता ही रहा। ब्राह्मणों की सभी प्रकार की

मनोकामनाएं पूर्ण हुई। वारसिंह को देखते ही सबके दुख भाग गये और वहीन स सत्य का महिमा बढ़ता गई ॥७॥

चौपई

उररे रुद्र बडौंनिहा भागि। भागे सबैं सेख मुह लागि।
लीनो प्रथम पवांओ पेलि। पुनि जीत्यौ तोंवर दल ठेलि ॥८॥

बड़ौनिहा भागकर अपनी रक्षा कर सके। वे सभी शेख का मुँह देखकर भाग खड़े हुए थे अर्थात शेख भी उनका सहायता न कर सका था। पहले पवायां जात लिया और फिर तोमर दल को जीत लिया। ८॥

बस्यो त्रास नर वर प्रति मीन। केला रस जाकैं आरीन।
बहुरो सबरे मैंना मारि। डारे नाट सबै सहारि ॥६॥

राजा अत्यधिक त्रसित होकर अपने घर में जाकर रहने लगा जिसे रसास्वाद में अत्यधिक रुचि थी। मैना (नीच जाति) जाति के सभी लोगों को मार कर वापस आया और नाट (एक नीच जाति) जाति के लोगों का भी सहार कर दिया ॥६॥

सुभट निकट जनि गनौं गँवार। जूझ असूझ कियों तिहि वार।
दोई गढ लीने लैं परा। एक वेरछा अरु करहरा ॥१०॥

विकट योधाओं को गवार मत समझा। उसने अज्ञान के कारण उन लोगों पर आक्रमण किया। बेरछा और करहरा नाम के दोनों गढ़ों को राजा ने जात लिया ॥१०॥

हथनौरा कीनो चौंतरा। मारयो बाघ जग जागरा।
भाग्यौ हुसन खान तजि त्रास। तब भाडौर कियो बस वासु ॥११॥

हथनौर का तो बिल्कुल विनाश कर दिया। जग जागरा बाघ को भी मार डाला। भय छोड़कर हुसन खा भाग खड़ा हुआ तब उसने भाडौर में जाकर निवास किया ॥११॥

वारक समाइचो खा कही। एरछ की सब लीनी मही।
अपव गोपाचल की अग। उवरि गयो मद ज्यों मातग ॥१२॥

एक बार ननाइचा खा ने कहा था उसने ऐरछ का सारी भूमि ले ला है। किन्तु आज सम्पूर्ण ग्वालियर उसके नाम से काप रहा है। सभा का गर्व नष्ट हो गया है ॥१२॥

नगस्वरूपिनी छद

वडोन बैठि कै लई। जलाल साहि की मही।
सुकृति जित्ति कै गई। दसौं दिसा नई नई ॥१३॥

जलालुद्दीन का सारा पृथ्वी बड़ौन में बैठकर हा वारसिंह ने जात ला। दसों दिशाओं में सुकृति जानकर अपने नये रूप में सभी के पास सुकृति गई ॥१३॥

दोहा

वीरसिह अति जोर मे सुन्यो साहि सिरताज।
ता उमरानहि सौंपिये जाहि राज की लाज ॥१४॥

वारसिंह के सम्बन्ध में अकबर ने बहुत कुछ सुना। सुनने के बाद अकबर ने कहा कि वारसिंह के लिए किसी सरदार को दिया जाय जिस राज्य का लज्जा का ध्यान हो ॥१४।

चौपाई

भई फिरादि साहि सिर धुन्यो। एक दड लौं मन मैं गुन्यो।
आस करन कौं भौ फरमान। वीरसिंह को घालहि मान ॥१५॥

अकबर से वारसिंह का शिकायत का गई। वह एक दण्ड विचार करता रहा। वारसिंह के मान का नाश करने के लिये आसकरन को आज्ञा दी गई।१५।

धमसाहि कहं लीजै साथ। राह चलाइ लगावहि हाथ।
माथैं मान लियौ फरमान। तबहीं गढ़ तैं कियौ पयान ॥१६॥

राम शाहि को साथ ले लो। जहा कहीं भी मिले, वहीं पर आक्रमण किया जाय। अकबर बादशाह का आज्ञा को स्वीकार कर गढ से आसकरन चल दिया ॥१६॥

दल चतुरग चौगुने चाउ। मेल्यौ आइ चांद पुर गांव।
राजा राम साहि तह गए। मिले जगमनि भय के लए ॥१७॥

साथ में चतुरंगनी सेना ला और उस समय मन में अत्यधिक उत्साह था। चाद्पुर ग्राम मे आकर डेरा डाल दिया। वहीं पर राजा रामशाहि गये और भयभीत होकर जगमनि से मिले ॥१७॥

सकिले सिगरे मैंना जाट। नहटा नाहद गूजर जात।
मिल्यौ हसन खां जाइ पठान। अरु हरदौल पवार सुजान॥१८॥

मैना, जाट, नहटा, नाहट, गूजर (ये सभी नाच जातियां है) जात के सभी लोग इकट्ठा हुए। पठान और हरदौल म जाकर हसन खा मिला।१८॥

राजाराम पॅवार सुजान। और हसन खा प्रबल पठान।
इन पूरब दिसि कियो मिलान। उत्तर करन जगमनि जान॥१६॥

राजाराम चतुर पवार था और हसन खा चतुर पठान। ये दोनो पूव दिशा में आकर मिले और जगमन उत्तर दिशा की ओर गया ॥१६॥

इन्द्रजीत अरि मर्दन आप। बीरसिंह औ राउ प्रताप।
छाड़ि बड़ोन तिहूँ नर नाह। चौकी करी उहुं दल माह ॥२०॥

इन्द्रजीत, बीरसिंह तथा प्रतापराउ ने अपने आप शत्रुओं का विनाश किया। उन्होंने बड़ौन को छोड़कर युद्ध के मैदान में आकर डेरा जमा दिया ॥२०॥

दिन दिन दूनौ ढोवा होइ। फिरि फिरि जात सकल मद खोई।
ऐसी भांति बहुत दिन भए। जगमनि आसकरन पह गए ॥२१॥

नित्यप्रति ठेवा दूना ही होता जाता था। बार-बार गर्व का विनाश हो जाता था। इसी प्रकार जब बहुत दिन बीत गये तब जगमान आसकरन के पास गया ।।२१।।

करन कह्यो सुनु, जगमनि धर ! । परम ढीठ ये तीनो वीर ।।
कहै जगमनि माथौ ढोरि । यह सब राम साहि की खोरि ।।२२।।

करन ने कहा कि हे धीर जगमन ! सुन ये तीनों ही वीर अत्यधिक ढीठ हैं। जगमनि ने माथा ठोककर कहा कि यह सब रामशाहि के कारण है ।२२।

छांड़ो राजा अपनी टेक। ये चार्यो भैया हैं एक।।
आसकरन सुनि रिस वस भए। राम साहि के डेरा गए।।२३।।

हे राजन् ! तुम अपना टेक को छोड़ दो। ये चारों भाई एक हो है। ऐसा सुनकर आसकरन खा कुपति होकर रामशाहि के डेरे में गया ।।२४।।

राम कियो आदर बहु भांति। उदौ कियो ससि तें ही राति ।।
सकुचि कह्यो तव दूलह राम। आए राज इहा किहि काम ।।२४।।

रामशाहि ने बहुत अधिक आदर किया। अत्यधिक संकुचित होकर दूल्हा राम ने कहा कि आप यहां किस काम से आये है ।।२४।।

सुनियो राम वचन के वर्ने। वोल्यो हसनखान सों कर्ने ।।
कटकु साजि आयो इहि देस। देस देस के जोरि नरेस ।।२५।।

रामशाहि के बातों को सुनकर कर्न हसनखा से बोला कि तुम देश देश के राजाओं को जोड़कर इस देश में सेना लेकर आये हो ।।२५।।

आए विरसिंह देव की ओर। केवल रामसाहि की जोर ।।
मेरी गई रही कैमाम। विगरत सबै साहि के काम ।।२६।।

केवल रामशाहि के बल पर वीरसिंह पर चढ़कर आये हो। मेरी तो सारी ममता ही नष्ट हो गई है रामशाहि के सभी काम बिगड़ते जा रहे हैं।२६।

देखहु विधि ससि सोभन कियौ। करिके बहुरि कुलच्छन दियौ ॥
समझि कह्यौ तब दूलह राम। करहु सु तिहि सुधरै सब काम ॥२७॥

विधि ने सब प्रकार से चन्द्र को शोभा दी है किन्तु इतना होने पर भी उसे कलंकित कर दिया है। उस समय दूलहराम ने कहा कि अब ऐसी युक्ति बताओ कि जिसमें सभी बिगड़े हुए काम बन जायें ॥२७॥

ससि तम पिये देखिये अक। भूलि लोक तेहि कहत कलक ॥
तब हँसि आसकरन यह कह्यौ। कहे बिना अब जाइ न रह्यौ ॥२८॥

चन्द्रमा अंधकार को पी लेता है फिर भी संसार उस भूल से कलंकित कहता है। इस समय हँसकर आसकरन ने कहा कि बिना कहे हुए अब मुझसे रहा नहीं जाता है ॥२८॥

गढ़ मैं बैठि रह्यौ इन्द्रजीत। मन क्रम वचन तुम्हारौ मीत ॥
जाहि तुम्हारौ लाग्यौ काम। तासौं क्यों करिहौं सग्राम ॥२९॥

गढ़ में बैठा हुआ इन्द्रजीत तेरा मन वचन कर्म से मित्र है। जिससे तुम्हारे काम निकलेगा उससे तू कैसे संग्राम करेगा ॥२९॥

यह सुनि बोल्यौ राजाराम। करनौ मोहि साहि को काम ॥
दिन उठि करौं मोरचे नए। घर बैठे गढ़ कौने लए ॥३०॥

यह सुनकर राजाराम बोला कि मुझे शाहि का काम करना है। इ लिये नित्य उठकर नये मोरचे बनाओ। आज एक किसी ने घर बैठकर युद्ध नहीं किया है ॥३०॥

बहुरे कर्न महा सुख पाइ। राम मोरचा दियै चलाइ ॥
कीनैं जाइ मोरचा जैं। प्रबल पहारी दौरे तैं ॥३१॥

कर्ण अत्यधिक सुख पाकर वापस आया। रामशाहि ने अपना मोर्चा चला दिया। तब रामशाहि ने अपना मोर्चा लगाया तब पहाड़ी लोग अक-मण के लिये दौड़ पड़े ॥३१॥

भागे सुभट मोरचा छांड़ि। जूझे मायाराम रन मांड़ि ॥
मायाराम सो भायहिं भरे। सुनतहिं राम महारिस भरे ॥३२॥

मायाराम युद्ध स्थल में मर गया और सभी मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए। भाई मायाराम के मरने का समाचार सुन कर रामशाहि बहुत कुपित हुआ ॥३२॥

त्रिभंगी

सुनि प्रोहित जुज्झै, लाज अरुज्झै बैर बढ़े।
जहँ तहँ गज गज्जिय, दुंदुभि बज्जिय, सज्जिय सभट तुरंग चढ़े।
तुपकें सर छुट्टहिं, तट्टर टुट्टहिं, घुट्टहिं कायक पच्च बनें।
जुज्झें कुल नायक, जालय पायक युद्ध विनायक क्रुद्ध घनें ॥३३॥

प्रोहित सुनकर विवाद करने लगे। लज्जा में वे उलझ गये और बैर बढ़ता ही गया। इधर उधर हाथी गर्जना कर रहे हैं, दुंदुभी बज रही है घोड़ों पर चढ़कर वीर सज रहे हैं। तोपों से गोले छूटे रहे हैं। तहर टूट रहे हैं। कुछ कायक पच्च बने हुए घुट रहे हैं। कुलों के नायक आहत हुए और पायक जालय प्रत्यधिक कुपित हुआ ॥३३॥

इहिं विधि ढोवा किये अपार। दुहू ओर बहु भयौ हथ्यार ॥
उटांके गाउ सो डेरा करे। हय गय नर बहु घायनि भरे ॥३४॥

इस तरह से अनेक प्रकार का ढोवा हुआ। दोनों ओर से काफी लड़ाई हुई। युद्ध के बाद उटक गाँव में जाकर डेरा डाला। हाथी, घोड़े, मनुष्य सभी घायल हो गये थे ॥३४॥

कह्यौ कर्न सौं राम नरेस। लरे लोग मेरे उठि पेस[1] ॥
जो यह गांउं हमें तुम देहु। तौ हम जूझु करें करि नेहु ॥३५॥

राजा रामशाहि ने कर्न से कहा कि मेरे सामने उठ उठ कर लोग युद्ध कर रहे थे। यदि यह ग्राम तुम मुझे दे दो तो मैं युद्ध करूँ ॥३५॥

(१) आगे।

कर्न कह्यो सुनि राजा राम। ये तौ लगत पवायें ग्राम॥
राम नृपति रुख पायौ दान। उचकि चले नृप सहित पठान॥३६॥

राजाराम की बात को सुनकर कर्न ने कहा कि यह गाँव पवायें में लगता है। जब राजाराम ने कर्न का रुख दान का पाया तब उत्साह के साथ युद्ध करने के लिए पठान के साथ चल दिया॥३६॥

उचकि गये जब राजा राम। उचम्यो करन जगमनि वाम॥
ऐसौ वीरसिंह परताप। ह्वै गयो दस दिसि कटक कलाप॥३७॥

जब उत्साह के साथ राजाराम चला गया तब विजेता कर्न का बाम अंग फड़का। वीरसिंह का ऐसा प्रताप है कि दसों दिशाओं का युद्ध कठिन हो गया है॥३७॥

दोहा

दान लोभ इहि भांति सुनि उपजे बधु विरोध॥
कपटनि लपटे अटपटे सुनु पटु प्रगट्यौ क्रोधु॥३८॥

इस प्रकार से हे दान लोभ! दोनों भाइयों के बीच में विरोध उत्पन्न हुआ। कपट में फँसे होने के कारण क्रोध उत्पन्न होता रहा॥३८॥

आयो दच्छिन दिसि मन धरैं। वैरम खां के सुत आगरैं॥
जगन्नाथ अरु दुर्गा राउ। द्न्है आदि दै बहु उमराउ॥३९॥

वैरम खाँ के पुत्रों को आगे कर दक्षिण दिशा में आये। जगन्नाथ और दुर्गाराव को बहुत सी सेना और उमराव दिए॥३९॥

अकबर पात साहि नरनाथ। रामसाहि नृप दीनैं साथ॥
राजाराम मिलें तब ताहि। अति आदर कीनों चित चाहि॥४०॥

अकबर ने राम शाहि को भी साथ भेजा? राजा उसे आदर के साथ आगे मिले॥४०॥

वीरसिंह पुनि कियो हुलास। पठए तिन पह गोविंददास॥
राम साहि बहु द्विज अकुलाइ। अपने डेरहि लयौ बुलाइ॥४१॥

बीर सिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके पास गोविन्द दास को भेजा। रामशाहि ने व्याकुल होकर अपने डेरे में ब्राह्मण को बुला लिया ॥४१॥

दान मान भय भेद बषानि। कियौ विप्र नृप अपने पानि ॥
संग लै आवै संग लै जाइ। सात दोस इहि रीति रहाइ ॥४२॥

भयमुक्त होने के कारण नृप ने अपने हाथ से ब्राह्मण दान दिया। *साथ में लाये और साथ में ही ले जाये, इस प्रकार से सात दिन और* रात रहना चाहिये ॥४२॥

तौलौं राख्यौ अपने हाथ। यह दुख राम साहि नर नाथ ॥
जौ लगि दौलत खान पठान। आनि सैमरी करयौ मिलान ॥४३॥

उस समय तक अपने हाथ में रखो। हे नरनाथ रामशाहि! यह दुख है। जब तक दौलतखान पठान है तब तक सैमरी में आकर मिलते रहो ॥४३॥

प्रगट पवावैं भौ आकूत। आयौ बैरम खाँ कौ पूत ॥
यह कहि विप्र बिदा करि दयौ। कहा करैं हम बहुतौ कियौ ॥४४॥

पवायें में आकूत प्रकट हो गया है। वहाँ पर बैरमखाँ का पुत्र आये। इस प्रकार से कहकर ब्राह्मण को विदा कर दिया। हम जो कुछ भी कर सकते थे, किये ॥४४॥

नाहिन मानत दौलतिखांन। जूझहु जनि भजि राखहु प्रांन ॥
आनि कह्यो यह गोबिंद दास बोलें बीरसिंह देव प्रकास ॥४५॥

यदि दौलत खाँ नहीं मानता है, तो अपने प्राणों की रक्षा भाग कर करो जब गोविंद दास ने वापस आकर यह कहा, तब वीरसिंह ने प्रकट रूप में कहा ॥४५॥

यह द्विज दै भैया अरु राज। दुहु मिलि कीनो परम अकाज ॥
तब तिहि कुवर भगायौ गाउँ। आपुन तमकि रह्यौ तिहि ठाउं ॥४६॥

इस ब्राह्मण और भाई ने मिलकर बहुत अकाज किया है। उसने कुंवर को गाँव से भगा दिया और स्वयं वहाँ पर आकर युद्ध के लिए डया भी नहीं ॥४६॥

दौलति खान साथ को गनै। मुगल पठान खान बल घनै॥
वीरसिंह अति रिझवै ताहि। या बन तैं उठि वा बन जाहि॥४७॥

दौलत खाँ के साथियों की गिनती नहीं हो सकती है। मुगल, पठान, खान सभी तो हैं। वीरसिंह उन सभी को एक जंगल से दूसरे जंगल में जा जा कर परेशान कर रहा है ॥४७॥

आगे मारै पाछे जाइ। हरै पाछिले अगिले आइ॥
तहां सबै ते घेरत फिरै। कुंवर न तिनको घेरो घिरै॥४८॥

आगे मारकर फिर पीछे चला जाता है। आगे आकर फिर पीछे की ओर जाता है। सभी लोग कुंवर को घेरने का प्रयास करते हैं, किन्तु कोई भी घेर नहीं पा रहा है ॥४८॥

सोयौ नहीं न खायौ खान। पचि हारयो हिय दौलति खांन॥
हाथ न आवै कुंवर समर्थ। ज्यौं जड़ कै जिय पूर्न अनर्थ॥४६॥

दौलत खाँ न तो सोया और न कुछ खाया, किन्तु फिर भी सब प्रकार से वह हार गया। किसी भी प्रकार से कुंवर हाथ नहीं लगा जिस प्रकार से जड़का जीवन पूर्ण अनर्थ होता है ॥४६॥

गये पठायें सब उमराउ। मुन्यो खान खाना सब भाउ॥
तबै दिये बसीठ पठवाइ। लिख्यौ लेख दै बहुत बड़ाइ॥५०॥

सभी खान-खाने पठानों को वापस हो गये। तभी लेख को बढ़ाकर लिखा और बसीठों के हाथ से उसे भेज दिया ॥५०॥

जो तुम मिलहु मोहि इहि बार। बहुत बढ़ाऊँ राजकुमार॥
तिन कहँ मिलन कुंवर तब गये। दौलति खां आगे ह्वै लये॥५१॥

यदि इस बार तुम मुझसे मिल लोगे तो तुम्हें राजकुमार बहुत आगे बढ़ा दूंगा। दौलत खाँ से मिलने के लिए कुंवर गये। दौलत खाँ ने आगे बढ़कर स्वागत किया ॥५१॥

मिले नवाब बहुत सुख पाइ। डेरह कह पठये सुखपाइ ॥
जबही जाइ कुंवर दरबार। लै बहुरै बहु मुख्य अपार ॥५२॥

जब कभी भी कुंवर दरबार में जाता था, तभी खुशी होकर वह वहाँ से वापस आता था ॥५२॥

दच्छिन दिसि कौं कियौ पयान। बीरसिंह लै सग सुजान ॥५३॥

वीरसिंह को लेकर दक्षिण दिशा में प्रयाण किया ॥५३॥

॥ मनोरमा भर छंद ॥

लुके धूड भाना गई आसमाना। बड़े विंध्यसाना भये धूरि धाना ॥
तला तोय माना भये मुक्कमाना। कलगी बिठाना तिलगी न ठाना ॥
सुविद्या निधाना तजे रवान पाना। करैं जातु धाना पलानो पलाना ॥
डगे ठानठाना मुदिग देवताना हमैं छत्र नाना चले खानखाना ॥५४॥

आसमान में सूर्य डूब गया। आकाश धूमिल हो गया। तालाब पानी से भरे हुए हैं। कलँगी को धारण कर लिया किन्तु तिलगी के लिए कोई निश्चय नहीं किया। विद्या के निधान ने खान पान सभी कुछ छोड़ दिया। जातुधान इधर उधर पलान करने लगे। जिस किसी भी दिशा में खानखाना अपने कदमों को बढ़ा देता है, उसी दिशा में अनेक छत्र हिलने लगते हैं ॥५४॥

॥ चौपही ॥

नियरी कछु धरार जब रही। बीरसिंह तब बिनती कही ॥
मो कहँ देइ नवाब बडौनि। मैं सबही राखौं तिहि भौन ॥
सुचित होहि मेरे रजपूत। हौं अति सेवा करौं अभूत ॥५५॥

जब बरार निकट आया, तब वीरसिंह ने विनती की कि मुझे बडौन दे दो तो मैं सभी को घर में रख लूगा। मेरे सभी राजपूत प्रसन्न होंगे और मैं तुम्हारी बहुत सेवा करूँगा ॥५५॥

सुनि नवाब यह उत्तर दियौ। मैं अपनो घर दक्षिन कीयौ॥
दक्षिन मैं मुँह माग्यौ देउं। अपने सम तुम कौ करि लेउँ॥५६॥

नवाब ने यह सुनकर उत्तर दिया कि मैंने अपना घर दक्षिण में बनाया है। दक्षिण में जो कुछ भी तुम मागोगे, वहां मैं तुम्हें दूँगा और तुम्हें अपना ही समझू गा ॥५६॥

बीर कह्यौ दक्षिन किहि काज। हौं बडौनि की बाँध्यौ लाज॥
बिनु बडौन पल एक न रहौं। झूठी क्यों नवाब सों कहौं॥५७॥

वीरसिंह ने कहा कि दक्षिण मेरे लिए किस काम का है। मुझे तो बडौन की लज्जा रखनी है। बिना बडौन के मैं एक क्षण भी विश्राम नहीं ले सकता। मैं नवाब से झूठी बात क्या कहूँ ॥५७॥

यह बिनती कर राजकुमार। डेरा कीनो आनि बिचार॥
तब सग्राम साहि इहि बीच। सौंह करी हरिदीनै बीच॥५८॥

यह विनती करके राजकुमार ने डेरा डाल दिया और हरि दीन को बीच में करके सग्रामशाहि ने सौगन्ध खाई ॥५८॥

सब मिलि कीजौ चलनु बिचारु। चल्यौ अहेरैं राज कुमारु॥
करे मिलान बीच द्वै चारि। आयौ अपन देस मझारि॥५६॥

सभी ने मिलकर विचार किया और शिकार के निमित्त निकल पड़े। बीच में दो चार मिलान किये और अपने देश के बीच में आ गये ॥५६॥

आवत ही बातैं भगि गये। तब तन मन सुख पूरन भये॥
सुन्यौ नवाब बीर घर गयो। अपनौ मन अति दुचितौ कियौ॥
तब तिहि समैं छिद्र यह पाइ। रामपूत यह बिनयौ जाइ॥६०॥

आते ही सब थाने को भाग गये, इससे मन बहुत सुखी हुआ। नबाब ने जब सुना कि वीरसिंह घर गया तब उसका मन उचट गया। उस समय इस छिद्र को पाकर रामशाहि ने जाकर विनती की ॥६०॥

वह हम कौ लिखि दीजै ठान। करिहैं दूरि कै हरि हैं प्रान॥
दयौ नवाब लेख लिखि हाथ। पठयौ दौलति खां के साथ॥६१॥

यदि आप उस स्थान को मुझे लिखदें तो हम उसे उस स्थान से या तो दूर हटा देंगे या मार डालेंगे। नबाब ने पत्र लिख दिया और दौलत खाँ के साथ भेज दिया ॥६१॥

दौलति खां गोपाचल गये। राजकुंवर घर आवत भए॥
सजि दल बल परि जन परिवार। गयो पवायें राजकुमार॥६२॥

दौलत खा ग्वालियर गया और वहाँ उसने राजकुमार को घर आते हुए देखा। दलबल को सजाकर तथा परिजन परिवार के लोगो को लेकर राजकुमार पवायें गया ॥६२॥

राउ भुपाल बली इन्द्रजीत। राउ प्रताप सदा रनजीत॥
वीर सिंह के हित के लये। ये चारयौ एकै ह्वै गये॥६३॥

इन्द्र जीत सभी भूपाला में अधिक बली है। प्रतापराव सदा रण मे विजयी होने वाला है। वीरसिंह के हित के निमित्त मे चारो एक हो गये ॥६३॥

सो चारयौ ठाकुर भये एक। अरु लरिवे की कीनी टेक॥
दौलति खान इतै पगु दयौ। फिर बन दखिन ही कह गयौ॥६४॥

चारो ठाकुरो ने एक होकर युद्ध करने का निश्चय किया। दौलत खाँ ने पहले तो इधर पैर बढ़ाया, किन्तु फिर दक्षिण दिशा को वापस लौट गया ॥६४॥

साहि सग्राम सबहि पछिताइ। आए फिरि ओड़छे लजाइ॥
आवन जान दिये करि कानि। वीरसिह देउ भतीजे जानि॥६५॥

संग्राम माहिं फिर लज्जित होकर ओड़छा भाग आये। वीरसिंह ने भतीजा समझ कर और ग्लानि मानकर आने-जाने दिया ॥६५॥

॥ हीरा छंद ॥

सुनहु एहु, तजि सनेहु बहु विरोध पाप की ॥
तीसरे जु ठयौ असलु भयौ पूत बाप की ॥
कहहिं और करहिं और, औरै चित आनिबों।
जगतु कहहि वीर सहहिं ईस सहै जानिबी ॥६६॥

इधर सुनो। स्नेह को छोड़कर पाप का विरोध किया है। तीसरे असफलता का कारण पिता पुत्र में ही संघर्ष हो गया। कहते कुछ हैं, करते कुछ और हैं और मन में कुछ रखते हैं। संसार वीरसिंह को ईश्वर का अंश मानता है ॥६६॥

इति श्रीमत्सकल भूमंडला खंडलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विंध्यवासिनी संवादे वधविरोध वर्नन नाम तृतीय प्रकाश ॥३॥

॥ दान उवाच ॥

कहतु दान यह अंजलि जोरि। प्रनत देव तैंतीस करोरि ॥
और जु कहिनै पाप विरोध। सब तै तुम कौतहुल प्रबोध ॥१॥

दान ने हाथ जोड़ कर कहा कि तैंतीस कोटि देव हैं। कृपया पाप विरोध के सम्बन्ध में और भी कुछ कहें क्यों कि तुम्ह उन सबका अधिक ज्ञान है ॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

दानु दुराइ कपट कहं हिये । इंद्रजीत के हित को लिये ॥
वीर सिंह सौं दूलह राम । सौंह करी छ्वै सालिग्राम ॥२॥

हे दान ! इन्द्र जीत के लिये दूलह राम ने कपट को हृदय म छिपाकर शालिग्राम को छूकर सौगन्ध खाई ॥२॥

मेरी सेव करी तुम तात । सवैं जानिवो एकैं बात ॥
सुख सो रहौ जाइ तुम धाम । जा जन पद की रच्छा काम ॥३॥

हे तात ! तुमने मेरी सेवा की है । मैं सब बातों का मूल एक ही बात मानूँगा । तुम सुखपूर्वक जाकर अपने घर पर रहो । इस जनपद की रक्षा का भार मेरे ऊपर है ॥३॥

तुम रच्छहु मो कहँ चितु चाहि । हौं रच्छहु तुम कौ भजि साहि ।
एक समै बुधि वल श्रवगाहि । दच्छिन चले श्रकब्बर साहि ॥४॥

मेरी इच्छा यही थी कि तुम रक्षा का भार लो । मैं तुम्हारी सब प्रकार से रक्षा करूँगा । बुद्धि एवं शक्ति का अवगाहन कर अकबर दक्षिण दिशा को चला ॥४॥

साहि मुरादि गये परलोक । सुनि यह उर बहु उपजे सोक ॥
मन ही मन सोचै सुलतान । आनि धौरपुर करयौ मिलान ॥५॥

मुरादशाहि के परलोक गामी होने से सुलतान के हृदय को बड़ा दुख हुआ । सुलतान अपने मन में विचार करने लगा कि किसी प्रकार धौरपुर मिलान हो जाय ॥५॥

सुनि श्रक्ताने राजा राम । भूलि गयौ तिहि वल धन धाम ॥
सुभ तिथि वार नखत तजि भौन । सत्वर राजा गये वडौन ॥६॥

राजाराम सुनकर उकता गया । वह अपना धन, धाम शक्ति आदि सब कुछ भूल गया । शुभ तिथि, दिन नक्षत्र को छोड़कर राजा तुरन्त ही अपने घर वडौन चले गये ॥६॥

इहि विधि दिल्लीपति जिय जानि। गोपाचल गढ़ मेले आनि॥
वीर सिंह की सासन, सुनी। रैयत रावत हैं अति घनी॥७॥

दिल्ली पति ने ऐसा अपने मन में विचार कर ग्वालियर की ओर चल पड़ा। वीरसिंह के शासन के सम्बन्ध में सभी कुछ सुना और राजा तथा प्रजा दोनों ही अधिक धनी हैं॥७॥

तब वोल्यौ कछवाहा राम। मोहिं परयौ दछिन को काम॥
मैं सब गुनह छमौं मुख मानि। वीर सिंह कह मिलऊ आनि॥८॥

तब कछुवाहा राम बोला कि मुझे दक्षिण की ओर काम है मैं तुम्हारे सभी गुनाहों को क्षमा कर दूंगा यदि तू वीरसिंह को मुझसे मिला दे॥८॥

राजा जबही कियौ पयान। आइ गयौ तब ही फरमान॥
वीर सिंह आगे ह्वै लये। अति आदर अहदिन कौं दये॥६॥

राजा जब पयान करने लगा तब फरमान आ गया। वीरसिंह ने आगे बढ़कर अहदियों का आदर किया (बादशाहों के यहां अहदी नौकर रहते थे, जो बड़ा काम आने पर भेजे जाते थे)॥६॥

अहदिनि कौं सुभ डेरा दये। वीरसिंह राजा पहँ गये॥
हम कौं दीजै सीख दिवान। सीख तुम्हारी सदा प्रमान॥१०॥

अहदियों को शुभ स्थान ठहरने के लिये दिया और फिर राजा से मिलने गये। वीरसिंह ने कहा कि हे दीवान मुझे शिक्षा दीजिये। तुम्हारी सीख को मैं अवश्य मानूँगा॥१०॥

॥ वीर सिंह उवाच॥

राजा कह्यो सुनौ हो वीर। तुम सों हम बोलैं गंभीर॥
हौं जु जातु हौं सेवा साहि। तुमही लगि चिंता चित दाहि॥११॥

राजा ने कहा कि हे वीरसिंह! तुम से गभीरता के साथ मैं बोल रहा हूँ। यदि शाहशाहि की सेवा में मैं जाता हूँ तो तुम्हें दुख होगा॥११॥

या कहि राजा कियौ पयान। गोपाचल भेंटे सुलतान॥
राम साहि देखत ही चित्त। सुख पायौ दिल्ली के मित्त॥१२॥

यह कहकर राजा ने प्रस्थान किया। ग्वालियर में जाकर सुलतान से भेंट की। दिल्ली के मित्र रामशाहि को देखते ही चित्त अत्यधिक सुखी हुआ॥१२॥

कै विचार मन बुद्धि निधान। तबही कूच कियौ परमान॥
जगम जीवन कौं जलराइ। उमगि चल्यौ जनु कालहि पाइ॥१३

मन बुद्धि से विचार करके कूच किया। माना काल को पाकर जीवन जगम के राजे सभी निकल पड़े हों॥१३॥

देस देस के राजा घनें। मुगल पठाननि कौ को गनें॥
जहां तहां गज गाजत घनें। पुरवाई के जनु घन घनें॥१४॥

सभी देशों के राजे आये। मुगल पठानों को तो गिना ही नहीं जा सकता था। जहां तहां सभी गर्जना कर रहे थे। पुरवाई के माना घने बादल से छा गये हैं॥१४॥

चौपद दुपद कहां लौं कहौं। कहे लहौं तो अन्तु न लहौं॥
या रग एक चलेई जात। एक देखिये पीवत खात॥१५॥

चौपद और दुपद के सम्बन्ध में कहां तक कहा जाय और यदि कहना प्रारम्भ करूँ, तो अन्त नहीं मिलेगा। सभी एक ही रंग में मस्त चले जा रहे हैं। उसमें से कुछ खा पी रहे हैं॥१५॥

उलहत ऊट एक देखिये। लादत साजु एक पेखिये॥
एक न तबू दियौ गिराइ। रसत उठावत एक बनाइ॥१६॥

कोई ऊँट को उलाह रहा है और कोई उस पर साज लाद रहा है। कोई तबू गिरा रहा है और कोई उन्हें ठीक करके रख रहा है॥१६॥

वनिक चलत इक लादि अपार। एकनि के वैठे बाजार॥
दल में सब कौ चित्त भुलाइ। कूच मुकाम न जान्यौ जाइ॥१७॥

कुछ बनिये लदान करके चल रहे हैं। कुछ बाजार में बैठे हुए हैं। दल के सभी लोग कूच करने के मुकाम को भूल गये ।।१७।

ग्रौर अति उताइले भये। साहि ग्रकब्बर नरवर गये ॥
सुनि कदरा सिंह की घर्नी। छोड़ि गयद जात वह बनी ॥१८॥

ग्रत्यधिक उतावले होकर बादशाह ग्रकबर नरवर को गये। जिस प्रकार से सिंह की कदारा न आना हुग्रा सुनकर हाथी उस स्थान को छोड़कर चला जाता है। ॥१८॥

त्यों सुनि वीरसिंह की ठौनि। ग्रकबर डेरी दई वड़ौनि ॥
नरवर तें जब घाटी गए। तब देखे पुर ऊजर भए ॥१६

उसी प्रकार से वीरसिंह के निवास स्थान को सुनकर ग्रकबर ने बड़ौन में डेरा डाल दिया नरवर से जब ग्रकबर घाटी गये तब उन्होंने देखा कि सारा पुर उजड़ गया है। ॥ १६॥

भागे इन्द्रजीत के लये। साहि कछू सुनि रोसिल भये ॥
ताही बिच ग्रहदी फिरि गए। तिन सों वचन भाति इमि भये ॥२०॥

इन्द्रजीत के लिये भगे यह सुनकर शाह कुछ रुष्ट हुग्रा। उसी बीच पुनः ग्रहदी ग्राये, उनसे इस प्रकार से बात हुई ॥२०॥

जाइ कहो को सेवा करै ? नैंकहु वीरसिंह नहि डरै ॥
रामसाहि बोले, मुलतान ? कह्यौ बचन यह बुद्धि निधान ॥२१॥

उनकी सेवा कौन करे, वीरसिंह थोड़ा भी तो नहीं डरता है। रामसाहि बोला ! हे मुलतान इन लोगा ने बुद्धियुक्ति बात कही है ॥२१॥

तू या भू मंडल कौ राज। ग्ररु तेरे बहु दल बल साज ॥
इन्द्रजीत ग्ररु वीरसिंह देव। कै करि दूरि, कराऊँ सेव ॥२२॥

तू इस भूमण्डल का राजा है ग्रौर तेरे पास बहुत बड़ी सेना है। इन्द्रजीत ग्रौर वीरसिंह को दूर करके तुम्हारी सेवा कराऊँ ॥२२॥

विनवीं करौं राम कर जोरि। देहु बड़ौनि तजौं पुर कोरि॥
याहि मारि कै मारौं याहि। दच्छिन की पगु धारौं साहि॥२३॥

राम शाहि ने हाथ जोड़कर विनती की कि अगर यदि बड़ौन मुझे देदें तो मैं पुर को छोड़ दूँ। दोनों को मारकर फिर मैं दक्षिण दिशा की ओर चलूँ॥२३॥

साहि कह्यौ सुनु राजा राम। जौं दोऊ ये करि हैं काम॥
यह चलाइ बड़ो जस होइ। पच हजारी करिहौं तोहि॥२४॥

शाह ने कहा कि राजाराम यदि ये दोनों काम करेंगे, तो तेरा बड़ा यश होगा और मैं पच हजारी का अफसर तुम्हें बना दूंगा॥२४।

जौं तू बचिहै भैया जानु। मेरो वचन सत्य करि मानु॥
जितने भूमि बुंदेला जीउ। सबही कौं करिहौं निर्जीव॥२५॥

यदि उसे भैया समझ कर तू बचाने का प्रयास करेगा, तो मेरे वचनों को तू सत्य मानले कि बुंदेलखण्ड में जितने भी बुंदेले हैं उन सभी को मार डालूँगा॥२५।

बोले राजसिंह नर नाथ। पठये रामसाहि के साथ॥
घोरी दै दीनी सर पाउ। साथ दिये दूजें जुव राउ॥२६॥

रामशाहि के साथ राजसिंह को भेजा। कुछ साथ में घोड़े दे दिये और दूसरे युवराज को भी साथ में भेज दिया॥२६।

तब उन कूच किंयौ सुल्तान। ये पठये इत बुद्धि निधान।
दुहू राज तब दल बल साजि। घेरी तिन बड़ौन गल गाजि॥२७॥

जब उन लोगों ने कूच किया तब इन्होंने इधर से बुद्धिमान लोगों को भेजा। फिर दोनों दलों ने अपनी सेनाओं को सजाकर बड़ौन को घेर लिया॥२७॥

राउ प्रताप आपुहीं गए। इन्द्रजीत जोधा पठाये।
गए बड़ौन माँझ करि मोद। बहु भट वीरसिंह की गोद॥२८॥

प्रतापराउ अपने आप ही गया और इन्द्रजीत ने योद्धाओं को भेज दिया। प्रसन्नता के साथ वीरसिंह के अनेक योधा बडौन के बीच में गये ॥२८॥

पाइ सबै छल बल दल दाम। राजसिंह पहिरये ताम।
मतै कियौ दुहु राजनि तबै। कीजै संधि न विग्रह अबै ॥२६॥

छल बल से जब सेना और धन प्राप्त कर लिया तब राज सिंह ने ताम पहराया और दोनो राजाओं ने मिलकर विचार किया कि संधि करली जाय अभी विग्रह करने से कोई लाभ नहीं है। ।२६।

पठै दिये बहँ राम बसीठ। हठ न करीजे कबहुँ ईठ।
छांड़ि देऊ दिन दोउ बडौन। हम फिरि जैहैं अपने भौन ॥३०॥

रामशाहि ने बसीठी के रूप में भेज दिया और कहा कि हठ करना अब उपयुक्त नहीं है। तुम दोनों ही बडौन छोड़ दो, ऐसा होने पर हम अपने घर वापस चले जायेंगे ॥३०॥

वीरसिंह यह उत्तर दियौ। तुम हम बीच ईसही कियो।
कैसे आवै हमैं प्रतीति। छल सौं आप न करै प्रीति ॥३१॥

वीरसिंह ने कहा कि हमारे तुम्हारे बीच में ईश्वर ने ही अन्तर कर दिया है। हमें किस प्रकार से आप के ऊपर विश्वास आये। आप छल कर रहें हैं और प्रीति दिखा रहे हैं। ३१।

उठि सो बसीठि राम पै आइ। बात बीर सों कह्यो बनाइ।
उत्तर दीनौ राजा राम। ये सब आहि साहि के काम ॥३२॥

बसीठी उठकर राम के पास आया और उसने वीरसिंह से बातें बना कर कहा। राजाराम ने कहा कि शाह के ये नित्य के काम हैं। ३२।

येई बोलि हमारे चित्त। बोले बोल जु तुम सों मित्त।
राजसिंह के पनहि मनाइ। फिरि बैठो अपने घर जाई ॥३३॥

उन्होंने बाबो को कहा जो कि हमारे चित्र की मित्रता की परिचायक लगने वाली थी। राजसिंह की पनह को मानकर अपने घर में जाकर बैठ गया ॥३३॥

वीच दिये तब सर सिर मौर। अब कै दीजै बीच पचौर।
बहुरि वसीठ बड़ौनहिं गये। उनके वचन सबै सुनि लये ॥३४॥

पहले बीच में शिरमौर दिया और अब की बार बीच में पचौर दीजिये। अनेक वचनों को सुनकर वसीठी फिर बड़ौन गया ॥३४॥

वीरसिंह तब कियौ विचार। जो पैहै परमेस्वर सार।
जौऊ भूठों परिहैं जाहि। सोई हरि सहरिहै ताहि ॥३५॥

वीर सिंह ने फिर विचार किया और सोचा कि यदि ईश्वर में थोड़ा भी सार है तो भूठा सिद्ध होने वाले का अवश्य संहार करेगा ॥३५॥

जेठो भैया दूजौ राज। इनकी हमें सेव सौ काज।
जो कछु राजा आयसु दीयौ। सिर पर मानि सबै हम लीयौ ॥३६॥

एक तो ज्येष्ठ भाई है और दूसरे राम। मेरा तो मुख्य काम इनकी सेवा करना ही है। राजा ने जो कुछ भी आज्ञा दी उसे मान लिया ॥३६॥

बीच लिये भैया हरि वस। आनन्दी प्रोहित द्विज अस।
अरु देवा पायक परवान। बीच लिये फिरि श्री भगवान ॥३७॥

बीच में भैया हरिदेव को डाला और द्विज अश आनन्दी पुरोहित को। और देवा को प्रमाण मानकर भगवान का स्मरण किया ॥३७॥

दुहुं नृप सोहैं करी सुभाउ। वीरसिंह तब छोड्यौ गाउ।
जारि उजारे भवन प्रकार। भूली राजहि सौंह सम्हार ॥३८॥

दोनों राजाओं ने जब सौगन्ध खाई तब वीरसिंह ने गाव छोड़ दिया। सौगंध खाने पर राजा को यह भूल गया कि उसने जलाकर अनेक गावों को उजाड़ दिया था ॥३८॥

राम साहि रामसिंह सों कही। साहि दई मोको यह मही।
तव उन कही दिखावहु छाप। रामदास की राखहु थाप ॥३६॥

रामशाहि ने रामसिंह से कहा कि अकबर ने यह भूमि मुझे दी है। तब उन्होंने कहा कि आप मुहर दिखावें और राम दास की थाप को रख लें ॥३६॥

ऐसे ही क्यों दीजै ठाउ। ये तो लगत पचावैं गांउ।
यह विचार किय राजाराम। परो साहि को दक्खिन काम ॥४०॥

इस प्रकार से इस स्थान को कैसे दिया जा सकता है। यह तो पचावे में गाव लगता है। राजाराम ने यह विचार किया कि बादशाह का इस समय दक्षिण की ओर काम पड़ गया है ॥४०॥

भैये हतिये परम अज्ञान। रामसिंह तव कियो पयान।
राम चले तव दुचिते भये। रामसिंह तव डेरहिं गये ॥४१॥

अज्ञान से भैया को मारा जाय। रामसिंह ने बहा से तब प्रस्थान किया। रामसिंह तब कुछ चिंतित हुए। जब रामसिंह अपने डेरे में गये ॥४१॥

वीरसिंह पुर सूनो सुन्यौ। यह विचार मन ही मन गुन्यौं।
थोरे सुभट सग तव लये। वीरसिंह जू वड़वनि गये ॥४२॥

वीरसिंह ने पुर को शून्य सुना और अपने मन में यह विचार किया। थोड़े से योद्धाओं को लेकर वीरसिंह बड़ौन गया ॥४२॥

मैना एक गयो तव देखि। राजसिंह सों कह्यो विसेषि।
वीरसिंह पुर में नर नाथ। सुभट पचासक ताके साथ ॥४३॥

एक मैना देखकर राजसिंह से बोला कि वीरसिंह नगर में है और उसके साथ पचास योद्धा हैं ॥४३॥

सोवत जहां तहा भुव परे। कहुँ घोरे कहुं आपुन खरे।
बड़े प्रात तुम घेरहु राज। तुमको जस दीनौं ब्रजराज ॥४४॥

सभी इधर उधर पड़े सो रहे हैं। कहीं पर घोड़े खड़े हैं और कहीं पर स्वयं। प्रात काल ही तुम उसे घेर लो। ब्रजराज ने तुम्हें यह यश दिया है ॥४४॥

सुन्यौ दूत की वचन समाज। सबै लयो संग सेना साज।
चले दमोदर औ युवराज। डेरा रहे अकेले राज ॥४५॥

दूत के वचनों को सुनकर सम्पूर्ण सेना साथ लेली। डेरे में अकेला राजसिंह रह गया। दमोदर और युवराज भी साथ में चले ॥४५॥

पूजी भली कुवर की बात। घेरे घनै बड़े ही प्रात।
अक बकाइ रावल सगृहे। लोगनि लपकि खड़्हिरा[१] गहे ॥४६॥

कुवर की बात को मानकर सभी ने प्रात.काल ही नगर को घेर लिया। अकबका कर सभी इकट्ठा हुए और दौड़कर अपनी अपनी तलवारें को हाथ में लिया ॥४६॥ (१) तलवार

बकस राइ सुन्दर परधान। केसो चंपत राइ प्रमान।
मुकुट गौर जादौ बलचन्द। कृपाराम शुभ सावध सत ॥४७॥

बक्सराय, सुन्दर प्रधान, चंपतराय, मुकुटगौर, यादौ, कृपाराम आदि सब साथ थे ॥४७॥

निकसे सबै एकही मूठि। उमगे अपने पिय सौं रूठि।
एक एक इन मारयौ दौरि। दल सिगरे मैं पारो रौरि ॥४८॥

सब ने अपनी अपनी तलवारों को एक साथ ही म्यान से निकाल लिया और दौड़ करके एक एक को मारा, इससे सारे दल में हलचल मच गयी ॥४८॥

उच्यौ दमोदर सपदि सम्हारि। सुभट दिये सब पुर में मारि।
तब ये अपने अपने ठौर। उठे उठाये जादौ गौर ॥४६॥

दमोदर सम्हलकर उठा और उसने नगर के सभी योद्धाओं को मार दिया, तब यादौ और गौर सभी अपने अपने स्थानों पर उठकर खड़े हुए ॥४६॥

इन्हें उठत गो धीरज नाठि¹। भूठि गई सुभटनि की गांठि।
भैया बगस राइ तरवारि। हनै दमोदर दल सहारि ॥५०॥

इनके उठते ही धैर्य नष्ट हो गया। सुभटों का धैर्य ही छूट गया। भैया बगसराय ने अपनी तलवार से दमोदर की सेना का सहार किया ॥५०॥ (१) नष्ट

इहि विधि बीरसिंह उठि परे। गज दल हय पय दल खर भरे।
जहां तहां भजि चले नरिन्द। सिंह देखि के मनो करिन्द ॥५१॥

बीरसिंह के उठते ही हाथी घोड़े पैदल के दलों में हलचल मच गई और जहाँ तहाँ सभी उसी प्रकार से भागने लगे जिस प्रकार से सिंह को देखकर हाथी भागते है ॥५१॥

सौदर लै दामोदर भग्यो। भगे दमोदर मब दल डग्यो।
काहुहि काहू की न सम्हार। पवन पाइ ज्यों पत्र अपार ॥५२॥

भाई को लेकर दामोदर भगा, उसके भागते ही सेना के पैर उखड़ गये। कोई किसी को सम्हाल नहीं पा रहा है, जिस प्रकार से तेज वायु में पत्रों को सम्हालना कठिन होता है उसी प्रकार सेना की स्थिति हो गई ॥५२॥

भदौरिया जागरा अपार। जादव वड़ गूजर तिहिं वार।
कौन गनै सुभटन को साज। जूझे जूझ तहाँ युवराज ॥५३॥

भदौरिया, जागरा, यादव, गूजर आदि वीरों की कौन गिनती, युवराज तक उसमें जूझ गया ॥५३॥

एकति ढींहनि तें गिरि परे। बूड़ि इक सरिता मंह मरे।
इकै गयन्दनि मारे चापि। इकै मरे अपडर हा कापि ॥५४॥

कुछ लोग ढूहों के ऊपर गिर पड़े और कुछ नदी में डूब कर मर गये। कुछ को हाथियों ने अपनी सूंड में दबा कर मार डाला और कुछ अपने भय से ही कांप कर मर गये ॥५४॥

ऐसो सुन्यो न देख्यो चाल। गोपाचल भगि बच्यो भुवाल।
बीच दिये ही त्रिभुवन राइ। बीरसिंह को कियो सहाइ ॥५५॥

इस प्रकार का युद्ध न तो कभी देखा ही था न और सुना ही था। राजा भागकर ग्वालियर में अपने को बचा सका और इसी बीच में त्रिभुवन राय आकर बीरसिंह का सहायक हुआ ॥५५॥

बीरसिंह के जय की गाथ। जग मो गावत नर नरनाथ ॥५६॥

वीर सिंह के यश की गाथा संसार के सभी नर और स्वामी गाते हैं ॥५६॥

भुजंग प्रयात

सुनो दान लोभा। तव चित्त छोभा ॥
सुनो साधु सुद्धा। चवत्यो विरुद्धा ॥
कह्यो तैं जु बुझ्यो। सुन्यो मैं समुझ्यो ॥
जहां वीर पैजै। तहां वेगि जै जै ॥५७॥

हे दान और लोभ सुनो! उसी समय से चित्त अत्यधिक क्षुब्ध हो गया है। हे शुद्ध स्वभाव वाले साधु सुनो! अवश्य ही विरुद्ध हो गया है। मैं जो तुमसे कह रहा हूँ उसे समझो, मैंने समझकर के ही उसे सुना है। जहां कहीं वीर अपने प्राणों की बाजी लगाता है वहीं पर उसकी जय होती है।

इति श्रीमत्सकल भूमंडला खंडलेश्वर महाराजाधिराज श्री बीरसिंह देवचरित्रे दान लोभ विंध्यवासिनी संवादे वध विरोध वर्णन नाम चतुर्थ प्रकाशः ॥४॥

॥ लोभ उवाच ॥

चौपही—सुनिजै सकल लोक की माइ।
कहा कह्यौ सुनि दिल्ली राइ॥
कह्यौ आगिलौ सब व्यवहारु।
राज सिंह अरु राम विचारु॥१॥

हे संसार की माता! दिल्ली के बादशाह ने इसे सुनकर क्या कहा? आगे फिर किस प्रकार का वीर सिंह के साथ व्यवहार किया गया? राज सिंह और रामसिंह के क्या विचार हुए॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

सुन्यौ साहि जूझयौ जुवराज। तमकि रह्यौ कालि सिरताज॥
तैसहि निच आये मेवरा¹। साहि भये अहि लैं जेवरा॥२॥

युवराज की मृत्यु को सुनकर बादशाह सनक उठा। इसी बीच में मेवाड़ से कुछ लोग आए। बादशाह सर्प से रस्सी की भांति हो गया॥२॥ (१) मेवाड़ के लोग

साहि नंद अस मान नरेस। छोड़ि सबै राना कौ देस॥
घर ही कौं फिरि कियौ पयान। सुनि यह दुचितौ भौ सुलतान॥३॥

शाह पुत्र और मान सिंह सभी राणा का देश छोड़कर घर की ओर प्रस्थान कर दिये हैं, ऐसा सुनकर सुल्तान चिन्तित हुआ॥३॥

उपजे बहुत भांति के छोभ। इनकी कौन चलावै लोभ॥
तै औसरै रोस हिय धरे। अकबर साहि गए आगरे॥४॥

इसी प्रकार के अन्य भी क्षोभ उत्पन्न हुए हैं, उनकी चर्चा क्या की जाए। अवसर पाकर क्रोध को अपने हृदय में रख लिया। अकबर आगरा चला गया॥४॥

॥ दान उवाच ॥

होहु कृपाल जगत की मात। कहिये वीरसिंह की बात॥
राम साहि सौं कैसी चली। बैर बेलि कित फूली फली॥५॥

हे माता ! कृपा करके वीर सिंह की भी बात तो कुछ बताइये । राम साहि का उसके साथ कैसा व्यवहार रहा, और वैमनस्य की बेलि किस प्रकार से फूली फली ॥५॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

सुने जलाल दीन घर गए। वीरसिंह अति दुचिते भए ॥
गोविंद मिरजा, जादो गौर । बाली मुकुट मते मह और ॥६॥

जब वीरसिंह ने सुना कि जलाउद्दीन घर गया है, तब वह कुछ दुचित्ते होकर । गोविंद मिर्जा, यादौ, गौर वाली, मुकुट आदि से सलाह की ॥६॥

॥ वीरसिंह उवाच ॥

साहि सत्रु अस घर मे बैर। यहै चलतु है घर घर बैर ॥
रहै कौन विधि पति अरु प्रान। अपनी अपनी कही सयान ॥७॥

बादशाह हम सभी का शत्रु है और हमारे घर में ही है। क्या घर घर में यही रीति चल रही है। किस प्रकार से मर्यादा और प्राण की रक्षा हो, इसके सम्बन्ध में सभी ने अपनी अपनी चतुरता के अनुसार कहा ॥७॥

मुकट कह्यो सुनु राज कुमार। आपुस मे उपजै जजार ॥
आए अबही सुनुयतु साहि। कैसो चलै पूत सों ताहि ॥८॥

मुकुट ने कहा कि हे राजकुमार ! आपस में वैमनस्य पैदा हो गया। अभी सुना है कि शाह आया है, किन्तु पता नहीं पूत उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार करेगा ॥८॥

दक्खिन चले जाहि उमराउ। खुरासान तन जिन्हैं प्रभाउ ॥
इत राना सों बढ्यो विरोध। उत है मानसिंह सों क्रोध ॥९॥

दक्षिण दिशा में उमरावों ने अपना निवास बना लिया है और खुरासन तक उनका प्रभाव हो गया है। इधर राना से उनका विरोध बढ़ गया है और उधर मानसिंह क्रुद्ध है ॥९॥

सुनि लीजै सबही की गाथ। तब तैसी करि लीबौ नाथ॥
घर के बैर कहो को डढ़ै। मारे मिटै मिटाये बढ़ै॥१०॥

हे नाथ! सभी के सम्बन्ध में पहले सुन लीजिए फिर उसके अनुरूप व्यवहार करें। घर का बैर किस प्रकार से समाप्त हो। वह तो मारने से समाप्त होगा और यदि इसकी चर्चा करेंगे, तो बढ़ेगा॥१०॥

बोल्यौ मिरजा गोविंद दास। जौपै है जिय घर कौ त्रास॥
करि है राजा दिन दिन प्रीति। वलि वलि ऐसी साहिब रीति॥११॥

मिर्जा गोविंद दास ने कहा कि यदि हृदय में घर का भय है, तो राजा नित्य ही प्रेम करेगा, उस शाह की ऐसी ही रीति है॥११॥

यह सुनि बोल्यौ आदौ गौर। पहिलो सो अब नाहीं ठौर॥
फेरि अकब्बर के फरमान। कछुवाह सों बैर विधान॥१२॥

यह सुनकर यादौ गौर बोला कि पहले के समान अब स्थिति नहीं है। अकबर का फिर वही फरमान है और कछुवाहा से बैर होगा॥१२॥

इद्रजीत सों हुती समीति। कछू दिननि तैं ऐसी रीति॥
कोइ कैसोई हितु रचै। घातैं पादु न राजा उचै॥१३॥

इन्द्रजीत से कुछ दिनों से मित्रता थी, यह मित्रता कुछ दिनों से ही थी। कोई कैसा भी हित का ढाग क्या न करे, किन्तु अवसर पाने पर हम लोग राजा को न छोड़े॥१३॥

छोड़ो सब पुर घर की आस। चलौ सलीमसाहि के पास॥
घटि वढि अपने करमहि लगी। उद्दिम सब की कीरति जगी॥१४॥

घर और पुर की सभी आशाओं को छोड़कर हम सभी सलीमशाह के पास चलें। घटना-बढ़ना तो कर्मानुसार चला करता है। उद्यम से सभी की कीर्ति जगमगा उठती है॥१४॥

जानै कौन करम की गाथ । काहु के ह्वै रहियै नाथ ॥
सबही कीनौ यही विचार । चलौ प्रातही राजकुमार ॥१५॥

पता नहीं कि किस कर्म का परिणाम है। हे नाथ! अब तो किसी न किसी का आश्रय लेकर ही रहें। सभी ने यही विचार किया कि मिलने के लिए प्रातःकाल ही चला जाय ॥१५॥

अहीछत्र किया कुँवर मिलान। मिल्यौ मुजफ्फर सैद सुजान ॥
तासौं मतो कुँवर सब कह्यौ। सुनि सुनि समुझि रीझ हिय रह्यौ ॥१६॥

अहिच्छत्र (चम्बल नदी से लगा हुआ प्रदेश) में जाकर वीरसिंह मुजफ्फर सैद से जाकर मिला। उससे कुँवर ने अपना सभी विचार कहा। कुँवर के विचारों को सुनकर मुजफ्फर हृदय में बड़ा प्रसन्न हुआ ॥१६॥

कह्यौ मु विहि सुनि अरि कुल हाल। चलियै तौ चलियै इहि काल ॥
जौ लौं काहू कछू न कियौ। उमग्यौ जाहि न अरि कौ हियौ ॥१७॥

शत्रु कुल के समाचारों को सुनकर उसने कहा कि यदि चलना है तो इसी समय चला जाय। जब तक कोई कुछ करेगा नहीं तब तक शत्रु के हृदय म कोई उमग या उत्साह नहीं आयेगा ॥१७॥

जौ ह्यां ह्वै है कछू उपाय। दियौ न जैहै आगे पाउ ॥
घर के रहे बिगरिहै काज। दुहू भांति चलनौ है आज ॥१८॥

यदि यहा पर कोई भी उपाय होगा, तो आगे की ओर हम लोग पैर नहीं बढ़ायेंगे। घर पर रहने से काम बिगड़ेगा। इसलिए दोनों ही दृष्टियों से आज ही चलना है ॥१८॥

मन क्रम वचन धरौ यह नेम। तुम सेवक प्रभु साहि सलेम ॥
सैद मजफ्फरखां की बात। सुनि सुख भयो कुँवर के गात ॥१६॥

मन क्रम वचन से तुम्हें इस बात को मन में जमा लेना चाहिये कि तुम सलीम साहि के सेवक हो और वह तुम्हारा स्वामी है ॥१६॥

चल्यौ चपल गति बुद्धि निधान। साहिजाद पुर करयौ मिलान ॥

॥ दोहरा ॥

पुरव पूरे पुन्य तरु फलित भयौ बड़ भाग। सजल मनोरथ दान दिन देरयौं अनि प्रयाग ॥२०॥

बुद्धि निधान ने चपल गति से चलकर साहिजादपुर में जाकर भेंट की, और कहा कि बड़े भाग्य से हमारे पूर्व पुण्यों का फल आज मिला है कि प्रयाग में मने दान को देखा पाया ॥२०॥

॥ चौपइ ॥

जब प्रयाग को दरसन भयो। जीवन जनम सुफल करि लयौ ॥२१॥
देखत पाप हरै प्राचीन। परसत दूरित न देह नवीन ॥
चारु मह वारु दुति लसै। ताहि देरि मति अति हित वसै ॥२२॥
सूक्षम अस करै सब सेव। जनु प्रयाग कह देव अदेव ॥
हरहि जु जग जीवनि के पाप। दूरि करत जनु तिनके दाप ॥२३॥

प्रयाग का जब दर्शन हुआ, तब हमने जीवन के जन्म को सफल समझा। उसे देखने ही सारे पिछले पापा का विनाश हो गया और उसका स्पर्श करने से नवीन देह प्राप्त होती है। चारु के बीच में बालू शोभायमान लगता है उसे देखकर बुद्धि अत्याधिक प्रसन्न होती है। ऐसा लगता है कि प्रयाग की सेवा सभी देव अदेव सूक्ष्म रूप म किया करते हैं। यह लोगा के जीवन के सभी पापों का विनाश कर देती है और उनके अह को पूरी तरह से दूर कर देती है ॥२१, २२, २३॥

जमुना सग लिये मति थिरा। गग मिलन कहं आई गिरा ॥
मृग मद केसरि घंसि घन सारु। कीनौ चर्चित चदन चारु ॥२४॥

थिरमती वाली यमुना को साथ लिए हुए गगा सरस्वती से मिलने आई। कस्तूरी केशर. घनसार आदि से युक्त चदन को कोई कोई सगम पर लगा रहे हैं ॥२४॥

बदित देखि देखि अवनीप । तिलक कियौ जनु जबू दीप ॥
जहा तहां जल नरपति न्हात । देखत आनन्द उपजत गात ॥२५॥

समस्त पृथ्वी मे वदित होने के कारण ही मानो जम्बू द्वीप का तिलक किया हो । जहाँ-तहाँ राजे लोग जल मे स्नान कर रहे हैं, उन्हें नहाते देखकर हृदय मे आनन्द उत्पन्न होता है ॥२५॥

नारी नर बहु बुडकी लेत । जनु अपने अभिलाषनि हेत ॥
हरि पूजत सब बारहि बार । जहा तहा षोडस उपचार ॥२६॥

अनेक नर-नारी उसम बुड़की लगाते रहते हैं, मानो वे ऐसा अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये कर रहे हो । हरि की उपासना सभी अपनी पारी से कर रहे हैं और यत्र तत्र षोडस दान दिया जा रहा है ॥२६॥

होति आरती तिनकी जोति । प्रति बिंबित पानी मह होति ॥
अपनी जनम करन कौ सुखी । जनु अन्हाति जल ज्वाला मुखी ॥२७॥

हरि की आरती हो रही है, वह जल म प्रतिबिम्बित होती है । ऐसा लगा रहा है कि अपने जन्म को सफल करने के लिए ज्वालामुखी के जल मे सभी स्नान कर रहे हैं । यहा पर ज्वालामुखी की उपमा इसलिए दी गई है कि आरती का प्रकाश जल मे पड रहा है, जो कि ज्वालामुखी के समान लगता है ॥२७॥

अति अरुनाई अति उद्दोत । धूम सहित जह तहं जल होत ॥
देखि देखि उपमा बड़ भाग । धूम केत जनु न्हात प्रयाग ॥२८॥

अत्यधिक अरुणिमा है और बहुत ही उद्योत भी । कहीं कहीं जल धूम युक्त भी है । इसको देखकर ऐसा लगता है कि मानो धूमकेतु प्रयाग मे स्नान कर रहा हो ॥२८॥

इहि विधि सोभा सुखद अपार । बरनै सोभा को ससार ॥
पहिरि धोवती, बसन उतारि । रूप तोय तब पाय पखारि ॥२६॥

इस प्रकार सुख को देने वाली अपार शोभा है। उस शोभा को संसार में कौन वर्णन कर सकता है। वस्त्रों को उतार कर धोती पहनते हैं और फिर कुएं के जल में पैर धोते हैं ॥२६॥

करि आचमन परम सुचि भये। वीरसिंह गंगा महँ गये ॥
कुस मुद्रिकनि मुद्रित कै हाथ। नारिकेल कर सुवरन साथ ॥३०॥
भेंट दई यह राजकुमार। लीनी भागीरथी उदार ॥
मज्जन करि वच तरपन कियौ। मंत्र जप्यौ करि पावन हियौ ॥३१॥

वीरसिंह गंगा के निकट गये और उसका आचमन कर परम पवित्र हो गये। कुश, मुद्रिका, नारियल और स्वर्ण को हाथ में लेकर राजकुमार ने भागीरथी को भेंट दी और उन्होंने उसे स्वीकार किया तदुपरान्त स्नान किया और फिर तर्पण। इसके बाद हृदय को पवित्र कर मन्त्र का जप किया ॥३०,३१॥

अनंत अनेकनि जात न गने। पाट जटे पट हाटक घने ॥
महिषी, सुरभी, हय, गय ग्राम। भूषन भाजन भोजन धाम ॥३२॥

अनेक अनंत हैं जिन्हें गिना नहीं जा सकता है, बाजार में अनेक पाट जड़े हुए, महिषी सुरभी, घोड़े, गज, ग्राम, भूषन, भाजन भोजन, घर आदि दान में दिए ॥३२॥

पुष्पित फलित ललित वन बाग। सकल सुगन्ध सहित अनुराग ॥
छत्र चौंर गजराजनि बने। कोक वितान विमाननि घने ॥३३॥

फल फूलों से लदे हुए बाग जिनमें सब प्रकार की सुगन्ध बह रही है। हाथियों के ऊपर छत्र और चवर रखे हुए हैं। विमानों के ऊपर कोक वितान तने हुए हैं ॥३३॥

अति दीरघ अति पीवर साज। दीने कौ आन्यौ गजराज ॥
जब गज गंगाजल महं गयौ। बहुत भांति करि सोभित भयौ ॥३४॥

बहुत बड़ा और सुसज्जित हाथी को दान में देने के लिए मगवाया। जब हाथी गगा में घुसा तब बहुत ही अच्छा लगने लगा ॥३४॥

स्वेत कुसुम चोंसर मय स्वच्छ। सोहत तुलसी कैसो वृच्छ ॥
अमल सुमिल मोतिन के हार। ता महं मनो नील मनि चार ॥३५॥

चौसर युक्त स्वच्छ स्वेत कुसुम तुलसी के वृक्ष की भाँति शोभित है। उसके गले म सुन्दर मोतियों का हार पड़ा हुआ है और उसमे चार नील मणिया लगी हुई हैं ॥३५॥

मानहु कुम कुम पूर प्रमान। ता मह मृग मद बुंद समान ॥
कुंद कली अवली मह सोभ। जनु अलि बस्यों गध के लोभ ॥३६॥

उसमें कुमकुम लगे हुए हैं जो कि मृगमद की बूद के समान मालूम होते हैं। कुद कलिया पक्ति में शोभा दे रही हैं। ऐसा मालूम होता है कि भ्रमर गध के लोभ में उनमे बसा हुआ है ॥३६॥

सुभ केसाल सिला के माहं। मानहु सजल जलद की छांह ॥
सूरज सेत सेज मन हरै। तापर जनु शनि क्रीड़ा करै ॥३७॥

उसके बीच म शुभ कैसाल है, जो कि सजल जलद की छाया सी लगती है। उसके ऊपर पड़ती हुई सूरज की किरणें अपनी ओर मन को आकर्षित करती हैं। ऐसा लगता है कि मानो शनि उसके ऊपर क्रीड़ा कर रहा है ॥३७॥

नारद को उर उज्वल लसै। ता महँ मनो कृष्ण तनु बसैं ॥
देव सभा महँ मन मोहियो। बैठे व्यासदेव सोभियों ॥३८॥

नारद का उज्वल हृदय शोभा दे रहा है। उसमें मानों कृष्ण का शरीर ही वास कर रहा हो। देव सभा में बैठे व्यासदेव ने सभी का मन मोहित कर लिया है ॥३८॥

जब सब अग जलन मिलि जाइ। केवल इभ कुंभै दरसाइ ॥
मनों गंगपौड़ी पर जक। स्याम कंचुकी सोहित अंग ॥३९॥

जब सब अग जल मे मिल जाते हैं तब केवल कुभ ही दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि गगा जक के ऊपर लेट गई है और शरीर पर श्याम कचुकी शोभा दे रही है ॥३६॥

कहीं कहां लगि सोभा सार। कहों त बाढ़े ग्रंथ अपार॥
आयौ जल बाहिर गजराज। सोभित सकल अंग को साज॥४०॥

कहा तक उसकी शोभा का वर्णन किया जाय। वर्णन विस्तार से ग्रन्थ बढ़ जायेगा। जल से बाहर हाथी निकल कर आया और उसका प्रत्येक अग का साज शोभा दे रहा था ॥४०॥

तनु चर्चित चंदन कर्पूर। कुभ कलित वदन सिंदूर।
चारु चंद्रमा भाल लसत। रच्यो पुष्प मय एकै दंत॥४१॥

शरीर पर चदन और कपूर लगा हुआ है। सुन्दर कुभ, सिंदूर और वदन लगा हुआ है। सुन्दर चद्रमा मस्तक पर शोभा दे रहा है। पुष्प युक्त एक ही दत की रचना की है ॥४१॥

जलज हार देखत दुख भगैं। मनि मय नूपुर पायनि बजैं॥
बीरसिंह से विप्रहिं दयो। लेत विप्र को हरखत हियो॥४२॥

जलजहार को देखते ही दुख भाग जाते हैं। मणियुक्त नूपुर पैरों में बजते हैं। इस प्रकार के हाथी को वीरसिंह ने ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण हाथी को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥४२॥

मनो पाइयन को मन कियो। सिव गनपति गुरु को सौंपियो॥
दै सब दाननि परम उदार। डेरहिं आए राजकुमार॥४३॥

ऐसा लगा कि शिक्षा देने की इच्छा है, इसीलिए शिवजी ने हाथी को गुरु को दे दिया है। अनेक प्रकार के दानों को देकर वीरसिंह अपने डेरे पर वापस आये ॥४३॥

मरीफ खांहि देखि सुख भयो। छीर नीर ज्यौं मन मिलि गयो॥
गुदरयो जब सरीफ खां जाइ। हरख्यो दिल दिल्ली को राइ॥४४॥

वीरसिंह को देखकर शरीफ खाँ को बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। ऐसा लगा कि दूध और पानी दोनो मिल गये हों। शरीफ खाँ जब उधर से निकला तब दिल्लीपति को बहुत प्रसन्नता हुई ॥४४॥

बोलहु वेगि कह्यो सुलतान। मेरे वीरसिंह तन प्रान ॥
साहि सभा जब गयो नरिंदु। सूरज मडल मैं मनो इंदु ॥४५॥

हे सुलतान! जो कुछ भी कहना हो, जल्दी से कहे। वीरसिंह मेरा तनमन प्राण है। शाह की सभा म जब वीरसिंह गया तब ऐसा लगा कि सूर्य मण्डल में चाद आ गया हो। ४५॥

देखत सुख पायो सुलतान। ज्यों तन पायो अपने प्रान ॥
कै तसलीम गहे तब पाय। उमग्यो आनंद अंग न माय ॥४६॥

वीरसिंह को देखते ही सुलतान को बहुत प्रसन्नता हुई। मानो उसे अपने शरीर में प्राण मिल गये हा। आदर पूर्वक नमस्कार करके पैरो को पकड़ा। उससे इतना आनन्द हुआ कि वह शरीर म समा ही नहीं पा रहा था ॥४६॥

सोभ्यो वीर देखि यों साहि। जैसे रहे सुमेरहि चाहि ॥
वीरसिंह की बाढ़ी सौंह। पारस सों परस्यो जनु लोह ॥४७॥

वीरसिंह को देखकर शाह इस प्रकार से शोभित हुआ मानो सुमेरु को मात करने की इच्छा हो। वीरसिंह की सौंह बढ़ी, उससे ऐसा लगा कि पारस पत्थर से लोहा छुआ दिया गया है ॥४७॥

परम सुगंध नीम ह्वै जाइ। जैसे मलयाचल कौं पाइ ॥
कह्यौ साहि नीके हौ राइ। अब नीके, जब देखे पाइ ॥४८॥

मलयाचल को पाकर नीम भी सुगधित हो जाती है। शाह ने कहा कि हे राजन्! तुम बड़े अच्छे हो। जब देखने को मिले तब तुम्हारी अच्छाई का ज्ञान मुझे हो सका ॥४८॥

भली करी वैं राजकुमार। छोड्यौ सब आयो दरबार॥
हौं वौ भलें पूजिहै आस। जौ तूं रहिहै मेरे पास॥४६॥

हे राजकुमार! तुमने बड़ा अच्छा किया कि दरबार छोड़ कर यहां चला आया। यदि तुम मेरे पास रहोगे, तो मैं तुम्हारी सारी इच्छाओं की पूर्ति कर दूँगा॥४६॥

यह कहि पहिराये बहु बार। हाथी हय औरहु हथियार॥
भीतर गो दिल्ली को नाथ। बहरयौं खा सरीफ गहि हाथ॥५०॥

इस प्रकार से कह कर अनेक बार पहराया और अनेक हाथी घोड़े और हथियार दान में दिए। दिल्ली का स्वामी अन्दर गया और बाहर शरीफ खाँ हाथ पकड़ कर खड़ा रहा है॥५०॥

जब जब जाइ कुंवर दरबार। लै बहुरै अहलाद अपार॥
जब कुँवर दरबार में जाता था तब अत्यधिक प्रसन्नता ही लेकर वापस लौटता था।

॥ कुंडलिया ॥

सुख पायो बैठे हते एक समै सुलतान,
खा सरीफ तिनि बोलि लिये बीरसिंह देवसुजान।
बिरसिंह देव सुजान मान मन बात,
या प्रयाग में कुंवर सौंह करिये मोसौं अब।
तो सौं करौं बिचार करहि अपने मन भाए,
अनत न कतहू जाउ रहहु मो संग सुख पाये॥५१॥

एक समय सुलतान ने बैठे हुए सुख की प्राप्ति का अनुभव किया। शरीफ खाँ ने वीरसिंह को बुलाया। हे वीरसिंह! तू मेरी कही हुई बात को मानले। इस प्रयाग नगर में तुम मुझसे सौगन्ध खाकर कहो। फिर मैं अपने इच्छित विचारों का तेरे साथ बैठकर विचार करूं। दूसरी जगह तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं है। तुम सदैव मेरे साथ सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करो॥५१॥

पायनि परि तसलीम करि बोल्यो बीरसिंह राज,
हौं गरीब तुम प्रगट ही सदा गरीब निवाज।
सदा गरीब निवाज लाज तुमही लघु लामी,
विनती करियैं कहा महाप्रभु अन्तरजामी।
लोभ मोह भय भाजि भजैं हम मन वच कायनि,
जौ राखहु मरजाद तजौं सपनेहु नहि पायनि ॥५२॥

पैरों पड़ कर वीरसिंह ने नमस्कार किया और कहा कि मैं तो गरीब हूँ और आप सदैव ही गरीबों के स्वामी हैं। तुम गरीब निवाज हो और तुम्हीं ने लज्जा रखी है। हे अन्तर्यामी ! तुम विनती क्या करोगे। हमारे मन वचन कर्म से देखकर लोभ मोह भय आदि तो भाग जाते हैं। यदि तुम मर्यादा की रक्षा करोगे तो मैं तुम्हारे पैरों को कभी भी नहीं छोड़ूँगा ॥२॥

॥ चौपई ॥

सौं हैं कीन्ही माँझ प्रयाग। वीरसिंह सुलतान सभाग॥
तुमही मेरे दोई नैन। तुम हौ बुधि बल भुज सुख दैन ॥५३॥

वीर सिंह ने सुलतान के साथ में प्रयाग में सौगन्ध खाई। सुलतान ने कहा कि तुम्हीं हमारे दोनों नेत्र हो और तुम्हीं हमारी बुद्धि, शक्ति तथा भुजाओं को सुख देने वाले हो ॥५१॥

तुमही आगे पीछे चित्त। तुमही मन्त्री तुमही मित्त॥
मात पिता तुम पारयो पान। तुम लगि छाड़ौं अपने प्रान ॥५४॥

तुम्हीं आगे पीछे मेरे मन में रहते हो। तुम्हीं मित्र हो और मंत्री भी। तुमने अपने पूर्वजों के पानी की रक्षा की है। तुम्हारे साथ ही अपने प्राणों को छोड़ दूँगा ॥५२॥

॥ वीरसिंह उवाच ॥

इक साहिब अरु कीजतु प्रीति।
सब दिन चलन कहत इहि रीति ॥५५॥

हे साहब ! आप इतनी प्रीति करते हैं और सब दिन इसी प्रकार से यह प्रीति चलेगी ॥५३॥

तुम्हें छोड़ि मन आवै आन।
तौं भूलौं सब धर्म विधान॥
यह सुनि साहि लह्यो सब सुक्ख।
लाग्यो कहन आपनों दुःख ॥५६॥

यदि तुम्हें छोड़कर अन्य किसी को मन में लाऊँ तो धर्म के सभी विधानों को मैं भूल जाऊँ। यह सुनकर शाह को बहुत प्रसन्नता हुई और वह अपने दुख को कहने लगा ॥५६॥

जितनो कुल आलम परवीन। थावर जंगम दोई दीने॥
तामे एकै वैरी लेख। अब्बुल फज़ल कहावै सेख ॥५७॥

जितना भी आलम परिवार थावर जगम, हिन्दू, मुसलमान हैं, उन सबका एक ही शत्रु है और वह है अबुलफजल ॥५७॥

वह सालतु है मेरे चित्त। काढ़ि सकै तौ काढ़हि मित्त॥
जितने कुल उमरावनि जानि। ते सब करत हमारी कानि ॥५८॥

वह मेरे हृदय को छेदा करता है। यदि तू किसी भी प्रकार से उसे निकाल सके तो निकाल दे। जितने भी परिवार में उमराव हैं, वे सभी मेरी इज्जत करते हैं ॥५८॥

आगे पीछे मन आपने। वह न मोहिं तिनका करि गने॥
हजरत को मन मोहित भयो। थाके पारे अतर परयो ॥५९॥

वह मुझे अपने आगे पीछे तिनका के समान भी नहीं मानता है। बादशाह के मन को उसने अपनी ओर खींच लिया है और इसीलिए उसके मन में मेरे लिए अन्तर पड़ गया है ॥५९॥

सत्वरसाहि बुलायो राज। दक्खिन ते मेरे ही काज ॥
हजरत सों जो मिले है आनि। सो तुम आनहु मेरी हानि ॥५८॥

मेरे ही काम से उसे दक्षिण से राजा ने तुरन्त बुलाया है। यदि यह बादशाह से मिल लेगा तो मेरी बड़ी हानि होगी ॥५८॥

वेगि जाउ तुम राजकुमार। बीचहि बासो कीजै रारि ॥
पकरि लेहु कै डारो मारि। यह मन निहचै करहु विचारि ॥५६॥

तुम शीघ्र ही जाकर उससे बीच म ही झगड़ा कर लो। उसे या तो पकड़ लो या मार डालो. ऐसा अपने मन मे निश्चय कर लो ॥५६॥

होहि काम यह तेरे हाथ। सब साहिबी तुम्हारे साथ ॥
एसो हुकुम साहि जब कियौ। मानि सबै सिर ऊपर लियौ ॥६०॥

यह कार्य तुम्हारे ही हाथ से हो सकता है। सम्पूर्ण साहिबी इस कार्य के लिए तुम्हारे साथ रहेगी। इस प्रकार की आज्ञा पाकर वीरसिंह ने शाह की बात को मान लिया ॥६०॥

राजनीति गुनि भय भ्रम तोरि। बिनयो बीरसिंह कर जोरि ॥
यह गुलाम तुम साहिब ईस। तासौं इतनी कीजहि रीस ॥६१॥

वीरसिंह ने हाथ जोड़कर विनती की। राजनीति सम्बन्धी सभी भ्रमो और भयों को तोड कर कहा कि आप स्वामी हैं और यह गुलाम है, फिर उस पर इतना क्रोध क्यो? ॥६१॥

प्रभु सेवक की भूल विचारि। प्रभुता इहै जु लेइ सम्हारि ॥
सुनिजतु है हजरत को चित्त। मन्त्री लोग कहत है मित्त ॥६२॥

सेवक की भूल को स्वामी का विचार कर ठीक कर लेने मे ही उसकी प्रभुता है। सुना है कि हजरत का मन है किन्तु मन्त्री लोग कहते है कि मित्र है ॥६२॥

तौ लगि साहि करै जब रोप। कहिये यौं किहि लागैं दोष ॥
जन की युवती कैसी रीति। सब तजि साहिब ही सो प्रीति ॥६३॥

यदि शाह ही क्रोध करता है, तो उसमें दूसरे का क्या दोष है? सेवक के लिए तो यह आवश्यक है कि वह सभी की प्रीति को छोड़कर अपने स्वामी से स्नेह करे ॥६३॥

तातें वाहि न लागै दोष। छाड़ि रोष कीजै संतोष ॥

दोहा

सहसा कछु नहिं कीजई। कीजै सबै बिचारि ॥
सहसा करै ते घटि परैं। अरु आरैं जग गारि ॥८॥

इस कारण से इसमें उसका दोष नहीं है। अतएव आप क्रोध को छोड़कर संतोष करें। एकाएक किसी भी काम को नहीं करना चाहिए। काम को करने के पूर्व भली प्रकार से सभी बातों का विचार कर लेना चाहिए। एकाएक किसी कार्य को करने से धोखा देने का आरोप लगता है, और संसार गाली देता है ॥८॥

॥ साह सलीम उवाच ॥

बरन्यो मीत मते को सार। प्रभु जन को सब यहै विचार ॥६४॥

हे मित्र! मैंने सभी मतों के सार को तुमसे कह दिया है जितने भी श्रीमान हैं, उन सभी का यही विचार है ॥६४॥

जो लाग यह जीवतु है सेख। तौ लगि मोहि मुओ हो लेख ॥
सबै बिचार दूरि करि चित्त। बिदा होहु तुम जवही मित्त ॥६५॥

जब तक यह सेख जिन्दा है तब तक तू मुझे मरा हुआ ही समझो; हे मित्र! अपने मन के सभी विचारों को दूर करके तुम अभी चले जाओ ॥६५॥

कसि तुरतहि बखतर तन वेगि। लै बाधी कटि अपने तेग ॥
घोरो दै सिर पाग पिन्हाइ। कीनो बिदा तुरत सुख पाइ ॥६६॥

तुरन्त ही अपने शरीर पर बख्तर को बाँधकर तलवार को कमर में कसकर बाँध लिया। शाह ने घोड़ा दिया और शिर पर पगड़ी बाँधकर तुरन्त ही विदा कर दिया ॥६६॥

दरखानें तें राजकुमार। चलत भई यह शोभा सार॥
रवि मंडल ते आनद कंद। निकसि चल्यो जनु पूरन चन्द॥६७॥

वीरसिंह जब दरबार से निकला, तब ऐसा लगा कि मानों रवि-मण्डल से पूर्ण चाँद निकल रहा हो॥६७॥

सैद मुजफ्फर लीनो साथ। चलै न जानै कोऊ गाथ॥
बीच न एकौ कियो मोकाम। देख्यो आनि आपनो गाम॥६८॥

सैद मुजफ्फर को अपने साथ लिया, किन्तु चलने का कारण कोई भी नहीं जानता था। मार्ग में कहीं भी न ठहर कर सीधे अपने ग्राम में आकर रुके॥६८॥

आनंदे जन पद सुख पाइ। नीलकंठ जनु मेघहि पाइ॥
पठयें चर नीके नरनाथ। आवत चले सेख के साथ॥६६॥

सभी ग्राम वासियों को ऐसा आनन्द हुआ जैसा कि नीलकण्ठ पक्षी को मेघ मिल जाने पर होता है। अच्छे चरों को भेजा जो कि सेख के साथ चले आ रहे थे॥६६॥

चारन कही कुवर सों आइ। आए नरवर सेख मिलाइ॥
यह कहि भये सिंध के पार। पल पल लखैं सेख की सार॥७०॥

चारण ने आकर सूचना दी कि शेख नरवर तक आ गया है। यह सुनकर सिंध (मध्य भारत की एक छोटी नदी) को पारकर शेख के आने का समय देखने लगे॥७०॥

आये सेख मीच के लिये। पुर पराइछे डेरा किये॥
आबुल फजल बड़े ही भोर। चले कूच कै अपने जोर॥७१॥

शेख अपनी मृत्यु लेकर आया। उसने पराइछे नगर में अपना डेरा डाला। दूसरे दिन प्रात:काल ही अबुलफजल ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया॥७१॥

आगे दीनी रसद चलाइ। पीछे आपुनु चले बजाइ॥
बीरसिंह दीरे अरि लोरा। ज्यौं हरि मत्त गयंदनि देखि॥७२॥

अबुल फजल ने पहले तो रसद भेज दी और फिर दुंदुभी बजाकर स्वयं चले। वीरसिंह शेख को देखकर उसी प्रकार से झपटे जिस प्रकार से सिंह हाथियों को देखकर झपटता है॥७२॥

सुनतहि वीरसिंह को नाउँ। फिरि ठाढो भयो सेख सुभाउ॥
परम सरोष सो सेख बखानि। जैसे अपर नृसिंहहि जानि॥७३॥

वीरसिंह का नाम सुनते ही शेख स्वाभाविक रूप से घूम कर खड़ा हो गया। शेख उसी प्रकार से क्रोध में दौड़ा जिस प्रकार सिंह नर को देखकर दौड़ता है॥७३॥

दौरत सेख जानि बड़ भाग। एक पठान गही तब बाग॥

॥ पठान उवाच ।

नहीं नवाब पसर को ठौरु। भूमि न सतुहि सामुहें दौरु॥७४॥

शेख को दौड़ता देखकर एक पठान ने लगाम पकड़कर कहा कि इस समय युद्ध का अवसर नहीं है॥७४॥

चलु चलु ज्यों क्यों हू चाल जाहि। तोहि पाइ सुख पावै साहि॥
पुनि अपने मन में धरि नेम। जैसो चढ़ि तहँ साह सलेम॥७५॥

यदि भागकर बचा सकता है तो क्या न बचा जाय। तुम्हें देखकर अकबर को बड़ा सुख होता है। अपने मन में यह निश्चय करलें कि जहा पर सलीमशाह है वहाँ पर हम सभी चढ़ाई करके चलेंगे॥७५॥

॥ सेख उवाच॥

जैमत सुभट ठावही ठाव। कीहयो अब कैसे चलि जायं॥
आनि लियो उन आलम लोग। भाजे लाज मरैगो लोग॥७६॥

योद्धा युद्ध में मरना अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए अब इस स्थान को कैसे छोड़ा जा सकता है? उन्होंने आलम लोग लिया है। अब यदि इस अवसर पर भागता हूँ तो उस लज्जा से मर जाना ज्यादा अच्छा होगा ॥७६॥

॥ पठान उवाच ॥

सुभटन को तो यहऊ काम। आप मरे पहुँचावहि राम॥
जो तू बहुतै आलम लोग। जो तू बचिहै रचिहै लोग ॥७७॥

सुभटों का तो यह काम ही है कि वे स्वयं मर कर स्वर्ग जाते हैं। किन्तु यदि तू जीवित रहेगा, तो बहुत से आलमलोग होंगे। यदि तुम बच गये तो तुम बहुत से लोग अपने समान तैयार कर सकोगे ॥७७॥

॥ सेख उवाच ॥

मैं बल लीनौं दक्खिन देस। जीत्यौ मैं दक्खिनी नरेस॥
साहि मुरादि स्वर्ग जब गये। मैं भुव भार आपु सिर लये ॥७८॥

मैंने अपनी शक्ति से दक्षिण दिशा की विजय की है। मैंने दक्षिणी नरेश को जीत लिया है। मुराद की जब मृत्यु हुई तब मैंने सारी पृथ्वी का भार अपने सिर पर ले लिया था ॥७८॥

मेरो माहि भरोसो करै। भाजि जाउं मैं कैसे घरै॥
कहा, यों आलम लोग गंवाइ। कहिहौ कहा साहि सौं आइ ॥७६॥

बादशाह मेरे ऊपर विश्वास करता है, फिर मैं घर को कैसे भाग जाऊँ? आलमलोग को खो कर बादशाह से मैं जाकर क्या कहूँगा ॥७६॥

देखत लियो नगारो आइ। कहा बजाऊँ हौं घर जाइ॥
घर को मेरे पाइन परै?। मेरे आगे हिंदू लरै ॥८०॥

मेरे देखते ही उसने नगाड़े पर कब्जा कर लिया है। मैं घर जाकर क्या बजाऊँगा। घर के सभी मुसलमान मेरे पैरों पर पड़ते हैं और हिन्दू मेरे आगे युद्ध करेगा ॥८०॥

॥ पठान उवाच ॥

सेख विचारि चित्त मह देखु । काजु अकाजु साहि कौ लेखु ॥
सुनु नवाब तू जूझहि तहां । अकबर साहि बिलोकै जहा ॥८१॥

पठान ने कहा कि हे शेख । तू अपने मे विचार कर देख ले । बादशाह का किससे काम बनेगा और किससे बिगड़ेगा, इसे सोचलो । तेरे मरते ही अकबर को बड़ा दुख होगा ।।८१॥

प्रभु पै जाइ जमा तिहि जोर । सोक समुद्र सलीमहि बोर ॥

॥ सेख उवाच ॥

तू जु कहत चलि जैये भाजि । उठे चहूँ दिसि बैरी गाजि ॥
भाजे जातु मरनु जौ होइ । मोसौं कहा कहै सब कोइ ? ॥८२॥

अकबर से मिलकर और अधिक सेना लेकर आओ । इस से सलीम शाह शोक के समुद्र में डूब जायेगा । शेख ने कहा कि तुम जो यह कह रहे हो कि भाग जाओ, ठीक नहीं है क्योंकि इस समय चारों दशाओं मे शत्रु फैले हुए हैं ॥८२॥

जौं भजिये लरिये गुन देखि । दुहू भाति मरिबोई लेखि ॥
भाजी जौ तौ भाजौं जाइ । क्यों करि देहै मोहि भजाइ ॥८३॥

भागते समय यदि मृत्यु हो गई, तो ससार मुझे क्या कहेगा ? चाहे भागू या लड़ूँ, मरना दोनो प्रकार से है । भागूं तो, लेकिन लोग मुझे भागने किस प्रकार देगे ।।८३।

पति की बैरी पाइ निहारु । सिर पर साहि मया को भारु ॥
लाज रही अग अग लपटाइ । कहु कैसे कै भाजो जाइ ॥८४॥

एक तो स्वामी का शत्रु मिला है दूसरे अकबर बादशाह का सम्पूर्ण मन मेरे कन्धों पर है । अग अग मे लज्जा लिपट गई है, ऐसी अवस्था मे कैसे भागा जा सकता है ॥८४॥

छांडि दई तिहि बाग विचारि। दौरयौ सेरख काढि तरवारि ॥
सेरख होइ जितही जित जवै। भर भराइ भागैं भट तवै ॥८४॥

ऐसा सुनकर पठान ने घोड़े की लगाम छोड़ दी। शेख तलवार निकाल कर दौड़ पड़ा। शेख जिधर बढ़ता है उधर के योद्धा घबड़ा कर भाग खड़े होते हैं ॥८५॥

काढ़े तेग सोह यौं सेरख। जनु तनु धरे धूम धुज देख ॥
दंड धरें जनु आपुन काल। मृत्यु सहित जम मनहु कराल ॥८६॥

शेख ने जिस समय तलवार निकाली, उस समय ऐसा लगा कि मानो अग्नि ने शरीर धारण कर लिया हो। ऐसा लगा रहा था कि काल स्वयं रूप धारण कर आ गया है। मृत्यु यम के साथ कराल रूप धारण किए हुए है ॥८६॥

मारै जाहि खंड द्वै होइ। ताके सम्मुख रहै न कोइ ॥
गाजत गज, हींसत हय ठौर। बिनु सूंडनि बिनु पायनि करे ॥८७॥

जिस किसी को शेख मार देता है, उसके दो टुकड़े हो जाते हैं और उसके सामने से सभी भाग जाते हैं। हाथी गरज रहे हैं और घोड़े हिनहिना रहे हैं। हाथी बिना सूंडा के हो गये हैं और घोड़े बिना पैर के ॥८७।

नारि कमान तीर असरार। चहु दिसि गोला चले अपार ॥
परम भयानक यह रन भयौ। सेरखहि उर गोला लगि गयौ ॥८८॥

असरार धनुष से तीर चला रहे हैं और चारों ओर से गोलाबारी हो रही है। वह युद्ध बड़ा ही भयानक हुआ। इसमें शेख के हृदय में गोला लग गया ॥८८॥

जूझि सेरख भूतल पर परे। नैंकुन पग पाछे को धरे ॥

सोरटा

अवधि धर्म की सेरख। द्विज दीनन प्रतिपाल तै ॥
रन में जूझे सेरख। अपनी पति लै साहि की ॥ ६॥

जब खुर खेट निपट मिटि गई। रन देखन की इच्छा भई ॥८६॥

शेख मरकर जमीन पर गिर पड़ा, किन्तु पैर पीछे की ओर हटकर नहीं रक्खा। शेख ने धर्म की मर्यादा। ब्राह्मण और दीनों की रक्षा द्वारा धर्म की सीमा बाँध दी। स्वामी का विश्वास लेकर शेख मैदान में स्वर्गगामी हुआ। जब युद्ध स्थल में युद्ध के कारण उत्पन्न हुई पृथ्वी की अस्त-व्यस्तता समाप्त हो गई तब युद्ध स्थल को देखने की इच्छा हुई ॥८६॥

कहूँ तोंग कहूँ डारे त्रास। कहु सिंदूर पताक प्रकास॥
कहूँ डारे रेजा तरवारि। कहूँ तरकस कहुं तीर निहारि॥६०॥

युद्ध स्थल में कहीं पर तो नगाड़ा पड़ा हुआ था और कहीं पर त्रास पड़े हुए थे। कहीं पर तरकस था और कहीं पर तीर पड़े हुए थे॥६०॥

कहूँ रुंड कहुं डारे मुंड।
कहु चोंर भुजनि के भुंड।
हिलत लुढ़त कहूँ सुभट अपार॥
टूटिनि टिकि टिकि उठत तुषार॥६१॥

रेजा और तलवार कहीं पर पड़ी हुई थी। कहीं पर रुंड और कहीं पर खोपड़ियां पड़ी हुई थीं। और कहीं पर चवरों के ढेर के ढेर पड़े हुए थे, कहीं पर योद्धा हिल रहे थे और कहीं पर लुढ़क रहे थे। तुषार टूट टूट कर उठ रहा था॥६१॥

देखत कुंवर गये तब तहां। अब्दुल फजलि सेख है जहां॥
परम सुगंध गंध तन भरयो। सो नित सहित धूरि धूसरयो॥६२॥

नारसिंह देखता हुआ वहां पहुँचा जहां पर शेख पड़ा हुआ था। शरीर से गंध आ रही थी और सारा शरीर धूल घूसरित हो गया था॥६२॥

कछु सुख कछु दुख व्यापत भये। लै सिर कुंवर थडौनहिं गये॥

॥ कवित्त॥

आनतु है जीते जोर दक्खिन अभयपद लैन।
हार दैन हार दक्खिन नगर कौ।

सालनि ज्यौं, तालनि ज्यों, केसव तमालनि ज्यौं
तेरे भुवपालसाल ईस धीर धर कौ ॥
दीनौ छाड़ि छिति नाम साहिब सलीम साहि
महावीर बीरसिंह सिंह मधुकर कौ ।
अब्बुलफजलि मद मत्त गजराज मारि
डारयो सखा सेरु साहि अकबर कौ ॥६२॥

मुख दुख से व्याप्त वीरसिंह शेख का शिर लेकर बड़ौन गये ।
वीरसिंह दक्षिणी की निर्भयी शक्ति को जीतकर आ रहा है । ऐसा लगता है कि वह अपना अभय पद लेने के लिए और हार को देने के लिए आ रहा है । हाथी की भांति मस्त, अकबर बादशाह के मित्र शेर को मारा डाला ॥६२॥

देव सु बड़ गूजर भले । चपत 'राइ सीसु ले चले ॥६३॥

वीरसिंह देव सब से बड़ा और गूजर अच्छे हैं । चपतराय शीश लेकर के चला है ॥६३॥

सीसु साहि के आगे धरयौ । देखत साहि सकल सुख भरयौ ॥
किधौं विसेध बिटप की मूल । किधौ सकल फूलनि कौ फूल ॥६४॥

शिर लाकर शाह के सामने रखा । शिर को देखते ही शाह बहुत प्रसन्न हुआ । या तो यह विरोध सभी विरोधों का मूल है या सारे पुष्पों का पुष्प है ॥६४॥

ऐसी सोभा सीस की भनौं । साहि मनोरथ कौ फल मनौ ॥
सब के सुनत साहि यह कह्यौ । दिल्ली के घर कौ बध रह्यौ ॥६५॥

शेख का शिर लोगों को ऐसा लगा कि मानो शाह के मनोरथ का फल हो । शाह ने सभी को सुनाकर कहा कि आज दिल्ली घर का वध हुआ है ॥६५॥

वीरसिंह की यहई ठई। हम को सकल साहिवी दई॥
वीरसिंह हमें लीने मोल। करी साहिवी निपट निडोल ॥६६॥

वीरसिंह ने आज सम्पूर्ण साहिवी मुझे दी है। उन्होंने आज मुझे मोल ले लिया है और साहिवी को अडिग कर दिया है ॥६६॥

फिरि थाप्यौ काविल कौ राज। कीनौ सकल खलक कौ काज॥
राख्यौ आजु हमारौ राज। अब हम देहैं उनको राज ॥६७॥

फिर योग्य राज्य की स्थापना की, जिसके निमित्त सभी राज्य के काम को उसने किया। आज तुमने हमारे राज्य की रक्षा की है। इस लिए हम भी तुम्हें राज्य देंगे ॥६७॥

तबही मांग्यो कचन थारु। मुक्ता फल कै रोचन चारु॥
अरुन तरनि उडगननि समेत। सूरज मडल ज्यौं सुख देत ॥६८॥

उसी समय सोने का थाल, मुक्ताफल और सुन्दर रोचन मगाया। इस समय इस प्रकार का सुख हुआ, जिस प्रकार से सूर्य मण्डल अपनी प्रात:कालीन किरणों से देता है ॥६८॥

नेजा नवल जरायनि जर्यौ। चवॅर छत्र ससि सोभा भर्यौ॥
विदा कर्यौ तब विप्र बुलाइ। चपति वड गूजर पहिराइ ॥६६॥

नेजा नये जरावों से जड़ा हुआ था। चवर और छत्र सिर पर शोभा दे रहे थे। तब विप्र को बुलाकर विदा किया ॥६६॥

दयौ नगारौ अति सुख पाइ। पठये साहि निसान बजाइ॥
आये घर आनदी लोग। मित्रनि सुख सब सत्रुन सोग ॥१००॥

अत्यधिक सुखी होकर नगारा दिया और शाह ने बाजों को बजवा कर भेजा। सभी लोग आनंदित होकर घर आये। मित्रों के घर पर आनन्द मनाया जाने लगा और शत्रुओं के घर पर शोक ॥१००॥

सुभ ससि वरन नखत तिथि जानि। वैठारे सिंहासन आनि॥
सकल मरातिब ठाढ़े किये। हरसिंह देव छरी कर लिये ॥१०१॥

सिंहासन पर शुभ तिथि के अवसर पर बैठाया। सभी मरातिबों को खड़ा किया। हरीसिंह उस अवसर पर छड़ी लिये खड़े थे ॥१०१॥

दै सिर छत्र छबीलौ साज। अलक तिलक दै दीनौं राजु ॥

सुन्दर छत्र शिर के ऊपर रखा। अलक तिलक देकर राज्य का दान दे दिया।

॥ दोहा ॥

तुल में बढ्यौ निरोध, सुनु दान लोभ यह भेव।
रामसाहि जीवत भये, राजा विरसिंह देव ॥१०२॥

इस प्रकार से हे लोभ, दान तुल में निरोध बढ़ता ही गया। राम शाहि के जीवित रहने पर वीरसिंह देव राजा हो गये॥

इति श्री भूमंडलाखंडलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विंध्यवासिनी संवादे राज प्राप्ति वर्णन नाम पंचम प्रकाशः ॥५॥

॥ दान उवाच ॥

सुन्यौ साहि जब मार्‌यौ सेख।
कहा करयौ करियो कहिये सुबिसेख॥
कहा आपने मन मैं गुन्यौ।
सब ब्योरा हम चाहत सुन्यौ ॥१॥

जब बादशाह ने सुना कि शेख मार डाला गया है तब उन्होंने पूछा कि किस प्रकार से मारा गया है। मारने वाले ने अपने मन में क्या सोचा है? इसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

मारयौ सेख जहीं जिहि सुन्यौं। अपनौ सीसु तहीं तेइ धुन्यौ ॥
जहां तहां उमरावनि सोच। क्यौं कहि जै यह बड़ो सकोच ॥२॥

जिसने ही सुना कि शेख मार गया है, वही दुख से अपना सिर धुनने लगा। सभी उमराव शोक मग्न थे और किस प्रकार से शेख के मारे जाने की घटना को कहा जाय, यह सभी को संकोच था ॥२॥

यह कहि उठे साहि दिन एक। सुनत हुते उमराउ अनेक ॥
आवत सेरव कहत सब लोइ। रह्यौ कहां यह जानत कोइ ॥३॥

अनेक उमरावों को सुनाकर बादशाह ने एक दिन कहा कि सभी लोग कह रहे थे कि शेख आ रहा है, किन्तु वह कहाँ पर रुक गया है, इसे कोई जानता है ? ॥३॥

काहू कछू न उत्तर दियौ। साहि कछू मनु दुचितौ कियौ ॥४॥

जब किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया तब बादशाह का मन कुछ चिन्तित हुआ ॥४॥

तब प्रभु रामदास सौं कह्यौ। सेरव सोध तुमहीं नहि लयौ ॥
रामदास यह उत्तरु दयौ। सेरव साहि सिर सदके भयौ ॥५॥

तब बादशाह ने रामदास से कहा कि शेख की खोज खबर तुमने भी नहीं ली। रामदास ने तब उत्तर दिया कि शेख का शिर उतार लिया गया है ॥५॥

सुनत ताहि ह्वै गये अधीर। परे धरनि सुधि बिगत सरीर।
सबही हाइ हाइ ह्वै रही। पूरि रही सब आंसुनि मही ॥६॥

यह सुनते ही बादशाह अधीर हो गया और पृथ्वी पर गिर गया। उसे अपने शरीर तक का ध्यान नहीं रहा। सभी जगह हाय हाय मच गई। सम्पूर्ण पृथ्वी आँसुओं से भर गई ॥६॥

अति नि शब्द भयौ दरबार। पवन हीन ज्यौं सिंधु अपार।
घरी चारि मैं आई सुद्धि। तब उठि बैठ्यौ साहि सुबुद्धि ॥७॥

सम्पूर्ण दरबार उसी प्रकार से निःशब्द हो गया, जिस प्रकार से वायु के न चलने पर समुद्र निःशब्द हो जाता है। चार घड़ी में बादशाह को होश आया, तब वह उठकर बैठ गया ॥७॥

रामदास तू कहहि सम्हारि। किसा सेख को बचन बिचारि।
कहि धौं कछू आसिलौ भयौ। कै काहू बन जीवन हयौ ॥८॥

रामदास तू ठीक ठीक बता कि शेख किस प्रकार से मारा गया। क्या कोई औखिला हो गया ? या किसी ने बन में उसके जीवन को हर लिया ॥८॥

परचौ किधौं बैरिन सों काम। कै काहू सों भयो सग्राम।
रामदास उवाच
आवत हौं अपने मग चल्यौ।
अब्दुल फजल सेख सुख फल्यौं ॥६॥

बैरियों से उसका सामना हो गया या किसी से युद्ध हुआ। रामदास ने कहा कि मैं अपने रास्ते चला आ रहा था, वहाँ पर अबुलफजल मुझे सुखी दिखाई दिया ॥६॥

साहि सलेम हेतु गहि सेल। उझ्यो बीर बिरसिंह बुदेल।
तासों तबहि जूझ अति भयो। जुझि सेख परलोकहि गयौं ॥१०॥

सलीमशाह के हित के लिए बीरसिंह ने उसके ऊपर सेल चलाई। उस सेल से शेख उसी समय जूझ गया। जूझकर शेख परलोकगामी हुआ ॥१०॥

सोक न कीजे आलम नाथ। वा कह तुरत लगावहु हाथ।
ऐसे बचन सुने नरनाह। नैन नीर के चले प्रवाह ॥११॥

हे आलम नाथ ! आप शोक न करें। बीरसिंह को शीघ्र ही आपके हाथों में लाकर दूँगा। नरनाह ने इस प्रकार के जब बचनों को सुना तब उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे ॥११॥

कोलाहल महलनि मैं भयो।
तिनकी प्रति धुनि सुनि मन रयो।
मुग्धा मध्या प्रौढ़ा नारी।
उठि दौरी जहं तहं उर डारी ॥१२॥

इस बात को सुनकर महलों में कोलाहल हुआ। उसकी प्रतिध्वनि सुनकर मन और भी रो उठा। मुग्धा, प्रौढ़ा, मध्या नारियाँ सभी इधर-उधर दौड़ने लगा ॥१२॥

भूषन पटन सम्हारत अंग। अधिक सोभ बाढ़ी अंग अंग।
चंचल लोचन जल भुल मले। पवन पाइ जनु सरसिज हले ॥१३॥

सभी अपने आभूषणों को सम्हाल रही थीं, इससे सभी के अंगों की शोभा अधिक बढ़ गयी। चंचल नेत्र झुलसने लगे। ऐसा लगा कि वायु को पाकर कमल हिल उठे हों ॥१३॥

चिल के अलिक अलक अति बनी।
तरकी तन अंगिये की तनी।
राज कुमारि हँसैं मुह मोरि।
तुरकिन के उपजै दुख कोरि ॥१४॥

बाल चमकने लगे और अंगिया जो पहने हुए थीं, वह तनने लगीं। राजकुमारी मुँह मोड़कर हंस रही थीं और तुरक लोगों के हृदय में दुख पैदा हो रहा था ॥१४॥

रोवति तन तोरति अति बनी। बिच बिच बाजति ढोलक घनी।

सवैया

केमौ राइ अब्दुल फजलि मारयौ बीरसिंह,
साहि के महल जहँ तहँ उठि धाई है।
पीरी पीरी पासरी निपट पठ पावरेई,
कटि तट छीन उर लट लटकाई है ॥
भृकुटी सों न मुरी सी, भभके से लोचननि,
उभके से उरजनि, उर छवि छाई है।
खानजादी खान डारि, पान डारि सेखजादी,
साहिजादी पान डारि पीटने को आई है ॥२॥

सभी रानियाँ रो रही हैं। बीच बीच में ढोलक बज रही है। वीरसिंह ने अबुलफजल को मारा है, इससे महल के अन्दर सभी उठकर इधर उधर दौड़ने लगी। पीली पीली पातरी है और कमर पतली है। भृकुटियाँ झुक गई हैं। नेत्र झफने से हैं, उरोज उभर आये हैं जिससे कि उर की शोभा बढ़ गई है। खानजादी ने भोजन छोड़ दिया है और रोजजादी ने पान छोड़ दिए। शाहजादी पानी को छोड़कर मानो पीटने के लिए आई हो ॥४॥

चौपई

खां नाजिम कछु वाहीं राम। लेरत फरीदहि भूल्यौ काम।
राउ भोज अरु दुरगाराउ। जगन्नाथ औरै उमराउ।
खत्री त्रिपुर साथ के लये। सब मिलि निकट साहि के गये ॥१५॥

नाजिम खा, रामसिंह कछवाहा राजा भोज, दुर्गा राय, जगन्नाथ तथा अन्य उमराव और त्रिपुर के खत्रियों को साथ लेकर शेख की फरियाद के चक्कर में पड़कर सभी कामों को भूलकर बादशाह के पास गये ॥१५॥

साहि बिलोको आजम खान। बोलि उठ्यो दिल्ली सुलतान।
मेरे प्रान जातु हैं देख। आखिन आनि दिखावहु सेख ॥१६॥

आजम खा को देखकर दिल्ली सुलतान बोला कि शेख को लाकर मुझे अभी दिखाओ, मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥१६॥

हाथी हय हाटक मनि धीर। गाइक नाइक गुनी गभीर।
राग नाग फल फूल विलास। डासन आसन असन सुवास ॥१८॥
भूषन भाजन भवन बिताना। सयति सकल कितेक पुरान।
पसु पच्छी भट सेना अंग। विद्या विविध विनोद प्रसंग ॥१६॥
देश नगर साथर गढ़ ग्राम। सेख बिना मेरे किहि काम ?

खान उवाच

जैसो सेख हतौ इहि धाम। तैसे तेरे बहुत गुलाम ॥२०॥

हाथी, घोड़े, बाजार, नगर, गुणी, गायक, गंभीर नायक, राग, नग, फल फूल, विलासिता, सुगन्धित आसन असन डासन।

आभूषण, भाजन, भवन, वितान, सम्पूर्ण सम्पत्ति, पशु, पक्षी, योद्धा, सेना, स्त्रियां तथा अनेक प्रकार के विनोद के साधन।

देश, नगर, साथरगढ़ आदि शेख के बिना मेरे किस काम के हैं। इस पर खान ने कहा कि जैसे शेख मारा गया है, वैसे बीसियों आपके गुलाम हैं ॥१८, १९, २०॥

ता लगि कत तैं करि यतु दु.ख।
खान पान छाड़त सब सुक्ख।
भारामल सिर सदके भयौ।
भव भगवानदास कित गयौ ॥२१॥

खान पान तथा सुखों को छोड़कर उसके लिए इतना दुख क्यों करते हो। आपके पास अभी तो राजा भारमल और भगवान दास हैं ॥२१॥

खान जहान कुतुबदी खान। आलमखान मुदफ्फरखान।
नृपति गुपाल सदा रन धीर। टोडरमल्ल राज बलवीर ॥२२॥

जहानखा, कुतुबदीखा, आलमखा, मुदफ्फरखा, गोपाल राजा सदा रण में धैर्य को बनाये रखने वाला है और शक्तिशाली राजा टोडरमल है ॥२२॥

को यह सेख सुनै सुलतान। जा लगि छाड़त कहत जहान।
मीचु कौन पर राखी जाइ। कीजै राज काज सुख पाइ ॥२३॥

एक शेख की इतनी क्या हस्ती थी, जिसके लिए आप संसार छोड़ने की बात करते हैं। मृत्यु किसी के रोकने से नहीं रुक सकती है। अतएव सुख पूर्वक राज्य करें ॥२३॥

कुंडलिया

कहै खान आजम जवन समझावन के वैन।
समुझै साहि न कहि धकै समुझै नेक न ऐन।

समुझै नेकु न ऐन नैन जलधर गति धारी।
अति धारा सपात होत कैसी भ्रमकारी।
उमग्यो सोक समुद्र कहो क्यो राखे रैहै।
बार बार समुझाइ रहैं थकि जाइ जु कैहै॥ ३॥

खान ने सब प्रकार से अकबर को समझाने की कोशिश की। वह समझाते समझाते थक गया, लेकिन बादशाह की समझ में कुछ भी नहीं आया। वह थोड़ा भी नहीं समझे और आखो से आसू बहने लगे। सपात की धारा अत्यधिक भ्रम पैदा करने वाली होती है। जब शोक का समुद्र उमड़ पड़ा तब फिर वह किस प्रकार से रोका जाय। हरबार लोग समझाने की कोशिश करते हैं, किन्तु अन्त म सभी थककर बैठ जाते हैं।

कवित्त

अमिठि अमिठि निर वारि जाति आपु ही तैं,
केसौदास भृकुटी लतासी गिरवर की।
जरि जरि सीरी होति, सीरी ह्वै जरति छाती,
कवैला कैसी दाही देह दीह हेम हरकी।
भरि भरि रीति जाति, रीति रीति भरै पुनि,
रहट घरी सी आंखि साहि अकबर की।
मधुकर साहि सुत राजा बीरसिंह जू की,
कीनी है कथा बिरंचि न्याइ घर घर की॥४॥

बादशाह की भृकुटी अपने आपही बार बार टेढ़ी होती है। छाती जल जलकर ठंडी होती है और ठंडी होकर फिर जलती है। स्वर्ण के समान शरीर कोयला होकर जल रहा है। अकबर बादशाह की आखे बारबार आंसुओं से भर आती हैं और फिर खाली हो जाती है। उनकी स्थिति वही हो रही है जो कि कुएं म पड़े हुए रहट की होती है। मधुकर शाह के पुत्र बीरसिंह की कथा घर घर मे प्रचलित हो गयी है॥४॥

चौपई

साहि कह्यौ तब प्रगट प्रभाउ। सुनो सकल मेरे उमराउ।
मैं सब कीने बड़े बड़ाई। मो यह काम परयौ यह आइ ॥२४॥

मेरे सभी उमरावो, सब ध्यान से सुन लो। मैंने बड़े-बड़े काम किए हैं, किन्तु अब मेरा काम आ पड़ा है ॥२४॥

मारन हारौ सेरन कौ चाहि। लै आवहु जीवत गहि वाहि।
सब मुनि रहे न उत्तरु दियौ। सबही को डर डरप्यौ हियौ ॥२५॥

शेरों को जिसने मारा है, उसे जीवित ही पकड़ कर यहाँ पर ले आओ। सभी ने सुनकर कोई उत्तर नहीं दिया। सभी के हृदय भय से कांपने लगे ॥२५॥

कह्यौ राम राजा यह तबै। हिन्दू तुरक सुनत हैं सबै।
कै तसलीम सों करयौ प्रनाम। जिनके मो सारिखो गुलाम ॥२६॥

राम शाहि ने तभी कहा कि सभी हिन्दू और तुरक सुन रहे हैं। तसलीम कर के प्रणाम किया और कहा कि मेरा सरीखा जिसका गुलाम है ॥२६॥

सो प्रभु कैसें दुचितौ होइ। ल्यावों गहि जीवत वह सोइ।
तो मोपै ह्वै है सब काम। मेरे संग दीजे संग्राम ॥२७॥

उसका स्वामी किस प्रकार से चिंतित हो सकता है। मैं उसे जीवित ही पकड़ कर लाऊँगा। यदि आप मेरे साथ संग्राम को भेजेंगे तो मुझसे सारा काम हो जायगा ॥२७॥

यह सुनि साहि उठे मुसकाइ। ताकौ बिदा करौ पहिराइ।
बोल्यौ साहि, साहि संग्राम!। कह्यौ वृद्ध भो राजा राम ॥२८॥

यह सुनकर शाह मुसकरा कर उठे और उसे बिदा किया। बादशाह ने कहा कि हे संग्राम! अब राजाराम वृद्ध हो गया है ॥२८॥

तू यह करै हमारौ काज। कटक हीन करहि निज राज।
इन्द्रजीत विरसिंह कराल। ये दोई हैं मेरे साल ॥२६॥

अतएव अब तू मेरे इस काम को करके कटक हीन तू राज कर। इन्द्रजीत और वीरसिंह दो ही मेरे कठिन शत्रु हैं ॥२६॥

इनहीं हतें होइ सब काज। येई हरिहैं तेरो राज।
पायनि परयौ दौरि संग्राम। हौं करिहौं ये केतिक काम ॥३०॥

इनके मारने से ही सारा काम होगा और यदि नहीं मारे गये तो यही तेरा राज्य छीनेंगे। संग्राम दौड़कर पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा कि इस प्रकार के बहुत से आप के काम करूँगा ॥३०॥

दयो कछौवा, दई बडौंन। पहिरायों पग धारयौं भौन।
तब कछु सुख पायौ सुलतान। बदन पखारयौ खाये पान ॥३१॥

कछौवा और बडौन का राज्य दिया और पगड़ी पहना कर घर गया। इसके बाद बादशाह को कुछ सुख हुआ और उसने अपने शरीर को स्वस्थ किया और पान को खाया ॥३१॥

राजसिंह अरु तुरसीदास। ये पहिराइ चलाये पास।
दिये राय राया के साथ। अकबर दुहू दीन के नाथ ॥३२॥

राजसिंह और तुरसीदास को भी साथ भेज दिया। दोनों ही धर्मों के नाथ, अकबर ने और भी अनेक राय राना साथ में दिए ॥३२॥

गोपाचल गढ़ मेले जाइ। जोरयौ अधिक कटक्क बनाइ।
सिकरवार जादौ जागेर। तौंवर, हाडा, खीची खेर ॥३३॥

ग्वालियर में जाकर रुके और वहा पर और भी सेना इकट्ठा की। सेना में यादौ, सिकरवार, जागेर, तौंवर, हाड़ा, खीची, खेर आदि जातियों के लोगा को भर्ती किया ॥३३॥

गूजर, मैना, जाट अहीर। मुगल पठाननि की अति भीर।

गूजर, मैंना, जाट अहीर, मुगल और पठानों की तो भीड़ लगी हुयी थी।

नाराच छंद

वेरछा पवांर पाइ। अर्चि कै लिये बुलाइ।
पेस ही प्रताप राइ। आपु ही मिले त जाइ।
दीह दुःख देह साजि। साज साहि में डिढ़ाहि।
चेति चित्त शत्रु साहि। मित्र भौ सुजानसिंह ॥१॥

वेरछा के पवार को बुला लिया। प्रतापराय अपने आप ही आकर मिला। सुजानसिंह शाह के शत्रु का विचार कर स्वतः मित्र बन गया ॥१॥

चौपाई

जबही मिल्यौ पँवार सुजान। खत्री मानी करि कै प्रान।
मेल्यों तिपुर आनि आतुरी। पुनि मेल्यौ उचाट की तरी ॥३४॥

जैसे ही सुजान सिंह मिला वैसे ही उसने कहा कि खत्री तो मेरे प्राण है। तिपुर आतुर होकर स्वयं मिला फिर उचाट की तरी का विचार किया ॥३४॥

साहि सलैम कियो फरमान। तबही आयौ परम प्रधान ॥३५॥

बादशाह ने स्वतः आज्ञा दी तभी प्रधान आ गया ॥३५॥

बीरसिंह तू परम सुजान। तो पर अति कोप्यौं सुरतान।
पठई तोपर फौज प्रचारि। तिन सों तू माड़ै जनि रारि ॥३६॥

हे बीरसिंह। तू अत्यधिक चतुर है। इस समय तेरे ऊपर सुल्तान कुपित हो गया है। उसने तेरे विरोध में बहुत बड़ी सेना भेजी है। तू इस समय उससे लड़ाई मत मोल ले ॥३६॥

सो फुरमान मानि सिर लयौं। बड़वनि छाड़ि सु दतिया गयौ।
तबही राम साहि अकुलाइ। मिल राइ रायां कहँ आइ ॥३७॥

बीरसिंह उसकी आज्ञा को मानकर बड़वनि को छोड़कर दतिया चला गया। तभी रामशाहि आकुल होकर राय रायों से आकर मिला ॥३७॥

तिपुर राम जब एकै भये। बीरसिंह तब ऐरछ गये।
तब तिहि समय तिपुरु अकुलाइ। एरछ गढ़ महँ मेले जाइ ॥३८॥

तिपुर और रामशाहि जब एक हो गये तब बीरसिंह ऐरछ को चला गया। उस समय परेशान होकर तिपुर ऐरछ गया ॥३८॥

एर्छ घेरि लई तब सरी। पहिल उठान पठाननि करी।
उर्झी गाजि तब हरिसिंह देव। गहैं साग मानों बलदेव ॥३६॥

ऐरछ को जाकर जब घेर लिया गया तब पठानों ने सबसे पहले आक्रमण किया। उस समय हरिसिंह ने गरज कर हाथ में साँग ली तो ऐसा लगा माना साक्षात बलदेव ही आ गये हैं ॥३६॥

ऊर्झे सी निकसी तरवारि। परैं तीर तुपकनि की मारि।
लोह चहू दिसि बरसत घनैं। नेकहु हरसिंह देव न गनै ॥४०॥

उधर से तलवारें निकल पड़ी, तीर बरसने लगे और तोप के गोले छूटने लगे। चारों ओर लोहा सनसनाने लगा किन्तु हरसिंह देव उस सब को कुछ भी नहीं मानता है ॥४०॥

सवैया

सकल सयान गुन, नाहि न गुमान उर,
केसौदास जानहु अजान मन भायो हैं।
लरती के आगे आगे, भागती के पाछे पाछे,
बाएँ दाहिने ई लरत बतायो है॥
सेना कैसो नाह सेना नाह को सनाह,
जगनाह कैसो मीत जग जीत गीत गायो है।
राजा बीरसिंह जू को बधु हरीसिंह देव हरीसिंह को,
दुहाई हरीसिंह कैसो जायो है ॥४१॥

हरसिंह के अन्दर सभी प्रकार के चतुरता के गुण हैं। उसके हृदय में थोड़ा भी गुमान नहीं है। अपरिचित लोगों को भी वह अच्छा लगता

है। लड़ने वालों के आगे और भागने वालों के पीछे रहता है। लोग कहते हैं कि वह दाएँ बाएँ दोनों ही ओर लड़ता है। वह सेना का स्वामी है। ईश्वर के समान वह मित्र है, ऐसा संसार के जीवों ने गाया है। राजा वीरसिंह का भाई हरिसिंह की दुहाई है जो कि हरसिंह के समान है ॥४१॥

जूझे पर सामुहे सपूत। जमल जमाल खान के पूत।
भागे सुभट सबै भहराइ। लोथिन तन चितयौं नहिं जाइ ॥४२॥

जमल और जमाल खा के सपूत पुत्र सामने ही युद्ध में मारे गये। और अन्य सभी योद्धा डरकर भाग खड़े हुए। लाशों की ओर देखा भी नहीं जाता है ॥४२॥

सिगरो दिन बीत्यो इहि भांति। जूझ बुझानी आई राति।
चहू ओर गढ़ यह गति भई। अति औंड़ी खाई खनि लई ॥४३॥

सारा दिन इसी प्रकार से व्यतीत हो गया और रात आगयी। गढ़ के चारों ओर की गहरी खाई पट गई ॥४३॥

सिगरे उमरावनि दुख भयो। साहि सलैमहि इक सुख ह्वयो।
राति भये आरत्ति असेरा। कितनि करेगो चंचल भेरा ॥४४॥

सारे ही उमरावों को बड़ा दुख हुआ, केवल एक सलीम शाह को सुख हुआ। रात्रि हुई किन्तु पता नहीं वह कितनी चंचल वेश धारण करेगी ॥४४॥

प्रगटो अधराती चांदनी। मारी दृग आनद कादनी।
मीरा सैद मुदफ्फर बोलि। चलन कह्यो सबही भय खोलि ॥४५॥

आधीरात को चांदनी खिली। वह नेत्रों को आनन्द दे रही थी। मीरा, सैद और मुजफ्फर ने कहा कि अब हम सभी को भय छोड़कर चलना चाहिये ॥४५॥

दोहा

पावक पानी पवन पति निकसे सिंह समान ।

सबही के देखत चले गाजि बजाइ निसान ।।४६।।

पावक, पानी और पवन पति सिंह के समान गर्जना करके निकले । सभी के देखते देखते वे निशानों को बजाकर चले ।।४६।।

कवित्त

बीरसिंह देव पौरि बाहिर दपेटि दौरि,
वैरिन को सेतु वेर बीमरु कर्यौ दिगो ।
कचन बुदेलमनि सेल्हनि ढकेलि कोरि,
हाथी पेलि चौकीदार वेतवै मे सौंदि गो ।
दुंदुभी धुकार सों हजार कों चुनौती देत,
भीम कैसो पैंज लेतु रेत खेत खोदिगो ।
राम सों को नाम स्योरि धाम सो जुन्हाई माँझ,
तामसी तिपुर के तनाउ तबु रौंदि गो ।।४७।।

वीरसिंह ने झपटकर शत्रुओं के बीसों लोगों को रौंद दिया । वीरसिंह ने अपने सेल से सभी को दखल दिया । हाथी ने बेतवा में सभी को रौंद दिया । हाथी अपनी चिंघाड़ से हजारों लोगों को चुनौती दे रहा है और भीम की भाति रेत के खेत म ही युद्ध कर रहा है । राम का नाम स्मरण करते हैं और तामसी तिपुर का तम्बू रौंद गया ।।४७।।

साहिर सलेम साहि जू के कहे वीरसिंह,
छाड़ि दीनी बड़यनि दतिया उदीह तर ।
केसौदास तिपुर तुरक है दुनी को घेरची,
जाइ एछे मे घेरे होत घनी घर घर ।
कोट फोरि, फौज फोरि, सलिता समुद्र फोरि,
हाथिनि को गैठ फोरि कटक विकट वर ।
मारू दै दामोदो दै कै गारी दै गरूर,
महं पाउ दै सिधारै सिरदार ही के सिर पर ।।४८।।

सलीम शाह के कहने से वीरसिंह ने बड़वनि और दतिया को छोड़ दिया। तिपुर तुरकों से भी दूना दुष्ट है। उसने जाकर ऐरछ में घेरा डाल दिया। वहाँ पर घर घर में ढुढ़िया होरही है। कोठोंको तोड़कर, फौज को छिन्न विच्छिन्न कर, नकी को तोड कर, हाथियों के झुड को तोड़कर, निकट युद्ध किया। मारू बाजों को बजवा कर, घमण्ड से गाली देकर, सिरदार के सिरपर पैर रख कर पार किया ॥५॥

जात जात सबही दल होइ। पीछे लागि सकै नहिं कोइ।
तिपुर गयद हीन मद भयो। वीरसिंह दतिया फिरि गयो ॥४७॥

सभी लोग कह रहे थे कि सेना जा रही है, किन्तु पीछा करने का साहस किसी का नहीं हो रहा था। तिपुर का गर्व समाप्त हो गया। वीरसिंह दतिया फिर से पहुँच गया ॥४७॥

दतिया तें फिरि करयो मिलान। जहां सलैम साहि मुलितान ॥४८॥

दतिया पहुँच कर सलीम शाह से जाकर भेंट की ॥४८॥

गयौ साहि के जब दरबार। पहिरायौ बहु दै सुखवार।
रीझि रीझि छत्री रस रयौ। उचरयौ तुरक कछौवहि गयौ ॥४६॥

सलीमशाह के दरबार में जब वीरसिंह पहुँचा तब उसने सुखी हो कर पहनाया और सभी छत्री रीझ गये। तुरक वहा से चल कर कछौवा को चले गये ॥४६॥

पग पग पेलि तिपुर कौ त्रास। गवे आगरे केसौदास।
तुरत तिपुर को भो फरमान। बोले इन्द्रजीत मति मान ॥५०॥

तिपुर को पग पग पर भय का अनुभव होने लगा और वह आगरे चला गया। इन्द्रजीत ने तुरन्त ही तिपुर को फरमान भेजा ॥५०॥

दे गढ़ इन्द्रजीत को राई। तबही कूच कियौ अकुलाइ।

॥ दोहा ॥

उचकायो रिपु गाउँ तैं लै आये फरमान ॥
केसव को यह रीझ भौ लीनो दीनो दान ।५१॥

इन्द्रजीत को रई का गढ़ दे दो। ऐसी आज्ञा पाकर वह व्याकुल हो कर चल दिया। शत्रु वहां से भाग कर गया और फरमान ले आया। अत्यधिक प्रसन्न हो कर लोगों को दान दिया भी और लिया भी ॥५१॥

जात बीच लागी नहि बार। गये राय राया दरबार ॥५२॥

धन को जाने समय नहीं लगा। सभी राय राजा दरबार में गये ॥५२॥

कन्हर के सिर दीनो भार। छाड़यौ घर को सबै विचार॥
राजाराम विदा कर दये। इन्द्रजीत हजरति पै गये ॥५३॥

घर का सभी विचार छोड़कर कन्हर के सिर पर भार दिया। राजा राम को विदा कर दिया और इन्द्रजीत हजरत से मिलने चले गये ॥५३॥

इति श्री भूमडला खडलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्रीवीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे साहि रोष वर्णनं नाम पष्टम अध्याय ॥ ६ ॥

—:०—

॥ दान उवाच ॥

सुनहु जगत जननी मति चारु। साहि कियौ पुनि कहा विचारु॥
साहि साहिजादे की बात। कहियौ हमसों उर अवदात ॥१॥

हे जगत जननी माता! इसके बादशाह ने क्या विचार किया? शाह और शाहजादे की बात को मुझसे कहो ॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

जवहिं तिपुर घर के मग लगे। जहां तहां के थानैं भगे॥
सूनो जानि भंडेरि मुकाम। बैठे आइ साहि सग्राम॥२॥

तिपुर जब घर चला गया तब इधर उधर के थाने भाग गये। भडोरि को सूना पाकर सग्रान साहि ने जाकर अपना प्रभुत्व जमा लिया॥२॥

गये साहि पै साहि सलैम। भयौ साहि के तन मन छैम॥
दतिया राखे विरसिंह देव। भसनेहे मैं हरसिंह देव॥३॥

सलीम शाह के पास शाह गये। शाहि तनमन से सन्तुष्ट हुआ। वीरसिंह को दतिया में रखा और हरिसिंह को भसनेह मे रखा॥३॥

खड़गराइ सो भौ संग्राम। जूझे हरसिंह घी बलधाम॥
वीरसिंह सुनि कीनो रोस। मन ही मन मान्यो बहु मोस॥४॥

खडगराय से सग्रान का युद्ध हुआ। उसमे हरिसिंह स्वर्गगामी हुआ, यह सुन कर वीरसिंह को बहुत क्रोध आया और मन मे शोक का अनुभव किया॥४॥

भइ यहि समै प्रीति अति नई। विरसिंह देव सग्रामैं भई॥
तब सग्राम साहि हिय हेरि। वीरसिंह को दई भडेरि॥५॥

वीरसिंह और सग्रान में इस समय नई प्रीति हुई। तब सग्रान सिंह ने वीरसिंह को भडेरि का राज दे दिया॥५॥

वीरसिंह सग्रामहि ऐन। कह्यौ लवूरा गढ़ ले दैन॥
खड्ग राइ खल खरो जिहान। महा मत्त मातग समान॥६॥

वीरसिंह ने सग्राम सिंह से लबूरा गढ़ को देने के लिए कहा। खड्गराय ससार का सब से बड़ा खल और हाथी के समान गर्वीला है॥६॥

बीरसिंह वरुता पर चढ्यौ। बन्धु वरग बहु विग्रह बढ्यौ ॥
तज्यौ लवूरा आवत दीठ। चमू चली ताकी परि पीठ ॥७॥

बीरसिंह बरुता के ऊपर बैठा। बन्धु वर्ग के कारण से विरोध बहुत अधिक बढ़ गया। उसे आता देख कर लबूरागढ़ को छोड़ दिया। सेना उसकी ओर पीठ करके चल दी ॥७॥

रुक्यौ लौटि अमिलौटा गाउ। खड़गराइ जूभयौ जिहि ठाउँ ॥
जूभयौ तब ताकौ परिवार। कोट सिर सब तज्यौ विचार ॥८॥

असिलौटा ग्राम मे आकर रुक गया जहा पर खड़गराय मरा था। उसका वहा पर सारा परिवार ही मर गया। बिना किसी विचार के सभी के सिरों को काटा ॥८॥

लीनौ जीति लचूरा ग्राम। बैठारे तहँ साहि सग्राम ॥
मूड़ काटि कै घाले तहां। साहि सलैम छत्रपति जहाँ ॥९॥

लचूरा ग्राम को जीत लिया और उसे सग्राम शाहि को दे दिया। सलीम शाह छत्रपती ने जहा मूड काट डाला था ॥९॥

अकबर साहि सुनी यह बात। मूड़ देखि सुख पायो तात ॥
उपज्यौ रोस सुनत ही बात। जालिम जलाल दीन के गात ॥१०॥

अकबर बादशाह ने जब इस बात को सुना और पुत्र के शिर को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ। जालिम और जलालदीन के सुनते ही क्रोध पैदा हो गया ॥१०॥

पठयौ तह कछवाहौ राम। साहि सलैम जहां बलधाम ॥
करि तसलीम समै जब लह्यौ। बचन निवारि राम सब कह्यौ ॥११॥

जहा पर सलीम शाह था, वहा पर रामसिंह कछवाहा को भेजा। रामसिंह ने तसलीम की और समय पाकर उसने कहा ॥११॥

दुहू दीन प्रभु साहि जलाल। तुम ऊपर अति भए कृपाल ॥
तुम सुख सकल साहिबी करौ। सत्रुन के सिर पर पग धरौ ॥१२॥

हे जलाल ! बादशाह दोनों धर्मों का स्वामी है। वह तुम्हारे ऊपर बहुत कृपालु है। तुम साहिबी के लिए सब कुछ करो। शत्रुओं के शिर पर पग रखो अर्थात् उन्हें पराजित करो ॥१२॥

वीरसिंह वासुकी गनेहु। जो तुम मुख सरीफता देहु ॥
हय गय माल मुलक उमराउ। इन पर कीजै प्रगट प्रभाउ ॥१३॥

वीरसिंह, वासुकी, गनेहु, शरीफता को यदि तुम मुख दो तो तुम्हें हाथी, घोड़े, माल, मुलक उमराव आदि सभी मिलेंगे ॥१३॥

इतनौ वचन कहत ही राम। साहि सलेम हसे बलधाम ॥
रामदास सुनु मेरी गाथ। यह साहिबी ईस के हाथ ॥१४॥

रामदास के इतना कहते ही सलीमशाह हँस पड़ा। सलीमशाह ने कहा कि रामदास यह साहिबी तो ईश्वर के हाथ में है ॥१४॥

स्वर्ग नरक दस दिसि धाइये। काहु की न दई पाइये ॥
रंकहिं राजा होत न बार। राजा रंक भये ते अपार ॥१५॥

स्वर्ग नर्क के लिए चाहे कोई कितना ही यत्न करने का प्रयास क्यों न करे, किन्तु वह किसी के देने से नहीं मिलती है। रंक को राजा होने में देर नहीं लगती है और राजा से रंक भी अनेक हो गये हैं ॥१५॥

जो मैं कत उपजावत छोभ ? याको हमैं दिखावत लोभ ॥
वाला जू के पग उद्धरै। अपनो सीस निछावर करै ॥१६॥

अपने मन में तुम क्षोभ क्या पैदा करते हो। और इसका मुझे लोभ क्यों दिखाते हो ? वाला जी का किसी प्रकार से उद्धार हो जाय तो मैं अपने सिर तक को निछावर कर सकता हूं ॥१६॥

वीरसिंह अरु वासुकि भूप। सुनि सरीफ सो बुद्धि अनूप ॥
इन्हैं देव कैसी देखिये। हों हजरति को सुत लेखिये ॥१७॥

वीरसिंह और वासुकी राजा को विलक्षण बुद्धिवाले शरीफता को कैसे दिया जा सकता है। यद्यपि मैं हजरत का पुत्र हूँ ॥१७॥

रामदास तब ऐसो कह्यो। अब सरीफखाँ वासुकि रह्यौ ॥
अपने घर में सुख कीजई। राजा बीरसिंह दीजई ॥१८॥

रामदास ने तब कहा कि शरीफखा और वासुकि को अपने पास रख लो। अपने घर म सुख के लिए कम से कम बीरसिंह को दे दो ॥१८॥

सुनि सुनि साहि कह्यो बुधि लही। रामदास तैं नीकी कही ॥
मेरो बीरसिंह जो होइ। तौ मैं वाहि देउँ पति खोइ ॥१६॥

सलीमशाह ने कहा कि रामदास तूने ठीक कहा है। यदि बीरसिंह मेरा होता, तो मै उसे दे देता ॥१६॥

मन क्रम वचन चित्त यह लेखि। मो कहँ बीरसिंह कह देखि ॥
देन कहत जगती को राज। ताकह तू चाहत है आज ॥२०॥

मन, क्रम, वचन और चित्त से विचार कर तो तू देख। तू मुझसे बीरसिंह को देने के लिए कह रहा है, जो कि मुझे ससार का राज्य देने को कह रहा है, तू उसी को देने की बात कहता है ॥२०॥

वाके साथ विपति बरु परों। वा बिनु राज कहा लै करौं ?
तू मेरो सदई सुखकारि। और जो होतो डारौं मारि ॥२१॥

उसकी सारी विपत्तियों मे भाग लूँगा। उसके बिना मै राज्य को लेकर क्या करूँगा। तू सदैव ही मुझे सुख देने वाला रहा है। यदि इस समय तेरे स्थान पर और कोई होता तो उसे म मार डालता ॥२१॥

जाहि वेगि जो चाहत छेम। चले कूच कै साहि सलेम ॥
करयो कूच सभाग। गयो प्रगट प्रभु तुरत प्रयाग ॥२२॥

यदि तू कुशल चाहता है तो अभी चला जा, सलीमशाह कूच के लिए चल दिया है। प्रयाग के लिए तुरन्त ही प्रस्थान कर दिया ॥२२॥

रामदास सब ब्यौरा कह्यो। समुझि साहि सुनि चुप ह्वै रह्यो ॥
तेही समै गयो अकुलाइ। खड़गराइ को लहुरो भाइ ॥२३॥

रामदास ने सम्पूर्ण वर्णन किया उसे सुनकर अकबर चुप हो गया। उसी समय व्याकुल होकर खड़गराय का छोटा भाई आया ॥२३॥

करी साहि सों आइ फिरादि। अधिक घनायन दीजै दादि ॥
साहि मुरादि जबै उत गये। रामसाहि तब आगी भये ॥२४॥

अकबर जाकर फरियाद की कि दोनों की सहायता कीजिये। मुराद शाहि जब पीछे हुए तब रामशाहि आगे आया ॥२४॥

तब बोले हम साहि मुरादि। हमसे दीदन दीनी दादि ॥
सेवा देखि कृपा दृग दिये। खड़गराइ उन राजा किये ॥२५॥

हम मुरादशाह ने दादि दी थी। खड़गराय की सेवाओं को देखकर उन्होंने उसे राजा बनाया था ॥२५॥

सुनिये आलमपति इहि भेव। मारे सब हम बिरसिंह देव ॥
राजा बीरसिंह देउ, संग्राम। इन्हीं दुहुन कौ एकै काम ॥२६॥

हे आलमपति! इस समय बीरसिंह ने सभी को मार डाला है। वीरसिंह और संग्राम का यही काम है ॥२६॥

हमहि मारि तब सुनहु सभाग। बीरसिंह नृप गये प्रयाग ॥

हमको मारकर बीरसिंह प्रयाग गये।

॥ दोहरा ॥

बोलि बिपुर सौं यह कही दिल्ली के सुलतान।
इनको नीकै राखिये दे भोजन परधान ॥२७॥

दिल्ली के सुलतान ने विपुर के लिए प्रधान से कहा कि इन्हें भोजन देकर अच्छी प्रकार से रखो ॥२७॥

॥ चौपाई ॥

रामदास सों कहियेहु येहु। कोऊ एक बिदा करि देहु ॥
देखै जाइ ओड़छौ ग्राम। ल्यावै बेगि बोलि संग्राम ॥२८॥

रामदास से जाकर कहना कि किसी भी एक को भेज दें और ओड़छा ग्राम में जाकर संग्राम सिंह को तुरन्त ले आवें ॥२८॥

भीतर भवन गयें तिहि घरी। पहिरावन पठई पामरी ॥२६॥

भेजने वाली पामरी को पहनाने के लिए घर के भीतर गये ॥२६॥

रामदास सारो आपनो। पठै दियौ अपनो प्रति मनौ ॥
कहै साहि आलम रिस भरयौ। बहुत गुनाह बुन्देलनि करयौ ॥३०॥

रामदास ने अपने साले को भेजा दिया। मानो अपने प्रतिनिधि को ही भेज दिया हो। आलमशाह ने क्रोध में कहा कि बुन्देलों ने अनेक अपराध किए हैं ॥३०॥

माडौला तपै खाली देस। मेरे सुत को भयौ प्रवेस ॥
बहुत बुन्देलनि बढ़यौ प्रभाउ। करिहैं साहि सलेम सहाउ ॥३१॥

मडौला खाली देश पड़ा था। वहा पर मेरे पुत्र ने प्रवेश किया है। बुन्देला का प्रभाव बहुत बढ़ गया है और सलीमशाह भी सहायता करेंगे ॥३१॥

रोस उठयो मेरे मन महा। इन्द्रजीत कौ कीजे कहा ॥
बोल्यौं असरफ खा चित-चाहि। घालैं आज बुन्देलनि साहि ॥३२॥

मेरे मन बहुत क्रोध पैदा हो गया है, लेकिन इन्द्रजीत का क्या किया जाए। अशरफ खाँ बोला कि बुन्देलों का विनाश कर देना चाहिए ॥३२॥

विमुखनि को कीजै कुल नास। पद सनमुखनि बढाव अकास ॥
अर्ज मेरि यह मानिय आज। इन्द्रजीत को दीजै राज ॥३३॥

विरोधियों के कुलों तक का विनाश कर देना चाहिए और जो साथी हैं उन्हें आकाश तक ऊँचा बनाना चाहिये। मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लीजिए कि इन्द्रजीत को राज्य दे दिया जाय ॥३३॥

रामदास सों कह्यौ बुलाइ। करौं नवाज सुबा की जाइ ॥
सुभ दिन होइ तो चेला करो। चेला करि विपदा सब हरौं ॥३४॥

रामदास से बुलाकर कहा कि अब मैं प्रातः की निवाज करने जा रहा हूँ। जिस दिन शुभ दिन हो उस दिन मैं उसे अपना चेला बनाऊँ और उसके सारे कष्ट को दूर कर दूँ ॥३४॥

यह कहि साहि झरोखहि गये। इन्द्रजीत को देखत भये॥
इन्द्रजीत तैं जैहै तहा। सठ सग्राम गयो है जहा ॥३५॥

इन्द्रजीत को देखता हुआ शाह झरोखे में गया। अब इन्द्रजीत वहीं जायेगा, जहाँ दुष्ट सग्राम गया है ॥३५॥

इन्द्रजीत तब ऐसी कह्यौ। मैं तो साहि चरन सग्रह्यौ॥
मेरे मन यहई प्रन धरयौ। हजरति चरन कमल घर करयौ ॥३६॥

इन्द्रजीत ने कहा कि मैंने तो शाह के चरणों को पकड़ लिया। मेरी तो यही प्रतिज्ञा है कि हजरत के पैरों को ही अपना स्थान बनालू ॥३६॥

इन्द्रजीत तसलीम जु करी। साहि दई आपनि पामरी॥
बूझे साहि सभा सद सबै। बीरसिंह देव कहा है अबै ॥३७॥

इन्द्रजीत के तसलीम करने पर शाह ने उसे अपनी पामरी दे दी। शाह ने अपने सभी सभासदों से पूछा कि इस समय बीरसिंह कहाँ है? ॥३७॥

इतहिं नाउ कहि आयो बैन। उत अति जल भरि आए नैन॥
जब जब साहि सुनत यह नावँ। भूलत तनमन सुख्ख सुभाव ॥३८॥

इधर मुख से बात निकली और उधर नेत्रों में आंसू भर आये। जब जब शाह इस नाम को सुनता है, तब उसे अपना सारा सुख भूल जाता है ॥३८॥

सूल हिये तन हित सन सलै। नैननि तैं जल धारा चलै॥

उसके मन को पीड़ा सदैव साला करती है और नेत्रों से सदैव जल धारा बहा करती है।

मन क्रम वचन कही व्रत धरै। कह्यौ गुरू को चेला करै॥
जो याके ह्या त्यारी होइ। देउ राज जाने सब कोइ॥४३॥

मन क्रम वचन से व्रत को धारण करें और गुरु को कहा कि इसे चेला बना लें, यदि इसके यहाँ पर सब प्रकार की तैयारी हो तो इसे जाकर राज्य दे दो॥४३॥

इन्द्रजीत सों यहई बात। जाइ कही ऊदा के तात॥
इन्द्रजीत यह उत्तर दियौ। मैं अग्यत्यार सबै कछु कियौ॥४४॥

इन्द्रजीत से जाकर ऊदा के तात ने यही बात कही। इन्द्रजीत ने कहा कि मैंने सब कुछ स्वीकार कर लिया है॥४४॥

जो कछु साहि कहैंगे आजु। सबै करौं पै लेहुँ जु राजु॥
यहै कही हजरति सौं जाइ। भीतर भवन गए दुख पाइ॥४५॥

बादशाह जो कुछ भी आज मुझसे कहेंगे वह सब कुछ मैं करूँगा किन्तु राज्य न लूगा। अत्यधिक दुखी होकर हजरत से यही बात घर में जाकर कही॥४५॥

॥ दोहरा ॥

दासी सब कुल तिय तजै ज्यौं जड़ त्यौं यह जान।
इन्द्रजीत किय कुमति हित राज श्री अपमान॥४६॥

बेलि तिपुर ताही छन माहि। दीनौ राज कृपा करि ताहि॥
मन क्रम वचन कियो अति मीत। तासों कह्यो विक्रमाजीत॥४७॥

दासी श्रेष्ठ कुल को पाकर यदि छोड़ दे तो यह उसकी जड़ता ही है, उसी प्रकार से इन्द्रजीत ने राजश्री का अपमान किया है। शाह ने उसी समय त्रिपुर को बुलाया और कृपा करके उसे राज्य दे दिया। और उसे मन क्रम वचन से अपना मित्र बना लिया तथा उसे विक्रमाजीत की उपाधि दी॥४७॥

तासो मतो करयो करि नैंम। बोल्यो हौं मैं साहि सलेम ॥
हों अब रोकि राखिहौं ताहि। तू अब वेगि ओड़छे जाहि ॥४८॥
चल्यौं तिपुर उत इतहि वसीठ। पठये साहि पुत्र पर ईठ ॥
गये तहां जहं साहि सलेम। प्रगटयो जाइ पिता को प्रेम ॥४६॥

उसके साथ नियम पूर्वक विचार किया और कहा कि मैं सलीमशाह हूँ, अब मैं उसे रोक दूँगा और तू ओड़छा शीघ्र ही चला जा। तिपुर उधर चला और इधर वसीठ को सलीम शाह के पास भेजा गया। उसने सलीमशाह के पास जाकर पिता के प्रेम प्रकट किया ॥४८ ४६॥

तुम बिन सुनो साहिको चित्त। कल न परत मनु आलम मित्त ॥
बेगम रा तन तजि यह लोक। छोड़ि गयो लीनो परलोक ॥५०॥

तुम्हारे बिना आलम शाह को चैन नहीं आ रहा है। बेगम रा इस ससार ने शरीर को छोड़कर परलोक चला गया है ॥५०॥

तिन को दु.ख रह्यो परि पूर। दूर करै को तुम अति दूर ॥
इतनो सुनत छूटि गयो छेम। सोक समहे साहि सलेम ॥५१॥

उसका सारा दुख बादशाह के शरीर मे व्याप्त हो गया है। तुम्हारे बिना उसको कोई दूर नहीं कर सकता इतना सुनते ही सलीम शाह का सारा सतोष नष्ट हो गया और सारा शरीर शोकमग्न हो गया ॥५१॥

दिन दोई यह दुख अवगाहि। आये बाहिर आलम साहि ॥
मुजरा कियो वसीठनि आनि। पूछी तिन्हें बात जिय जानि ॥५२॥

यह दो दिन का दुख है आलम शाह बाहर आया और वसीठियों से अपने मन की बात पूछ ने लगा ॥५२॥

अकबर साह गरीब नेवाज। इन्द्रजीत को दीनों राज ॥
कहे वसीठनि सब व्योहार। जैसो कछू भयो दरवार ॥५३॥

अकबर ने इन्द्रजीत को सारा राज दे दिया है। वसीठियों ने उस समस्त व्यवहार को कहा जो दरबार में घटित हुआ था ॥५३॥

तब हँसि बोल्यो सरीफखान। बीरसिंह तजि को तन त्रान ॥
राजा बासुकि केसोराइ। तिन सों कह्यो चित्त को भाइ ॥५४॥
तब शरीफ खाँ हँस कर बोला कि वीरसिंह तू अपने शरीर के त्राण को छोड़ दे। और राजा वासुकि से उनको अच्छी लगने वाली बात कहीं ॥५४॥

मोपै बेगम जू को सोग। रह्यो न जाइ भगे सब भोग ॥
मेर मन उपज्यो यह भाउ। देखौं पाति साहि के पाउ ॥५५॥
बेगम का शोक मुझको बहुत सता रहा है। मेरी भोग करने की सारी इच्छा नष्ट हो गई है। अब मेरे मन में यह भाव पैदा हो रहा है कि राजा के चरणों को जाकर देखूँ ॥५५॥

राजा बासुकि उत्तर दियो। अपने चित्त सबै समझियो ॥
करन कह्यो है साहि न सोग। सोग किये तें उपजै रोग ॥५६॥
राजा वासुकि ने कहा कि तुम अपने मन की सब सोच समझ लो। बादशाह ने शोक करने के लिये नहीं कहा है। शोक करने से अनेक रोग पैदा होते हैं ॥५६॥

रोग भए भागै सब भोग। भोग भगे नहि सुख संजोग ॥
सुख बिन दुख कर दिन उदोत। दुख तैं कैसे मगल होत ॥५७॥
रोग होने से सब प्रकार की भोग करने की इच्छा नष्ट हो जाती है भोग इच्छा नष्ट होने से सुख प्राप्त नहीं हो सकता। सुख के अभाव में दुख का उदय होता है और दुख के कारण से मगल नहीं प्राप्त हो सकता ॥५७॥

ताते सोग न कीजै साहि। गवन तुम्हारौ भावत काहि ॥
कैसी राइ अरज जब करी। लीने हाथ छबीली छरी ॥५८॥
इस कारण से हे शाह! किसी प्रकार का शोक न करिये और तुम्हारा यहां से जाना किसे अच्छा लग रहा है। जब इस प्रकार से प्रार्थना की गई तब उन्होंने अपने हाथ में सुन्दर छड़ी ले ली ॥५८॥

साहि समीप गए हैं तब। कहा जाइ पुनि कीजै अब ॥
हजरत के जक यहई हिये। होत प्रसन्न न सेवा किये ॥५६॥

शाह के पास जाकर के कहा "अब जाने से क्या होगा, हजरत की तो यह समझ है कि वे सेवा से भी प्रसन्न नहीं होते ॥५६॥

करिये साहि जु करनै होय। गति न तुम्हारी जानै कोय ॥
करि तसलीम सुमिरि नर हरी। बीरसींघ तब विनती करी ॥६०॥

अब आप की जो इच्छा हो सो करिये। आप की गति जानी नहीं जाती तब वीरसिंह ने ईश्वर का स्मरण कर तस्लीम की और फिर बिनती कर के कहा ॥६०॥

जैयत हैं बेगम के हेत। आलम प्रभु के नगर निकेत ॥
जिहि सुख होय साहि के गात। सोई कीजै तजि सब बात ॥६१॥

आप बेगम के कारण आलम के नगर में जा रहे हैं। जिस प्रकार से भी बादशाह को सुख मिले उसी प्रकार से काम आप सारी बात को छोड़ कर करें ॥६१॥

मोहि साहि कौं सौंपी जाइ। जातें कुल की कलह नसाइ ॥
हौं हजरत सिर सदकै भयौ। एक गुलाम भयौ नहि भयौ ॥६२॥

अच्छा होगा कि मुझे बादशाह के हाथ सौंप दो, जिससे कि कुल का सारा कलह नष्ट हो जाय। आप तो हजरत के प्रिय हो जायेंगे। एक गुलाम के होने न होने से क्या होता है ॥६२॥

खां सरीफ बोले रिस भरे। बीरसिंह तुम राजा करे ॥
सुतौ साहि अब देत न बनै। राजा दीनै पातक घनै ॥६३॥

इस समय शरीफ खा गुस्से में बोला कि तुमने वीरसिंह को राजा बनाया है और अब उसे राजा को देना ठीक नहीं है। राजा को देने से अत्यधिक पातक होगा ॥६३॥

तातैं मोहि मैया करि देहु। वढ़ैं साहि सौं दिन दिन नेहु॥
उपजावत छिति मण्डल छेम। बोलि उठे तब साहि सलेम ॥६४॥

इसलिये अच्छा होगा कि आप मुझे बादशाह को दे दें, और आप का उनसे दिन प्रति स्नेह बढ़ता रहे। तुम सारे छिति मडल में चैन को उत्पन्न कर रहे हो। इस पर सलीम शाह बोला ॥६४॥

तुम्हैं देउ हजरत हित काज। काहि बढ़ाऊं आपने राज॥
बहुरि न मोसौं ऐसी कहौ। मेरे जीवत निरभै रहौ॥६५॥

यदि तुम्हें हजरत को दे दूँगा तो अपने राज्य में किसे आगे बढ़ा ऊँगा, अब आगे इस प्रकार की बात मुझ से कभी मत कहना। मेरे जीवित रहते तुम निर्भय रहो ॥६५॥

साहि सलैम साहि पै गये। साहि बहुत तिन कौं दुख दये॥
दूरि सरीफखान भगि गयौ। सबै मुलक अति दुचितौ भयौ॥
नरसिंघ देउ भैया संग्राम। देख्यो आनि ओड़छौ ग्राम॥६६॥

सलीम शाह बादशाह के पास गया, बादशाह को बड़ा दुख हुआ। शरीफ खा का साथ छोड़ कर भाग गया। सारे देश में भयफैल गया। वीरसिंह और संग्राम दोनों भाई ओड़छा चले आए ॥६६॥

इति श्री भू मण्डला खण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ त्रिन्धगामिनी सम्वादे छिति पति छल वर्णनं नाम सप्तम प्रकाशः ॥७॥

॥ दान उवाच ॥

॥ चौपई ॥

कहौ, देवि, कित गयौ अभीत। साहि कियौ जु विक्रमाजीत ॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

मेल्यौ तिपुर सिन्धु के तीर। भुमियां मिले रीव तजि धीर ॥
तबहि तिपुर दतिया तन गये। इन्द्रजीत अपने घर भये ॥२॥

बादशाह ने उसे विक्रमाजीत की उपाधि दी थी। वह किस प्रकार से भय रहित हुआ हे देवि ! इसको बताओ। देवी नहीं कि त्रिपुर सिन्धु के पास जा कर रुका है। वहा पर उसे भुमिया कोमद धैर्य छोड कर मिले। त्रिपुर दतिया चला गया और इन्द्रजीत अपने घर चले आए ॥२॥

खोजा अब दुल्लह आइयौ। मिलि भदौरिया सुख पाइयौ ॥
तिपुर सुजानि साहि सौं कही। चलौ बैतवै जल संग्रही ॥३॥

अब दूल्हा राम खोजा आया। वहा पर उससे मिलकर भदौरियो को बड़ा सुख हुआ। तिपुर ने बादशाह से कहा कि बेतवै के किनारे जल सग्रह के लिए चलना चाहिये ॥३॥

बेहड़ काटत चल्यौ सुभाउ। रह्यौ आनि खम्हरौली गाउ ॥
इन्द्रजीत निरसिंघ देव आय। लीने सुभट दरैं अरि दाय ॥४॥

स्वाभाविक रूप से ही बेहड़ को काटते हुए खम्हरौली ग्राम मे आकर रुक गये। वीरसिंह और इन्द्रजीत ने स्वत:ही शत्रु योद्धाओ को दाब लिया ॥४॥

॥ दोहा ॥

दुहूँ कटक अरु ओड़छै आध कोस की बीच।
बेहड़ काटत मिसि परदी काटतु काट लै नीच ॥५॥

दोनो ही कटक और ओड़छा आधे कोस के बीच मे थे। बेहड काटने के बहाने नीच तक को काट रहे थे ॥५॥

॥ चौपही ॥

इत कठ गरु उत सरिता कूल । मारग कियो परम अनुकूल ॥
तदपि न गयो ओड़छे परै । निसि बासर सिगरी दल डरै ॥
एक समय सिगरे उमराउ । लगे बिचारन मगत उपाउ ॥६॥

इधर कठगुरु था और उधर सरिता का किनारा था, इससे मार्ग बड़ा ही अनुकूल बन गया था। फिर भी ओरछा जाने का साहस नहीं हुआ। रात दिन सारा दल डरा करता था। एक दिन सारे उमराव मिलकर युक्ति पर विचार करने लगे ॥६॥

जौ कोऊ कछु करै विचार । मानै नहीं तिपुर तिहि बार ॥
राजा राम सिंघ तब कह्यो । हमसों बैठे जाइ न रह्यो ॥७॥

जो भी कोई कुछ विचार करता था, तिपुर उसे मानता ही न था। तब राजा मानसिंह ने कहा कि बहुत समय तक रुक नहीं सकता ॥७॥

भोर होत नहिं लाऊँ बार । जारि ओड़छौ करिहौं छार ॥
मारू कह्यो सुनौ नरनाथ । हौं आयौं राज के साथ ॥८॥

प्रात काल बिना किसी विलम्ब के ओड़छे को जलाकर क्षार कर दूँगा। मारू ने कहा कि हे नरनाथ! मैं राजा के साथ में आया हूँ ॥८॥

तिपुर तिन्है बहु बरजत भये । बरजत ही उठि डेरहि गये ॥
राजा जगे बड़े ही भोर । बजे दमामैं जनु घन घोर ॥६॥

तिपुर ने उन्हें बहुत रोकने का प्रयास, किन्तु फिर भी वे अपने डेरे में चले गये। राजा बड़े ही प्रातःकाल उठे और उनके उठते ही घोर दमामें बजने लगे ॥६॥

सकिलि सकल दल सज्जित भयौ । रह्यो न मारू हठ कौ लयौ ॥
सजि चतुरङ्ग चमू नृप चल्यौ । गाजत गज चालत भुव हल्यो ॥१०

सम्पूर्ण दल युद्ध निमित्त सज्जित हुआ । मारु का हठ कुछ काम न कर सका । राजा अपनी सेना को सजाकर वहां से चल दिया । हाथी गर्ज रहे थे और चलने पर पृथ्वी हिल रही थी ॥१०॥

दुंदुभि सुनि कासी सुर चढ्यौ । चढ्यौ तिपुर सबही बर बढ्यौ ॥
राजाराम साहि गल गज्यौ । वीरसिंह की दुंदुभि बज्यौ ॥११॥

दुँदुभी को सुनते ही कासी सुर ने भी चढ़ाई की । तिपुर के चढ़ते ही सभी योद्धा आगे बढ़े । राजाराम शाहि का दल गर्जना करके आगे बढ़ा । वीरसिंह की भी दुँदुभी बजने लगी ॥११॥

समकि चढ्यौ तब साहि सग्राम । ताके चित्त बसे संग्राम ॥
इन्द्रजीत अरु राउ प्रताप । बाधे कवच लिये कर चाप ॥१२॥

सग्रामसाहि के मन मे युद्ध बसा हुआ था । इसलिए वह युद्ध करने के लिए तत्पर हो गया । प्रतापराउ और इन्द्रजीत ने कवच धारण कर हाथ मे धनुष ले लिया ॥१२॥

उग्रसेन अरु केसौदास । जानत हैं बहु जुद्ध बिलास ॥
ठाकुर और कहां लौं कहीं । कहन लेउं तौ अन्त न लहौं ॥१३॥

उग्रसेन और केसौदास युद्ध के अनेक विलासों को जानते हैं । हे ठाकुर ! युद्ध का वर्णन कहाँ तक किया जाय ? यदि कहने का निश्चय करूँ, तो उसका कभी भी अन्त न होगा ॥१३॥

दोऊ दल बल सज्जित भये । बहुधा ब्योम बिमानन छये ॥
राजसिंह की पत्नी पद्मनि । नव दुलहिनि गुन सुख सद्मिनी ॥१४

दोनों दल सजकर तैयार हुए । विमान आकाश मे उड़ने लगे । राजसिंह की नव विवाहिता पत्नी पद्मनी गुणों और सुखों का घर है ॥१४॥

सिर सब सीसोदिया सुदेश। बानी बड़ गूजर वर बेस॥
श्रुति सिर फूल सुलङ्की जानु। लोचन रुचि चौहान बखान॥१४॥

पन्द्रह से छब्बीस तक की चौपाइयों में उन राजपूतों की विशेषता का वर्णन किया गया है, जिन्होंने युद्ध में भाग लिया था।

सभी शिशोदिया वशी राजपूत सरदार थे। अधिक बात करने वाले सुन्दर वेश में गूजर थे। कान और शिर पर फूल लगाने वाले शोलंकी राजपूत थे और सुन्दर नेत्रों वाले चौहान थे॥१५॥

भनि भदौरिया भूषित माल। भृकुटि भेटि भाटी भूपाल॥
कछवाहे कुल वलित कपोल। नैषध नृप नासिका अमोल॥१६॥

सुन्दर माला पहिने हुए भदौरिया थे और सुन्दर गालों वाले कछुवाहे थे और नैषध नृप की नाक अमूल्य थी अर्थात् बहुत ही सुन्दर थी॥१६॥

दीरघ दसन सुहाड़ा हास। बीर बसै बनाफर वास॥
मुख रुख मारु चिबुक चदेल। ग्रीवा गौर, सुबाहु बघेल॥१७॥

हसते समय जिसके दाँत दिखाई पड़ने लगते हैं वह सुहाड़ा है। वीर रस से युक्त बनाफर जाति के राजपूत हैं। मुख और ठोढ़ी में जिनके युद्ध करने की आभा मिलती है, वह चन्देल राजपूत हैं। गौर ग्रीवा और सुन्दर भुजाओं वाले बघेल राजपूत हैं॥१७॥

कुल कनौजिय कंचुकि चारु। कुर करचुली कठोर विचारु॥
पान पवैया परम प्रवीन। नृप नाहर नख कोर नवीन॥१८॥

सुदरी कंचुकी वाले कनौजिया हैं। करचुली राजपूतों का कठोर विचार है। पान पवैया राजपूत बहुत ही चतुर हैं। नाहर राजा के नाखूनों की कोरें नवीन हैं॥१८॥

कोसलकटि, जादौ जुग जानु। पदप लवा कैकेय बखानु ॥
तोंवर मन मथ, मन पड़िहार। पद राठौर सरूप पँवार ॥१६॥

कौशल से आये हुए राजपूतों की कमर पतली है। यादौवंशी साथ साथ रहते हैं। कैकेय देश के राजपूत वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी की भाँति हैं। तोंवर राजपूत मनमथ के समान हैं। अच्छे स्थानों पर राठौर राजपूत और सुन्दर स्वरुप के पवाँर रजपूत हैं ॥१६॥

गूजर वे गति परम सुवेस। हाव भाव भनि भूरि नरेस ॥
केसी मारू सखि सुखदानि। दामोदर दासो उर जानि ॥२०॥

सुन्दर वेष भूषा धारण किये हुए गूजर राजपूत हैं और सुन्दर हाव-भाव बनाये हुए राजा लोग हैं। मारू सखी सुख देने वाली है और दामोदर उसकी दासी है ॥२०॥

॥ दोहा ॥

राजसिंघ पति पद्मनी दुलहिनि रूप निधान ॥
दूलह मधुकर साहि सुत विरसिंघ देव सुजान ॥२१॥

राजसिंह पद्मिनी दुलहिन रूप और सौन्दर्य की खान है। मधुकर शाह का पुत्र वीरसिंह उसका पति है। यहाँ पर केशव ने वीरसिंह को राजसिंह का पति बताया है, ऐसा क्यों कहा, कुछ पता नहीं है ॥२१॥

॥ चौपाई ॥

तिनकौ सिर स्वयभु मय मानि। श्रवननि की वैश्रवन बखानि ॥
भाल भलौ भागनि मय मानि। वृष कन्धर सुर मेन बखानि ॥२२॥

उनका मस्तिष्क बुद्धि युक्त है और उनके कान वैश्रवन हैं। मस्तक में भाग्य है और उनके कन्धे वृष के समान हैं ॥२२॥

भुज जुग भनि भगवती समान। अति उदार उर तुम हिय मानु ॥
कटि नर केहरि के आकार। जानु वरुन मय रूप कुमार ॥२३॥

दोनों भुजायें भगवती के समान हैं और हृदय बहुत ही उदार है।

कमरसिंह की कमर भी आकार की है और उनका रूप वरुण के समान है ॥२३॥

पद कर कँवल सुहावन वास । आयुध सक्र समान सहास ॥
जय कङ्कन बांधे निज हाथ । पनरथ परम पराक्रम गाथ ॥२४॥

चरण कमल के समान हैं, जिनमें उद्योग वास करता है और युद्ध के साधन सक्र के समान हजारों हैं । जय का ककरण हाथ में बांधे हुए है ॥२४॥

टोपा सोभत मोर समान । नागे सम सोहै तन-त्रान ॥
पावक प्रगट प्रताप प्रचण्ड । रच्छक नारायन नवखण्ड ॥२५॥

सिर पर लगा हुआ टोप मोर के समान शोभा देता है और तन-त्राण नाग के समान सुशोभित है । उनका प्रताप पावक के समान प्रचण्ड है और उनकी रक्षा करने वाले नवो खण्डों के स्वामी नारायण हैं ॥२५॥

पञ्च सब्द बाजत अवदात । सुभट बराती फौज बरात ॥
दोऊ दल बल विग्रह चढ़े । देखत देव विमानन चढ़े ॥२६॥

पञ्च शब्द की ध्वनि हो रही है । अनेक योद्धाओं से फौज सजी गयी है । दोनों दलों में विग्रह को बढ़ता हुआ देखकर देव विमानों पर चढे ॥२६॥

॥ दोहा ॥

वीरसिंह नृप दूलहै नृपपति दुलहिनि देखि ॥
घूघट पाल्यौ भ्रम सहित, समय सकंप विसेखि ॥२७॥

दूल्हा वीरसिंह ने दुल्हन को देखकर घूघट को हटा दिया । घूघट हटाते समय वीरसिंह के मन भ्रम और भय दोनों थे ॥२७॥

॥ चौपही ॥

घूंघट सौं पठ दुलहिनि नई। वीरसिंघ राना गहि लई॥
देखि पति कासीसुर हाथ। कोप कियो कूरम नरनाथ॥२८॥

घूंघट में नई दुल्हिन को देखा और वीरसिंह ने राणा को पकड़ लिया। पति को काशीपुर के हाथ में देखा। यह देखकर कूरम के राजा ने क्रोध किया॥२८॥

जहं तहं विक्रम भट प्रगटये। गज घोटक संघटित सुभये॥
तुपक तीर बरछी तिहि बार। चहू ओर तै चले अपार॥२६॥

जहाँ तहाँ योद्धाओं ने अपने विक्रम को प्रकट किया और यत्र-तत्र हाथी घोड़े इकट्ठा होने लगे। तोप तीर बर्छी आदि चारो ओर से छूटने लगे॥२६॥

जग जागरा जङ्गल जुरे। काहू के न कहू मुह मुरे॥
हींसत हय, गाजत गज ठाट। हांकत भर बरम्हा यत भाट॥३०॥

युद्धस्थल में आकर किसी ने भी अपना मुँह पीछे की ओर नहीं फेरा। घोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी गर्जना कर रहे हैं। ब्रह्मावृत के भाँट विरुदावली का बखान कर रहे हैं॥३०॥

जहं तह गिरि गिरि उठि उठि लरैं। टूटै असि काढ़ैं जम धरैं॥
भूलि न कोऊ जानै भाजि। मारत मरत सामु है गाजि॥३१॥

योद्धा जहा-तहा युद्ध कर-कर गिरते हैं। तलवारें टूट रही हैं, किन्तु योद्धा भूलकर भी नहीं भागता है। एक दूसरे के सामने गर्जना कर मारते और मरते हैं॥३१॥

अपने प्रभु को संकट जानि। उठ्यो दमोदर गहि असि पानि॥
सकल जाँगरा जुद्ध अमोर। चमू चांपि आई चहुं ओर॥ ३॥

अपने स्वामी को सकट मे पड़ा हुआ जानकर दामोदर तलवार लेकर उठ खड़ा हुआ। सभी जागरा युद्ध में भिड़ गये और सेना ने चारो ओर से घेर लिया॥३२॥

घोरौ कट्यौ धरनि धुकि गयौ । तब संग्राम पयादौ भयौ ॥
तापर आयौ राउ प्रताप । संग लिये बहु सूरनि आप ॥३३॥

घोड़ा कट कर जमीन पर गिर पड़ा । घोड़ा गिरने से संग्राम पैदल हो गया । इसके बाद प्रताप राउ अनेक शूरों को लिए हुए आ गया ॥३३॥

कियौ हथ्यार आपने हाथ । गावत गाथा सुर नर नाथ ॥
सकत सिंघ कछवाहे आनि । गयौ अगावम तैं पहिचानि ॥३४॥

उसने अपने हाथ से इतना भयानक युद्ध किया कि उसकी गाथा देव और मनुष्य सभी गाते हैं । इसी समय शक्तसिंह कछुवाहा को पहचान उसके आगे गया ॥३४॥

घोरनि तैं दोऊ गिरि गये । भूतल लोथ क पोथा भये ॥
राउ प्रतापहिं देखत आंसु । तिन पहं दौरे केसौ दासु ॥३५॥

घोड़ों से दोनों गिरकर लोट-पोट हो गये । प्रताप राउ को देखकर केसौदास उनके पास दौड़ते हुए गये ॥३५॥

हन्यौ दमोदर हाथहि हेरि । बरछा।हन्यौ बरछी लै फेरि ॥३६॥
दामोदर ने बरछे को हाथ से घुमाकर मार दिया ॥३६॥

॥ हरिकेस उवाच ॥

॥ कवित्त ॥

कारी पीरी ढालैं देखियैं बिसालैं अति,
हाथिन की श्रटा घन सी श्ररति हैं ।
चपला सी चमक घूमनि माझ तरवारि,
सारढी सौं सार फुलझारी सी झरति हैं ।

प्रबल प्रताप राउ जङ्ग जुरै केसौदास,
हनै रिपु करै न छिपा पनु भरति है।

पेस हरिबेस तहा सुभट न जाय जहा,
दुहू बाप पूतै दौड़ हौड़सी परति है ॥३७॥

बड़ी बड़ी काली पीली ढालें दिखाई पड़ती हैं और हाथियों के झुण्ड के झुण्ड बादलों की घटा सी दिखाई देते हैं। बिजली के समान हीरों की तलवार चमकती है और उनसे फुलझड़ियां सी झड़ रही हैं। प्रताप राउ युद्धस्थल में बिना किसी बिलम्ब के शत्रुओं को मार रहा है। जहां पर किसी के भी जाने का साहस नहीं होता है वहा पर पिता पुत्र (हरिबेस) में युद्ध के लिये दौड़ लगी हुई है ॥३७॥

॥ चौपई ॥

देखि पयादौ बल कौ धाम। सरु संग्राम साहि संग्राम।
दौरयौ उग्रसेन रनजीत। दौरे इन्द्रजीत सुभ गीत ॥३८॥

संग्रामसिंह को पैदल देखकर उग्रसेन और इन्द्रजीत दोनों ही सहयतार्थ दौड़ पड़े ॥३८॥

दल बल सहित उठे दौड़ बीर। मनौ घना घन घोर गँभीर ॥
धुन्ध धूरि धुरवा से गनौ। बाजत दुन्दुभि गर्जत भनौ ॥३९॥

दोनों ही वीर (उग्रसेन और इन्द्रजीत) दल बल के साथ इस प्रकार बढे जैसे बादल गर्जना कर बढ़ रहे हों। सेना के चलने के कारण धुंध धुरवा के समान बढ़ी। दुदुभी के बजने पर ऐसा लगा मानौ मेघ गर्जना कर रहे हों ॥३९॥

जहां तहां तरवार कढ़ी। तिनकी दुति जनु दामिनि बढ़ी ॥
तुपक तीर ध्रुव धारापात। भीत भये रिपुदल भट भ्रात ॥४०॥

इधर उधर लोगों ने अपनी तलवार निकाल ली। उन तलवारों की दुति बिजली के समान थी। तोप, तीर और तलवार की धार से शत्रु दल अत्यधिक भयभीत हो गया ॥४०॥

श्रोनित जल पैरत तिहिं खेत। कूरम कुल सब दलहि समेत॥
परम भयानक भौ यह ठौर। भागि बचे मारू हरधौर॥४१॥

युद्धस्थल में खून ही खून बहने लगा। सारा का सारा कूरम दल उसमें बह रहा था। इस स्थान पर अत्यधिक भयानक युद्ध हुआ। इस अवसर पर माड़ हरधौर भागकर बच गये॥४१॥

जगमनि प्रोहित घोरो दियो। चढ़ि सग्राम साहि हरखियो॥
जूझि पर्यो दामोदर जबै। भागि बच्यो कूरम दल तबै॥४२॥

जगमन प्रोहित ने अपना घोड़ा संग्राम शाहि को दिया। घोड़ा पाकर संग्राम शाहि बहुत प्रसन्न हुआ। जिस समय दामोदर जूझ गया उस समय कूरम दल ने भाग कर अपनी जान बचा ली॥४२॥

जगमनि दामोदर तिहिं बार। पठये सिरि खोटे सिरदार॥
राजसिंह भये अति बह बहे। जाइ औंड़छें रावर गहे॥४३॥

जगमनि ने दामोदर का शिर सरदार के पास भेज दिया। इस अवसर पर राजसिंह अत्यधिक भयभीत हुआ और वह भागकर महल (रावर) में चला गया॥४३॥

अति रूरी राजति रन थली। जूझि परे तहँ हय गय चली॥
रुण्डनि मुण्ड लसैं गज कुम्भ। श्रोनित भर भभकन्त भुसण्ड॥४४

रण स्थली अत्यधिक रूरी दिखाई पड़ने लगी। वहाँ पर अनेक योद्धा, हाथी और घोड़े जूझ गये। हाथियों के रुण्ड तथा खून ही खून दिखाई पड़ रहा है॥४४॥

रुधिर छांड़ि अँग अँग रुति स्रवै। गैरिक धातु सैल जनु द्रवै॥
धाव अन्ध कबन्ध अपार। छिदी सौंह थी उरनि उदार॥४५॥

अंग से निकलती हुई खून की धाव सुन्दर लगती है। ऐसा लगता है मानो पर्वतों से गैरिक धातु निकल रही है। इधर से उधर अन्ध कबन्ध दौड़ रही हैं और लोगों के हृदयों में तलवारें छिदी हुई थीं॥४५॥

हीन भये भुज बल के भार। जनु हिय हरषि गहे हथियार ॥
उठि बैठे भट तरु की छांहि। लागी सागि तिन्हें मुँह माहि ॥४६॥

जब भुजाओं की बल भार कम हुआ, तब हृदय में प्रसन्न होकर अस्त्रों को हाथों में ले लिया। योद्धागण वृक्ष की छाया में उठकर बैठ गये। इस अवसर पर उनके मुँहों में साग आकर लगी ॥४६॥

दांतन की किरचन रँग रंगे। बहु बिधि रुधिर हलूरा लगे ॥
भखि तमोर विपई मनु हरै। मनहुँ कपूर कहूरा करै ॥४७॥

दांत टूट गये और उनसे रुधिर की धारा बह निकली। ऐसा लग रहा था कि कोई विषयी व्यक्ति पान (तंबोर) खाकर दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है अथवा कपूर को खाकर कुरला कर रहा है ॥४७॥

घन घाइनि घाइल घर परैं। जोगिनि जोरि जघ सिर धरैं ॥
अञ्चल मुख पोंछति जग मगी। कण्ठ श्रोन पिय मासा लगी ॥४८॥

अनेक योद्धा घायल होकर घर पर पड़े हुए हैं। उनकी पत्नियां अपने पतियों की जघे पर शिर रखे हुई उनके मुखों को अंचल से पोंछ रही हैं ॥४८॥

सांचहु मृतक मानि भय दली। मानहु सती छोड़ि सत चली ॥
गाधिनि के सुत सोभित घनें। ललित पल मुख श्रोनित सनें ॥४९॥

मानो सचमुच मृतक समझ कर भययुक्त हो गई हो और उन्हें छोड़कर सभी पत्नियां चल दीं। उनके चलते समय ऐसा लगा कि सती अपने सत्य को छोड़ कर जा रही हैं। गीध पुत्र वहां पर चक्कर काट रहे हैं। सुन्दर मुख खून से सने हुए पड़े हैं ॥४९॥

चन्द्र जानि वासर चहुँ ओर। चुंचनि चुनत अगार चकोर ॥
श्रोनित सोभा स्वे शरीर। तहं देखिये डरे बर वीर ॥५०॥

योद्धाओं के मुखों को खूनसे सना हुआ देखकर ऐसा लगा कि चकोर दिन में चद्रमा को उगा हुआ जानकर अगार खा रहा है। खून से सभी के शरीरों को सराबोर देखकर योद्धागण भयभीत हो गये ॥५०॥

खेलि फागु मानौ फगुहार ।
सोइ रहे मद मत्त गँवार ॥
एक बूझि भूतल पर परे ।
एक बूड़ि सरिता महँ मरे ॥५१॥

ऐसा लगता है कि होली का फाग खेलकर कुछ मत्त गवार सो गये हों। कोई घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा है और कोई नदी में गिरकर डूब गया है ॥५१॥

गय घोटक कर भनि को गने ।
छूटे बन बन डोलत घनें ॥
ऐसो भयी करम को जोग ।
तज्यो न वारो आलम लोग ॥५२॥

हाथी, घोड़े और ऊँटों की गिनती नहीं की जा सकती है। वे वन-वन मारे-मारे फिरते हैं। कुछ कर्म का ऐसा योग हुआ है कि आलम लोग ने नक्कारा को ही छोड़ दिया है ॥५२॥

जहं जहं हसम खसम बिन भये ।
जल थल रसत बसत भगि गये ॥
माही महल मरातब साथ ।
आई पति कामीपुर हाथ ॥५३॥

जहा तहा नौकर (हसम) बिना स्वामी के रह गये। सभी लोग स्थान छोड़कर भाग खड़े हुए हैं। पृथ्वी, महल और पताका कालीपुर के हाथ लगी है ॥५३॥

लीनी खलक खजानो लूटि।
कूरम भगे चहूं दिस फूटि ॥
देखै तिपुर तमासो आप।
ऊपर होहि नहीं परताप ॥५४॥

खलक और खजाना दोनों को ही लूट लिया। इस अवसर पर सभी कूरम पठानी इधर उधर भाग खड़े हुए। किन्तु तिपुर खड़ा हुआ तमाशा देख रहा था, उस पर ऊपर से किसी भी प्रकार का पश्चिार नहीं दिखाई पड़रहा था ॥५४॥

॥ कवित्त ॥

है गयो बिठान बल मुगल पठानिन को,
भभरे भदौरियाउ सभ्रम हिये छयो॥
सूखे मुख सेखानी के, खरघोई खिसान्यौ
खत्री गाढ़ौ गढ़ी गाढ़ पाउ एकौ न इतै दयो॥
बीर सिंघ लीनी जीति पति राजसिंह की
तुसार कैसो मारथो मारू केसौदास है गयो॥
हाथी मय हय मय हसम हथ्यार मय लोह
मय लोथि मय भूतल सबै भयो ॥ ५५॥

विजय के उपरान्त मुगल और पठानों की शक्ति नष्टप्राय हो गयी। भदौरियों को विजय से बड़ा भ्रम हुआ। शेख लोगों के मुँह सूख गये। खत्री अत्यधिक खिसिया गये। वे तो उस ओर एक कदम तक न बढ़ा सके। वीरसिंह ने राजसिंह की पति को जीत लिया और उसका वीरत्व और भी अधिक जाग्रत हो उठा। पृथ्वी पर हाथी, घोड़े, नौकर, लोह, लोथें पड़ी हुई चारों ओर दिखाई पड़ती थीं ॥५५॥

॥ चौपाई ॥

बीर सिंह अति हर्षित हिये। राजसिंघ पति दुलहिनि लिये॥
घेरयौ नगर ओड़छौ जाइ। मारु केसौदास रिसाइ ॥५६॥

वीरसिंह हृदय में अत्यधिक प्रसन्न हुआ। राजसिंह ने दुलहिन को साथ में लेकर ओरछा नगर को जाकर घेर लिया। इस समय वीरसिंह अत्यधिक क्रुद्ध था ॥५६॥

घुस्यो घूँसि ज्यों घर के कोन। तजि रजपूती साधी मौन ॥
राजा राजसिंह हिय डरयौ। सोक छाड़ि मन संसय परयौ ॥५७॥

जैसे ही घर मे प्रवेश किया वैसे ही राजपूती गुणों को छोड़ कर मौन धारण कर लिया। इस अवसर पर राजसिंह बहुत अधिक भयभीत हुआ। शोक को भुलाकर मन सभ्रम में पड़ गया ॥५७॥

अमल कमल दल लोचन ऐन। स्यामल जल भरे आये नैन।
पति दुलहिनि करुनारस भरी। वीरसिंह सौं विनती करी ॥५८॥

स्वच्छ कमल सदृश नेत्रों में पानी भर आया। अत्यधिक करुणारस से ओत प्रोत हो कर दुलहन ने विनती की ॥५८॥

महाराज जौ करौ सनेहु। इनकौं धर्म द्वार अब देहु ॥
इतनौं कहत आइयो रोय। ह्वै गयौ करुनासागर सब कोय ॥५९॥

यदि महाराज आप स्नेह करना चाहते हैं, तो इन्हें अब धर्म द्वार दें। इतना कहते ही रोने लगे। इस अवस्था को देखकर सभी के हृदय में करुण भाव जाग उठा ॥५९॥

वीरनि बोलि अभै धौं दये। वीरसिंह तब डेरहि गये ॥
माह महित सोकरग रये। राजसिंह तब कुठौलो गये ॥६०॥

वीरों को बुलाकर अभय करके वीरसिंह अपने डेरे में चला गया और राजसिंह कुठौली को चले गये ॥६०॥

॥ सवैया ॥

ओरनि लै अरु ओरम उसीर उरै जब केसर जेन्ह बिमाती।
घेरि घनौ घनसार तुसार सों अक लगावत पकज पाती ॥

मोधि सबै मियरे उपचारनि ज्यों ज्यों सिरावत त्यों अति ताती।
केसव मारु गये पुर नारन सो न जरथो पै जरी उठि छाती ॥६१॥

चाँदनी रात में ओला और ओस की खस की टट्टी लगाते हैं। तुषार में कपूर को मिलाकर शीतल करते हैं। शीतल करने के जितने भी उपचार हैं, सभी को करते हैं, किन्तु ज्यों ज्यों शीतल करने की चेष्टा करते हैं, त्यों-त्यों गरम होता है। मारु पुरनार को चले गये हैं। वह तो नहीं जले, किन्तु हम सब की छाती अवश्य जल उठी ॥६१॥

॥ चौपाई ॥

वा दिन तें सिगरे उमराउ। चल दल कैसो गह्यो सुभाउ।
आवन जान न पावै कोय। सब दल रह्यो महा भय होय ॥६२॥

उस दिन सभी सरदार वृक्ष के पत्तों की भांति चंचल हो गये। इधर से उधर कोई आनेपाता है और न जाने ही पाता है। सम्पूर्ण दल में भय व्याप्त हो गया है।

इति श्रीमूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री बीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे वर्णन नाम अष्टम प्रकाश ॥८॥

लोभ उवाच

राजसिंह मारु की हार। कहा करयो सुनि साहि विचार
सो तुम कह्यो जगत वदिनी। जिनके जस की चिर चंदिनी ॥१॥

राजसिंह मारु की हार सुनकर शाह ने क्या विचार किया, उसे जग वदनी कहो। हे जगवदनी ! जिसके कारण सदैव चांदनी रहती है ॥ १ ॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

राजसिंह के युद्ध विधान। सुनि सुनि सीस धुन्यौ सुलतान॥
उमराउनि को प्रगट प्रमान। यह लिखि पठै दियो फरमान॥२॥

राजसिंह के युद्ध का विधान सुनकर सुलतान अपना शिर धुनने लगा। सभी उमरावों को स्पष्ट रूप से यह फरमान लिखकर भेज दिया॥२॥

कै तुम गहियो हज की राहु। कै उनकी बसहिनि पै जाहु॥
उन नृप पति लीनी करि नेहु। तुमहू उनकी पतिनी लेहु॥३॥

या तो तुम हज का रास्ता ले लो या तुम भी उनकी बस्तीही पर जाओ। उन्होंने स्नेह करके नृप पति को ले लिया और अब तुम भी उनकी पत्नी ले लो॥३॥

जहं जहं जाइ तहां तुम जाउ। मेटो मेरे उर को दाहु॥
यह सुनि वीरसिंह सुख पाय। बसहिनि मांझ चले अकुलाय॥४॥

जहां कहीं भी वह जाय, वहीं तुम भी सब जाओ। मेरे हृदय के दाह को मिटा दो। यह सुनकर वीरसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह आतुर होकर बसीही क चल दिया॥४॥

को मन मीच अधर मधु छकै। को मेरा दासी लै सकै॥
बरजि रहे बहु राजा राम। ऐसो करि छोड़ौ घर धाम॥५॥

कौन सा वह मृत प्राय मन है, जो कि मेरा दासी के अधरों का पान करना चाहता है। मेरी दासी को लेने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। राजाराम ने अनेक प्रकार से रोका और कहा कि ऐसा करके घर को छोड़ दो॥५॥

॥ सवैया ॥

कालिंदि बैठि गुपाचल से गढ़ सोधि सुरेसन कै गुन गाहीं।
दान कृपान विधानन केशव दुष्ट दरिद्रन के उर दाहीं॥

खान जिहान के खान करी सब खान जमान वृथा अब गाही ॥
मेरे गुलामनि ह्वै है सलाम सलामति साहि सलेमहि चाही ॥६॥

कल ही ग्वालियर गढ़ में बैठकर सभी योद्धाओं की खोज खबर लूँगा। दान द्वारा दरिद्रों का कृपान द्वारा दुष्टो के हृदय के दाह को समाप्त कर दूँगा। अब सम्पूर्ण संसार को खान करके मानूँगा। मेरे गुलामों तक को सभी सलाम करेंगे और शाह को सलाम करने की सभी की इच्छा प्रबल बनी रहेगी ॥७।

॥ चौपाई ॥

बीर सिंह राजा वर धीर । बरुही जाय लई धरि धीर ॥
तेही समय छाड़ि भुव लोक। अकबर साहि गये परलोक ॥ ७ ॥

राजा बीरसिंह ने बसही में जाकर श्वास ली। इसी समय संसार छोड़कर अकबर स्वर्गवासी हो गया ॥७॥

काशीपुर जहँ तहँ गल गजे। जहाँ तहाँ तै थाने भजे ॥
पात साहि भो साहि सलेम। मानो छिति मण्डल को छेम ॥ ८ ॥

काशीपुर में यत्र तत्र गर्जना होने लगी। लोग इधर उधर थाने की ओर भागने लगे। सलीम शाह बादशाह हुआ ॥८॥

॥ कवित्त ॥

दाम बल, दल बल, बांहु बल बुद्धि बल,
बस हू कौ बल जु निधानौ जान्यौ जबही ॥
बाधि कटि तट फैंट पीत पट को निकट,
पाँइनि पयादौं उठि धायो प्रभु तबही ॥
निपट अनाथ नाथ दीन बन्धु दया सिंधु,
केसौदाम सांचे जाने अबही ॥
हाथी की पुकार लोग काननि सुन्यो हैं,
हरि ओड़छे की लागत पुकार देखे सबही ॥ ६ ॥

दान बल, सैनिक शक्ति, बाहु शक्ति, बुद्धि बल, यश बल का वह निधान है, ऐसा सभी ने समझा। प्यादा कमर में पीले वस्त्र की फेंट बाँधकर पैदल ही अपने स्वामी के पास दौड़कर गया। हे नाथ! मैं निरा अनाथ हूँ। आप दीन बन्धु, दया के सागर हैं, इसे मैंने अभी जाना है। हाथी की पुकार कानों से सुनने लगे। यह पुकार ओड़छे की ओर से आ रही थी, सभी ने सुना है ॥९॥

॥ दोहा ॥

दान लोभ सब आदि दै कही जु बूझी मोहि ॥
जाहु जहा जाके गुननि रहौ सकल मति तोहि ॥१०॥

देवी ने कहा कि हे दान और लोभ! जो कुछ भी तुमने पूछा उस को मैंने कह दिया। अब तुम दोनों उसी के पास जाओ, जिसके गुणों का सुनने की तुम्हारी इच्छा है ॥१०॥

॥ दान उवाच ॥

जग माता औरौ कहौ जौ परि पूरन प्रेम।
वीरसिंह कहँ का दयौसाहिब साहि सलैम ॥११॥

देवी के वचनों को सुनकर दान ने कहा कि हे जगमाता! यदि आप पूर्ण प्रेम है तो और भी कहो। सलीम शाह ने वीरसिंह को क्या दिया ॥११॥

॥ श्री देव्यु वाच ॥

चौपाई

दान लोभ तुम परम सुजान। जानत है सब के परमान ॥
अक्बर साहि गये परलोक। जहाँगीर प्रभु प्रगटे लोक ॥१२॥

देवी ने कहा कि हे दान और लोभ! तुम दोनों ही बहुत चतुर हो और तुम सभी को अच्छी प्रकार से जानते हो। जब अकबर स्वर्गगामी हुआ तब जहांगीर राजा हुआ ॥१२॥

गाजी तखत बैठियो गाजि। सोक गये लोभनि के भाजि ॥
पारस मो सबको गिरि गयो। चिंतामनि सो कर पर गयो ॥१३॥

जहाँगीर गर्जना करके सिंहासन पर बैठा। उसके बैठते ही लोगों के सारे दुख भाग गये। ऐसा लगा कि चिंतामणि पर हाथ पड़ने से सभी का पारस गिर गया हो ॥१३॥

अर्कं बर सो भयो अरिष्ट। सुर तरु सो देख्यो हग इष्ट ॥
अर्थं गया ससि सो, सतु दान। सूरज सो भयो उदित जहान ॥१४॥

अर्कवृक्ष के समान वह अरिष्ट हुआ, किन्तु लोगों ने उसे कल्पवृक्ष के समान देखा। हे दान! वह चन्द्रमा की भांति अस्त हो गया और सूर्य की भांति इस संसार में उदित हुआ ॥१४॥

रज, तम सत्व गुननि के ईस। तिन करि मंडल मंडित दीस ॥
बैठे एक छत्र तर लसैं। छाह सबै चिति मण्डल बसैं ॥१५॥

सत, तम, रज गुणों से युक्त ऐसे राजा के अन्तर्गत सभी मंडल रह रहे थे। एक छत्र के नीचे वह बैठा शोभा पा रहा था और उसकी छत्र-छाया में पृथ्वी के सभी मण्डल पल रहे थे ॥१५॥

एसों राज रमा मह करै। भुमिया के नोक भुव धरै ॥
गढ़नि गढ़ोई के वलदेव। सेवत वह जोरे नर देव ॥१६॥

पृथ्वी पर इस प्रकार से राज्य कर रहा था। जहांगीर पृथ्वी के छोर (किनारे) तक राज्य करता था। गढ़ों के स्वामी उसकी हाथ जोड़े सदैव सेवा किया करते थे ॥१६॥

राजसिंह सोहत चहुं पास। दिन देखत गजराज प्रकास ॥
बैठे तखत सकल सुख लिये। सुधि आई हजरत के हिये ॥१७॥

राजसिंह उसके पास रहकर सेवा किया करता था। आनन्दपूर्वक सिंहासन पर बैठा हुआ राज्य कर रहा था। एक दिन जहांगीर को याद आई ॥१७॥

राजा वीरसिंह पैं आउ। दियौ तुरङ्गम स्यौं मिभ पाउ ॥
पठयौ लेखि अनिश जानु। अपनें हाथ लिख्यौ फरमानु ॥१८॥

एक आदमी को घोड़ा देकर वीरसिंह के पास अपनेने फरमान लिखकर भेजा ॥१८॥

डाग चौकिया, पहुंचे सेख। वीरसिंह देख्यौ सुभ वेख ॥
जो पायौ प्रभु को फरमान। महा मृतक पावै जो प्रान ॥१६॥

शेख उस जंगल को पार कर वीरसिंह के पास पहुँचा। शेख ने वीरसिंह को सुंदर वेष में पाया। जहाँगीर के फरमान को पाकर वीरसिंह इतना प्रसन्न हुआ कि मानो मृतक ने प्राण पा लिए हों ॥१६॥

लै सग भारथ वीर सुठाउँ। तब प्रभु आए एरछ गाउँ ॥
हिलि मिलि रामसाहिं नर नाथ। है गयौ इन्द्रजीत लै साथ ॥२०॥

भारथसिंह को वीरसिंह लेकर ओड़छा ग्राम में आये। फिर रामसिंह का साथ लिया और इन्द्रजीत को लेकर चल दिए ॥२०॥

खेलत हसत बहुत दिन भरे। आये निकट नगर आगरे ॥
ऐसौ मग देख्यौ बाजार। मनौ गनागन वनित विचार ॥२१॥

हँसते खेलते सभी बहुत दिनों में आगरे पहुँचे। उन्हें नगर ऐसा सुन्दर और व्यवस्थित ढग से बसा हुआ लगा मानों किसी कवि ने गणों का अच्छी प्रकार से विचार करके कविता की रचना की हो ॥२१॥

देख्यौ जोई सोइ अपार। मनहुँ धनपति को व्यवहार ॥
जाहि देखि भूल्यौ ससार। देख्यौ अति अद्भुत बाजार ॥२२॥

जिस चीज को देखा वही वहा पर अपार मात्रा में थी। ऐसा लगा कि आगरे में सारा लेन देन कुबेर का चल रहा हो। जिस अद्भुत बाजार को देखकर सारा ससार अपने को भूल जाता है, उसी बाजार को उसने देखा ॥२२॥

॥ कवित्त ॥

परम विरोधी अविरोधी ह्वै रहत सब,
दीनन के दीन हीननि को छेम है।
अधिक अनत आप सोहत अनत अति,
असरन सरननि रखिबे कौ नेम है॥
हुत भुक हित मति श्री पति बसत हिय,
जदपि जलेस गंगा जलही सो नेम है॥
केसौदास राजा बीरसिंह देव देखि कहैं,
रुद्र हैं समुद्र हैं कि साहिब सलेम हैं॥२३॥

केशवदास बीरसिंह की प्रशंसा में कहते हैं कि बीरसिंह के जो विरोधी हैं, वे भी उन्हें देखकर विरोध करना छोड़ देते हैं। दीनों को दान देने का उन्होंने संकल्प ले रखा है। अशरण लोगों को शरण देने का नियम बना रखा है। हृदय में विष्णु जी का निवास है, फिर भी गंगा जल से अत्यधिक स्नेह है। इस प्रकार के बीरसिंह को रुद्र कहा जाए या समुद्र की संज्ञा दी जाए या सलीम शाह कहा जाए, इसमें से क्या कहना ठीक होगा, इस असमंजस में केशवदास पड़ गये हैं॥२३॥

॥ चौपाई ॥

जहाँगीर जगती कौ इन्द्र। देख्यो बीरसिंह देव नरिन्द्र॥
कर जोरे सेवत दिगपाल। विद्याधर, गंधर्व रसाल॥२४॥

संसार के इन्द्र, जहांगीर ने मनुष्यों में इन्द्र के समान बीरसिंह को देखा। जहांगीर की सेवा हाथ जोड़े हुए दिक्पाल, विद्याधर, एवं गंधर्व कर रहे हैं॥२४॥

सोभत है गजराज चरित्र। ढारत चँवर कलानिधि, मित्र॥
सकल मंजु घोषा सुन्दरी। गावति सुखद सुकेसी खरी॥२५॥

जहांगीर के ऊपर सूर्य और चन्द्र तो चवर ढल रहे हैं। अनेक सुन्दरियाँ—घोषा, सुकेशी आदि—गान कर रही हैं॥२५॥

पूरब दिव दुति दीपित करै। मनि गति मण्डित यत्रहि धरै।।
साहि देखि राख्यौ उरलाय। ज्यौं हरि सुखन सुदमहि पाय।।२६।।

पूर्व दिशा को मणि दीप्त कर रही थी। ऐसा लगा रहा था कि मणि यन्त्र को धारण किए हुए हैं। इसी अवसर पर वीरसिंह दरबार में घुसा। उसे देखते ही सलीमशाह ने उसे उसी प्रकार से हृदय से लगा लिया जिस प्रकार से सुदामा को कृष्ण ने लगा लिया था ।।२६।।

देखत दुख दूरि सब गयौ। पाइनि परि जब ठाढ़ौ भयौ।।
पूछैं साहि सबनि सुख पाय। नीके हैं राजन के राय।।२७।।

देखते ही सारे दुख भाग गये। वीरसिंह पैरों पर गिरकर खड़ा हो गया। सलीमशाह ने वीरसिंह से पूछा कि आप कुशल पूर्वक तो रहे ।।२७।।

अब नीकै देखे जब पाय। उज्जल अमल कमल से राय।।
हय गय हीरा बसन हथ्यार। हजरत पहिरायौ बहुवार।।२८।।

वीरसिंह ने उत्तर दिया-आप को सानन्द देखने के बाद मैं भी आनन्द से ही हूँ।" सलीमशाह ने वीरसिंह को बहुत से हाथी, घोड़े हीरा, वस्त्र, हथियार आदि दिए ।।२८।।

भारत साहि बहुरि इन्द्रजीत। मिलतन भयो साहि के मीत।।
जब जब गयौ बीर दरबार। तब तब शोभा बढ़ै अपार।।२६।।

भारत शाहि और इन्द्रजीत भी सलीमशाह से मिलते ही मित्र हो गये। जब जब वीरसिंह दरबार में जाता था तब तब दरबार की शोभा बढ़ जाती थी ।।२६।।

खान राउ राजा मनहार। ऊपर बीर लिये हथियार।।
कटरा कटि दावें तरवारि। साहि समीप रहे सुख कारि।।३०।।

अनेक खान, राजा और उनके वीरसिंह अपनी कमर में कटारी तलवार रखे हुए शाह के समीप रहते हैं जो कि सब प्रकार से सलीमशाह को सुख पहुँचाने वाले हैं ।।३०।।

कबहू हय गय हेम हथ्यार। कबहू रग मृग बसन अपार ॥
कबहूँ बाजे भूसन छेम। दै बहुरावत साहि सलेम ॥३१॥

सलीमशाह भूखे लोगों को दान में कभी तो हाथी घोड़ा हथ्यार आदि देता है और कभी रग मृग बसन आदि दान में देता था ॥३१॥

कौन गनै राजा अरु राउ। खोजा देखे सब उमराउ ॥
काहू को न जाय मन जहाँ। बीरसिंह को आसन तहां ॥३२॥

राजा और राव की गिनती नहीं की जा सकती है। सभी उमराव बीरसिंह के स्थान को दूढ़ा करते हैं, किन्तु बीरसिंह के आसन तक किसी का मन नहीं पहुँच पाता है ॥३२॥

एक समय हजरति हँसि कह्यौ। बीरसिंह तू दुरग सो रह्यौ ॥
और बड़ी बड़ी परिगन लेरिग। मेरौ राज आपनौ लेखि ॥३३॥

एक बार सलीम शाह ने हँसकर कहा "तुम बीरसिंह बड़े ही दुग में रहे।" बीरसिंह ने इस पर उत्तर दिया "आप मेरे सभी परगनों को अपना ही समझो। मेरा राज्य तुम्हारा ही है।" ॥३३॥

जाहि भुवन त्रिभुवन सुख देखि। सबैं तुमारा सौ कछु पेखि ॥
सकल बुंदेलखण्ड हैं जितो। तुमकों मैं दीनो हैं तितो ॥३४॥

जो कुछ तुम्हारे पास है उसे देख कर तीनों लोक सुखी होते हैं। मैं आज तुम्हें सम्पूर्ण बुंदेलखण्ड का राज्य दे रहा हूँ ॥३४॥

औरौ बड़े बड़े परिगनै। तो कहु मैं दीने बहु घने ॥
हौं जु भयो सहनि सिरताज। तुहू होइ राइनि को राज ॥३५॥

और भी जो बड़े-बड़े परगने हैं वह भी मैं तुम्हें दे रहा हूँ। मैं यदि सभी शाहों का सिरताज हुआ हूँ तो तुम भी सभी रायों के सिरताज हो ॥३५॥

तोहि न मानै मारौं ताहि। बिदा होय अपने घर जाहि ॥
बीरसिंह कीनो तसलीम। गाजी जहांगीर के भीम ॥३६॥

यदि तुझे कोई स्वीकार नहीं करेगा अर्थ तुझे सम्मान नहीं प्रदान करेगा तो मैं उसे मार डालूंगा। वीरसिंह ने दस्तनीम की ॥३६॥

तिन बोलि इन्द्रजित लये। करन विचार सुडेरहि गये ॥
कियौ विचार बहुत निधि जाय। एकहु भाति न जिय ठहराय॥३७॥

वीरसिंह इन्द्रजीत को बुलाकर डेरे में विचार विनिमय करने गये। अनेक प्रकार से विचार किया, किन्तु मन किसी भी प्रकार से सुस्थिर नहीं हो सका ॥३७॥

कोऊ छाड़ै कोऊ धरै। कछु विचार नहिं जिय मैं परै ॥
जाइ गही आगे आपनै। हमै जतहरा लेत न बनै ॥३८॥

दोनों—वीरसिंह, इन्द्रजीत—मिलकर यह निश्चित नहीं कर सके कि कौन सा भाग कौन लेगा। कुछ भी निश्चित विचार दोनों मन में धारण नहीं कर पा रहे हैं। अन्त में वीरसिंह ने कहा कि जतहरा मैं नहीं लूंगा ॥३८॥

कह्यो सरीफ खान समुझाय। वीरसिंह सो अति सुख पाय ॥
अपनी भइ मैं तू प्रभु होहि। मुगल गये दुख ह्वै है तोहि ॥३९॥

सरीफखा ने अत्यधिक सुखी और प्रसन्न होकर वीरसिंह को समझाया कि तुम अपनी भूमि में स्वामी हो जाओ। सभी मुगलों के जाने से तुम्हें दुख होगा ॥३९॥

कीनी विदा बैम यहिराय। दियें परिगने बहु सुख पाय ॥

॥ दोहा ॥

राजा बिरसिंह देव की, विदा करी सुलतान ॥
एरछ गढ़ आये सुने, केशव निधान ॥४०॥

अनेक आभूषणों को पहनाकर बहुत से परगने देकर वीरसिंह ने विदा किया। ओड़छा गढ़ में जाकर वीरसिंह रहने लगा।

॥ चौपही ॥

आये घर तब भारत साहि। कही राज सों बात निबाहि ॥४१॥

भारत शाहि ने घर आकर वीरसिंह से जा कर कहा ॥४१॥

पटहारी आये नृप राम। सबही जान्यो विग्रह काम॥
यह सुनि प्रताप राउ बुलयें। वीरसिंह पुर एरछ गयें ॥४२॥

पट्हारी ने राजा राम आये। उन्हें आया देखकर सभी ने समझ लिया कि निश्चित रूप से विग्रह होने वाला है। प्रताप राव को दान करने के लिये बुलाया गया। वीरसिंह ओड़छा को चले गये थे ॥४२॥

यह सुनि राम साहि गुन ग्राम। बैठे मतै आपनै धाम॥
निजै नरायन देवा राय। लीनै गिरधर दास बुलाय ॥४३॥

यह सुनकर रामशाह ने निजय नारायण, देवराय और गिरधर दास को विचार विमर्श के निमित्त अपने घर पर बुला लिया ॥४३॥

मंगद पैंमु बहादुर अली। बूझी बात इन्हें प्रभु भली॥
कही मतौ तुम बुद्धि बिसाल। करनै मोहि कहा यहि काल ॥४४॥

रामशाह ने मगद, पैंमु, बहादुर अली से पूछा कि तुम सभी बताओ कि मुझे क्या करना है ॥४४॥

ऐसी बात बुदेलनि कही। एक सूझ हम कीनै सही॥
जूझ गयौ हमरौ परिवार। तब तुम कीजहु और विचार ॥४५॥

बुंदेलो ने ऐसी बात कही थी उसे हम सभी ने पूरा किया। हमारा सम्पूर्ण परिवार उस बात को पूरा करने में जूझ गया। इस बात को ध्यान में रखकर फिर और विचार कीजिये ॥४५॥

कह्यो पायकनि मन्त्र सु येहु। उनहीं की बातैं सुनि लेहु॥
सत करि लीवौ तैसो मतौ। अब ही तें उन सो जनि दतौ ॥४६॥

सभी ने यही कहा कि तुम उनकी भी सारी बातों को सुन लो। उनकी (राम) बात को सुनकर उसी के अनुरूप हम सब विचार कर लेंगे अभी से उनसे क्यों झगड़ा किया जाय ॥४६॥

दहूं पारिन कहि लीनो जबै। मिश्र उदीन बोलियौ तबै॥
हौं जु कहौं सब सुनियौ आप। मिले सुने हम राउ प्रताप ॥४७॥

दोनों दलों की बातों को अच्छी प्रकार से सुन कर मिश्र बोले। हम प्रताप राव से मिले भी थे और दूसरों से भी सुना था। इसलिए जो कुछ भी मैं कहूँ, उसे आप सब सुने ॥४७॥

उनको बेटा केसौदास। जिनहीं देस दियो उदवास॥
इन्द्रजीत घर नाहीं राज। उग्रसेन बीधे यहि काज॥४८॥

उन्हीं मिश्र का पुत्र केशौदास हैं, जिसे बहुत कष्ट दिया। गया है इन्द्रजीत इस समय घर पर नहीं हैं और उग्रसेन इस समय इसी काम में उलझे हुए हैं ॥४८॥

बेटो ऐसौ भयो न होय। मानौं जानि हमारो लोय।
भैया बन्धु मिलत ही जात। परिजहु लोग सबै अकुलात॥४६॥

अभी तक ऐसा पुत्र न किसी के हुआ है और न होगा। यह बात हमारी मान लीजिये। सभी बन्धु आपस में मिलते जा रहे हैं, इसके कारण से परिजनों में व्याकुलता फैल रही है ॥४६॥

नाहीं फौज मांझ सरदार। कीजो कैसो बुद्धि विचार॥
एरछ ही जैए सब छोड़ि। हौं जु कहत हौं आँली ओड़ि॥५०॥

फौज में कोई अच्छा सरदार भी नहीं है। इस अवस्था में कैसे विचार किया जा सकता है। सब कुछ छोड़कर ओड़छा चले जाइये। मैं इस बात को आपके सामने आंचल पसार कर कह रहा हूँ ॥५०॥

वहाँ गये मिटि जैहै धर्म। इहि विधि रहत सबनि कौ धर्म ॥
मीठो खाए विनसै व्याधि। कौन मरै औषध कटु साधि ? ॥५१॥

वहा जाने से धर्म का विनाश हो जायेगा। यहाँ रहने से सब प्रकार से धर्म की रक्षा होगी। मीठा खाने से यदि व्याधि का विनाश हो जाय तो कोई कड़ुई औषधि क्यों खाये ॥५१॥

॥ दोहा ॥

मुगलनि आए जो कहु, अपने चित्त विचार ॥
तौ अबही सब समझिए, बूझो प्रभु परिवार ॥५२॥

मुगलो के आने पर यदि आप विचार करने की सोच रहे हो, तो उस सब को अभी परिवार के लोगों के साथ विचार करके समझ लेना चाहिये ॥५१॥

॥ चौपही ॥

यह सबनि ठहराई बात। कियौ पयानौ होतहि प्रात ॥
रामदेव एरछगढ़ गए। बीरसिंह आनन्दित भए ॥५३॥

सभी ने इस बात को निश्चित करके प्रातःकाल प्रस्थान किया। राम सिंह ओड्छा गये, यह जानकर वीरसिंह बहुत प्रसन्न हुये ॥५३॥

बहुत भांति तिन आदर कियो। फाट्यो देखि रायै कै हियो।
कीनौ सव जन कैसौ काम। मनहुँ भरत के आये राम ॥५४॥

वीरसिंह ने रामदेव का आदर किया। उनकी अस्त व्यस्तता को देखकर वीरसिंह बहुत दुखी हुए। एक जन को जिस प्रकार से सभी प्रकार का आदर सत्कार करना चाहिये, उसी प्रकार का सारा वीरसिंह ने किया। उस व्यवहार को देखकर ऐसा लगा कि माना भरत के राम ही आ गए हों ॥५४॥

भोजन करि कीनो विश्राम। भयो दिवस को चौथो जाम ॥
जितने साहि परिगने दिये। तिनके पटे आपु कर लिए ॥५५॥

भोजन करके दोनो ने विश्राम किया। विश्राम करते-करते दिन का

चौथा यान (काल) हो गया। रामसिंह ने कहा "सलीमशाह ने जितने भी परगने दिए, उन सभी को आपने अपने कब्जे में कर लिया ।।५५।।

वीरसिंह अति आदर भरे । रामदेव के आगे धरे ॥
रामदेव त्रिष्ठारी करयौ । बातनि बतानि अन्तर परयौ ।।५६।।

वीरसिंह ने अत्यधिक आदर से सभी परगनों को रामदेव के सामने रख दिया। रामदेव ने बटवारा किया, किन्तु धीरे धीरे दोनों की बातों में अन्तर आ गया अर्थात् अनबन हो गई ।।५६।।

॥ दोहा ॥

निपट अटपटी काल गति, करन गये हे प्रीति।
भूलि सयान सबै गए, ह्वै गइ उलटी रीति ।।५७।।

काल की विचित्र रीति है। रामदेव करने तो मित्रता गये थे, किन्तु हो अनबन गयी। सभी चतुरता नष्ट हो गयी ।।५७।।

॥ चौपाई ॥

बहुत बिनी बिरसिंह देव कियो । राजा तिनमें चित्त न दियो ॥
किधौं मती कूरी सुन अपार । भूलि गयौ सब चित्त विचार ।।५८।।

वीरसिंह ने रामदेव की बहुत विनती की, किन्तु राजा ने (रामदेव) उसकी थोड़ी भी चिन्ता नहीं की। मन के सभी सात्विक विचारों को भुलाकर बुरा विचार करने लगे ।।५८।।

॥ दोहा ॥

जन परिगहु उमराउ सब, बेटा भैया बन्ध ।
वीरसिंह को मिलि गये, विविध भाँति प्रतिबंध ।।५६।।

सभी परिजन, उमराव, पुत्र, बन्धु अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों में बंध कर वीरसिंह से आकर मिले ।।५६।।

नृप परिहारी आये जबै । धीर चले एरछ तैं तबै ।
आये वीरसिंह पिपरहा । मिल्यौ खान अब्दुल्ला तहां ।।६०।।

परिहारी के राजा जब आये तब वीरसिंह ओड़छा को चले गये। वीरसिंह ने पिरहा में आकर अवदुल्लाखाँ से मिले। ६०॥

छाड़ि लचूरा छाड़ि गुमान। मिल्यौ तुरत ही दरिया खान॥
छूटि गयौ पुनि गढ़ कुडार। छूट्यौ जन्त्र घटा गढ सार॥६१॥

दरिया खाँ सब प्रकार के अभिमान को छोड़ कर वीरसिंह से मिले। गढ़ कुडार आदि सब छूट गये॥६१॥

छांडी पटहारी नृप राम। मैले आनि वनिगवाँ माम॥६२॥

परिहारी का राजा अपने परिहारी स्थान को छोड़ कर वनिगवा में रहा॥६२॥

॥ दोहा ॥

प्रात भये तारानि ज्यौं रवि कौ होत प्रवेस॥
हरै हरैं छूटत चल्यौ केसव दीरघ देस॥६३

जिस प्रकार से प्रातःकाल सूर्योदय होते ही तारात्रों का विनाश हो जाता है, उसी प्रकार धीरे-धीरे अपने वह भी अपने देश को छोड़ कर चला॥६३॥

इति श्रीमन्सकल भूमण्डला खण्डलेश्वर महाराजधिराज राजा श्रीवीरसिंह देव चरित्रे दानलोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे जन पद सग्रह वर्णनो नाम नवमः प्रकाश॥६॥

॥ दानउ वाच ॥

चौपाई

राजा राम साहि के लोग। पुरिखा गति तैं सुरस सजोग।
पायक, प्रोहित परिगह, दास। फौजदार, सिकन्दर खवास॥ १॥
सुत, सोदर, परिवार अपार। वृत्ती मुरजु जानै संसार॥
राजा वीरसिंह कौं अरै। कैसे मिलन बूझियै सबै॥ २॥

राजा रामशाहि अपने पूर्वजों के कारण सुख को प्राप्त करते रहते हैं। धायक, पुरोहित, दास, फौजदार, सिकदार, पुत्र, भाई परिवार के अन्य लोग तथा वृती (वृत्तिधारी) लोग मिलकर विचार कर रहे हैं कि वीरसिंह से किस प्रकार भेंट की जाय ॥१,२॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

राम राज बैठे तहि खरे। उदासीन सिगरेई करे ॥
मुनि अभिषेक समै नरनाथ। एकौ रानी लेइ न साथ॥ ३ ॥

रामशाहि इस अवसर पर चुपचाप बैठा हुआ था। उनके इस मौन ने सभी को उदासीन बना रखा था। नरनाथ के अभिषेक का अवसर सुनकर कोई भी रानी साथ नहीं दे रही है ॥३॥

सुतनि समेत सबै त्रिय त्रसीं। अपनें अपनें गांवनि बसीं॥
रिपु दल खण्डन दुरगादास। दान कृपान विधान निवास॥ ४ ॥

सभी रानियों को पुत्रों सहित कष्ट प्राप्त हुआ। इसलिए सभी रानियाँ अपने-अपने गावों में जाकर बस गयीं। रिपुदल का विनाश करने वाली दुर्गादास की तलवार है और साथ ही उसमें (तलवार) अभय वरदान देने की भी क्षमता है ॥४॥

जासौं प्रेम हिये जब हुयौ। उदासीन सिगरो कुल भयौ॥
रन भैरव भनि खान जहान। जाके जस कौं जपै जहान॥ ५ ॥

जिसके लिए ह्रदय में सभी के प्रेम था, उसी की ओर से सब परिवार निराश हो गया। जिसके विकट रण करने के कौशल का सारा संसार यश गान करता है ॥५॥

ताकी रिरति विविधि विधि रयौ। सो लै अपने पुत्रनि दयौ॥
सैद समुद्र गहिर अति घोर। जूझ्यो अमनदास अमोर॥ ६ ॥

उसको बहुत सी जागीर प्रदान की गयी। उसने उस जागीर को अपने पुत्रों में बाट दिया। समुद्र की भाँति गम्भीर सैद को भी प्राप्त मिला ॥६॥

ताके सिर साटे कौ गांउ। अपनै सुत कौ दयौ सुभाउ॥
मुगल-बुलाय बानपुर लियौ। राउ प्रताप परावो कियौ॥ ७॥

सैद को साँटे का ग्राम मिला। उसने उस ग्राम को अपने पुत्र को दे दिया। सभी मुगलो को बानपुर में बुला लिया और वहा पर प्रताप राव ने बटवारा कर दिया ॥७॥

तजि पँवार भगवान सुधीर। कीनी साहिब माँट वजीर॥
सुंदर जिहि लोभहि दुख दिये। ऐसे पुरिख दूरि तिन किये॥ ८॥

पवाँर को छोड़कर सभी जागीर को बाँट दिया। ऐसी सभी सुन्दर वस्तुओं का बटवारा कर दिया, जिनके कारण लोभ उत्पन्न होकर दुख होता था ॥८॥

रैयत राउत भये उदास। जाचक जीव न आवै पास॥
दोऊ अपने अपने धाम। देखत तरुनिन के गुन ग्राम॥ ६॥

इसके कारण से प्रजा और राजे दोनों ही उदास हो गये। याचना करने वाले पास तक नहीं आते हैं। दोनो ही अपने अपने घरों पर युवतियो के गुणों को देखा करते है ॥६॥

राजा श्री घर घर पग धरै। दुवा विकल रक्षा को करै॥
तारा चन्द पैम के पूत। अरु प्रोहित मन्त्री रजपूत॥१०॥
इहि विधि उदासीन सब भये। वीरसिंह राजहि मिलि गये॥
लै पटहारी वीर सुभाउ। मेले आनि बरेठी गाउ॥११॥

यद्यपि राजश्री सभी के घर पर है, किन्तु उसकी रक्षा कौन करे। पैम का पुत्र ताराचद, पुरोहित, मत्री, राजपूत आदि सभी उदासीन हो कर राजा वीरसिंह से मिल गये। वीरसिंह ने उन सभी को बरेठी ग्राम में रखा ॥१०,११॥

॥ दोहा ॥

वीर बरेठी, बनिगवाँ राजाराम सुजान।
आध कोस कौ अन्त है दुहू भूप उर आन॥१२॥

दोनो ही राजाओं ने अपने मन में विचार किया कि बरेटी ग्राम का अन्तर केवल एक मील का है ॥१२॥

॥ चौपाई ॥

आवत जात गुपाल खवास। दुहूँ ओर को करि उपहास॥
यही बीच खुसरो सुलतान। भाग्यौ दुचितो भयौ, जहान ॥१३॥

आते जाते सभी गुपाल और खिदमतगार दोनों ओर का उपहास करते हैं। इसी अवसर पर खुसरू मुलतान भाग गया, जिससे संसार बड़े आश्चर्य में पड़ गया ॥१३॥

पीछें लग्यौ साहि सिरताज। ज्यौं सुवास पीछे अलि राज॥
बीरसिंह के सुत सग गये। इन्द्रजीत घर आवत भये ॥१४॥

खुसरू भाग कर बादशाह के पीछे उसी प्रकार पड़ गया, जिस प्रकार से सुगन्ध के पीछे भ्रमर पड़ जाता है। बीरसिंह के पुत्र उसके साथ गये और इन्द्रजीतसिंह भी आने की तैयारी करने लगा ॥१४॥

आनि राम के पायन परे। मानो लछिमन आनद भरे॥
रामदेव भेटे सुख पाय। जैसो प्यासो पानिहि पाय ॥१५॥

इन्द्रजीत सिंह रामसिंह के पैरों पर गिरकर उसी प्रकार आनन्दित हुआ, जिस प्रकार से लक्ष्मण राम के चरणों का स्पर्श करने से आनन्दित होते थे ॥१५॥

॥ राम उवाच ॥

आनन्दे जन पद चहुँ ओर। मेघ गजे ज्यौं चातक मोर॥
तुमही मेरे सुत के ठौर। भैया बन्धुन के सिर मौर ॥१६॥

आनन्द अवस्था देखकर दोनों ओर के जन उसी प्रकार प्रसन्न हुए, जिस प्रकार से मेघ गर्जन से मोर होते हैं। रामसिंह ने कहा कि तुम्हीं मेरे पुत्र के स्थान पर हो और सभी भाइयों के शिर मौर हो ॥१६॥

तुमही बल बुधि वचन विचारु। तुमहि बाहु लोचन उर चारु॥
तुमही सेनापति सरदार। तुमही कर तुमही करवार॥१७॥

तुम्हारे अन्दर शक्ति, बुद्धि है और विचार करने की क्षमता भी है। तुम्हारे बड़े बड़े नेत्र हैं और अन्त करण [illegible] है। तुम्हीं सच्चे सेनापति और सरदार हो। तलवार तुम्हारे [illegible] ही शोभा देती है॥१७॥

तोही राज काज को भार। सौंप्यो तुमहीं सब परिवार॥
बीरसिंह उत राउ प्रताप। जूझ करहु कै करहु मिलाप॥१८॥

सम्पूर्ण राज्य के भार को मैं तुम्हें सौंपता हूँ और सारे परिवार का भार भी तुम्हारे ऊपर ही है। वीरसिंह और प्रताप को या तो युद्ध में पराजित कर अपनी ओर मिला लो या उनसे स्वाभाविक रीति से मेल कर लो॥१८॥

तजी आजु तैं मैं सब बात। सबै लाज तेरे सिर, तात॥
पति अरु सम्पति सब सुखदाय। तुम राखो ज्यौं राखी जाय॥१९॥

आज से मैंने सभी बातों को छोड़ दिया है। अब सम्पूर्ण लज्जा का भार आप के शिर पर है। स्वाभिमान और सम्पत्ति की जिस प्रकार से भी रक्षा की जा सकती हो, उस प्रकार से तुम करने का प्रयत्न करो॥१९॥

मंत्री मित्र बोलि नरनाथ। सौंपे इन्द्रजीत के हाथ॥
दुहुँ दिसि भटन होय भट भेर। दिन उठियत उन टेरा टेर॥२०॥

सभी मंत्री तथा मित्रों को बुलाकर रामशाहि ने इन्द्रजीत के हाथों में सौंप दिया। नित्यप्रति नकारे की आवाज पर सभी दासों को पुकार प्रारम्भ हो जाती है॥२०॥

विरसिंह को सौंप्यो परिवार। इहि बिच मिले कटेहरा वार॥
एक बेर गोपाल सवास। स्यामदास परितीति निवास॥२१॥

जिस समय वीरसिंह को परिवार की जिम्मेवारी मिली, उस समय बटेहरा आकर मिला। गोपाल खवास ने अपने स्नेह को श्यामदास के घर जाकर व्यक्त किया ॥२१॥

पायक दुर्जन लीनें सङ्ग। गये बरेठी बात प्रसङ्ग ॥
वीरसिंह सौं प्रीति बनाइ। भारथ साहिहि गये लिवाइ ॥२२॥

अनेक दासों तथा दुष्टों को साथ लेकर भारथशाहि वीरसिंह के पास गया ॥२२॥

मुख सौं सौंपे भारत साहि। सबै साहिवी सौंपी ताहि ॥
भैया बन्धु हते भट जिते। रैयति राउत सौंपे तिते ॥२३॥

अत्यधिक प्रसन्न होकर सम्पूर्ण प्रभुता वीरसिंह ने भारथ शाहि को सौंप दी। सभी बन्धु, योद्धा, प्रजा और सरदारों को भी सौंप दिया ॥२३॥

जेते राज काज के गाऊ। राखे सब बाहिरे सुभाउ ॥
वीरसिंह अरु भारथ साहि। कीनी सौंह दुहू चित्त चाहि ॥२४॥

राज काम के जितने भी ग्राम थे, उन सब को अलग रखा। वीरसिंह और भारथ शाहि—दोनों ने—सौगंध खाई ॥२४॥

इतनी बात जु मेटै कोय। ताकौ भलो न कबहूँ होय ॥
ताके बीच दये जगनाथ। हरि हरि सामुहे पसारयो हाथ ॥२५॥

आपस में हुई बातों को यदि कोई न मानेगा, तो उसका भला कभी न हो, ऐसा जगन्नाथ को बीच में रखकर तथा हरि के सामने हाथ उठाकर सौंगध दोनों ने खाई ॥२५॥

राजा अपने वचन रहाय। तजि वनिगवा ओड़छे जाय ॥
इन बातन की करी मतीठि। आये कुवँरहि छोड़ि बसीठि ॥२६॥

राजा अपने वचनों की रक्षा करके वनिगवां को छोड़ कर ओड़छा चला जावे। इन बातों पर विश्वास करके बसीठी को छोड़ कर कुवर चले आये ॥२६॥

जब यह बात सुनी नृप राम। भूलि गये सिगरेई काम ॥
अब हम तुमको ऐसी कही। करि यह सौंह छांडु यह मही ॥२७॥

रामशाहि ने जब इस बात को सुना, तब उन्हें सारे काम भूल गये। अब मेरा तुमसे यही कहना है कि तुम इस जगह को छोड़ कर चले जाओ ॥२७॥

सबै बसीठी झूठी करी। बिन पूछे जु जुरे नर हरी ॥
तब बसीठ उठि एकै लये। इन्द्रजीत केरावर गये ॥२८॥

बसीठी ने सब कुछ झूठा कर दिया। उसने बिना पूछे ही काम किया। इस पर बीरसिंह एक बसीठ को लेकर इन्द्रजीत केरावर गये ॥२८॥

इन्द्रजीत सुनियौ यह बात। तन मन दुख पयौ निज गात ॥
करि करि अपने चित्त बिचार। गये राजा पहँ राजकुमार ॥२६॥

इन्द्रजीत इस बात को सुनकर तन मन से बड़े दुखी हुए। अपने मन में विचार करके राजा के पास इन्द्रजीत गये ॥२६॥

तिनि यह बात नृपति सौं कही। अब तौ सबै बसीठी रही ॥
जब भगवन्त होय प्रतिकूल। फूल फूल ते होंय त्रिसूल ॥३०॥

बीरसिंह ने राजा से कहा कि अब तो सब कुछ बसीठी ही हो गया है। जब भगवान प्रतिकूल हो जाता है, तब फूल भी त्रिशूल बन जाते हैं ॥३०॥

तजि बनिगवाँ चलहु नरनाथ। हरि राखिये आपने हाथ ॥
गये ओड़छै अबहिं नरेस। तबहीं जानौ छूट्यो देस ॥३१॥

हे नरनाथ, अब बनिगवा को छोड़कर चलिए और हरि को अपने हाथ में कर लीजिए। ओड़छा को जब नरेश गये, तब उन्होंने समझ लिया कि देश उनसे छूट गया है ॥३१॥

राजा नगर ओड़छें आय। बहुत भांति मन को समुझाय ॥
कहा होय गुन गन के नाथ। फाट्यौ दूध न आवै हाथ ॥३२॥

राजा ने ओड़छा आकर अपने मन को बहुत समझाने की चेष्टा की, किन्तु परिणाम कुछ न निकला। जिस प्रकार से फटा हुआ दूध हाथ नहीं आता है, उसी प्रकार मन भी सन्तुष्ट न हुआ ॥३२॥

मद्गद पायक पैम बनाय। पठये केशव मिश्र बुलाय॥
जो कछु करि आवहु सुप्रमान। यों कहि पठये राम सुजान॥३३॥

मगद, पायक पैम तथा केशव मिश्र को रामशाहि ने कार्य सिद्धि के निमित्त भेजा ॥३३॥

गये बरेठी कहं बहु घने। बीरसिंह पै तीनो जने॥
पहिले देखे केशव दास। बीरसिंह नृप रूप प्रकाश॥३४॥

बीरसिंह से मिलने के लिए तीनों बरेठी गए। केशवदास ने सब से पहले बीरसिंह को देखा॥३४॥

बैठे सिंहासन सिर छत्र। चौंर दुरत भूमि भ्राजत सत्रु॥
निकट भयो देख्यौ भव भूप। जैसो कछु सुभाव कौ रूप॥३५॥

केशवदास ने बीरसिंह को सिंहासन पर बैठा हुआ देखा। सिर के ऊपर चौंर चल रहा था, जिसे देखकर शत्रु के भ्रम का विनाश हो जाता था। केशवदास ने निकट जाकर बीरसिंह के स्वाभाविक रूप को देखा ॥३५॥

नियरे ही बैठारे भूप। कुशल प्रश्न पूछे बहु रूप॥
पावक पैम चलाई बात। सुनन लग्यौ नृप उर अवदात॥३६॥

बीरसिंह ने तीनों लोगों को अपने पास बैठा कर अनेक प्रकार से कुशल प्रश्न पूछी। पावक पैम ने अपनी बात कहना शुरू कर दिया। बीरसिंह देव उसकी बात को ध्यानपूर्वक सुनने लगे ॥३६॥

पैम कहै जोई जब बात। बीरसिंह सुनि हँसि हँसि जात॥
समुझे पैम सहज की हास। मद्गद जान्यौ है उपहास॥३७॥

पैम जभी कोई बात कहता है बीरसिंह तभी उसपर हँस देता है। पैम ने स्वाभाविक हास को जान लिया और मगद ने बीरसिंह के हँसने में उपहास का अनुभव किया ॥३७॥

बोलि कह्यौ यह नृप सिरमौर। मेटहु सौंह चलावहु और॥
केसव मिश्र कही यह बात। सुनिये महाराज के तात॥३८॥

वीरसिंह ने कहा कि अब सौगन्ध बात को मिटाकर और किसी बात का प्रसङ्ग चलाओ। इसपर केशव मिश्र ने कहा कि हे महाराज! सुनिये॥३॥

राजनि सौं बैठे दीवान। गिनती करत परम अज्ञान॥
जब हम समय पाय, हैं राज। विनती करि हैं नृप सिरताज॥३६॥

सभी दीवान राजाओं के समान बैठे हुये हैं और उसमें आप अज्ञानतापूर्ण बात कह रहे हैं। जब मेरा समय आयेगा तब विनती करेंगे॥३६॥

इतनी सुनि हिय पति सुख पाय। बैठे न्यारे ह्वै नृप जाय॥
बोलि लिये कवि केसवदास। कियौ नृपति वह वचन प्रकास॥४०॥

इतनी बात सुनकर वीरसिंह अत्यधिक प्रसन्न हो गए और जाकर एक ओर अलग बैठ गये और वहीं पर केशवदास को बुलाकर वीरसिंह ने कहा॥४०॥

कासी सनि के तुम कुल देव। जानत हो सबही के भेव॥
जानत भूत भविष्य विचार। वर्तमान की समुझत सार॥४१॥

शशि कुल के तुम कुल देव हो। इसलिये उस कुल के सभी भेदों को तुम भली प्रकार जानते हो। तुम्हें भूत और भविष्य दोनों का ही ज्ञान है और वर्तमान की स्थिति से भली प्रकार परिचित ही हो॥४१॥

जिहि मग होय दुहुन की भलौ। तेहि मग हौंहि चलाओ चलौ॥
यह सुनि केसवदास विचारि। बात कही सुनिये सुखकारि॥४२॥

जिस प्रकार से भी हम दोनों का भला हो, उसे बताओ। उसी मार्ग से हम दोनो चलेंगे। यह सुनकर केशवदास ने विचार करके कहा॥४२॥

नृपति मुकुटमनि मधुकर साहि। तिन के सुत द्वै दिन दुख दाहि॥
दुहूँ भांति सुख के फर फरे। परमेस्वर तुम राजा करे॥४३॥

राज शिरोमणि मधुकरशाह के दो पुत्र है, जो कि दुख देने वाले हैं। आज आपके राजा होने से दोनों प्रकार से सुख के फल फले हुये है ॥४३॥

तुम नरहरि नृप कीने नाउ। कहौ कौन पर मेटे जाउ॥
है द्वै बाट भली अन भली। चलिवौ कुशल कौन की गली॥४४॥

आप तो मनुष्यों में भगवान हैं। राजा तो केवल आप नाम मात्र के हैं। दो मार्ग—अच्छा, बुरा—हैं। इनमें से किस पर चलना मङ्गलकारी है ॥४४॥

बांईं एक दाहिनी ओर। सुखद दाहिनी बांईं घोर॥
वीरसिंह तजि बोले मौन। कौन दाहिनी बांईं कौन॥४५॥

एक मार्ग बाईं ओर को जाता है और दूसरा दाहिनी ओर को। दाहिनी ओर का मार्ग सुखद है और बाईं ओर का कष्टदायक। केशव के इस कथन पर वीरसिंह ने अपना मौन तोड़कर कहा कि कौनसा दाहिनी ओर का मार्ग है और कौन सा बाईं ओर का ॥४५॥

सकल बुद्धि तेरे नर नाथ। दल बल दीरघ देख्यौ साथ॥
देह दाम बल दीसहि घनैं। धर्म कर्म बल गुन आपनैं॥४६॥

हे नाथ! "तुम सब प्रकार से बुद्धिमान हो। तुम्हारे साथ बहुत बड़ी सेना है। आपके पास धन, शक्ति, धर्म, कर्म, गुण सब कुछ दिखाई पड़ता है" ॥४६॥

सोधि सील बल दीनो ईस। सकल साहि बल तेरे सीस॥
तुमहि मित्र अकपट बलवंत। जुद्ध सिद्धि बल अरु जसवंत॥४७॥

आपके शील को देखकर ही ईश्वर ने तुम्हें शक्ति दी है। सब प्रकार की शक्ति आपके पास है। तुम्हारे मित्र अकपटी और बलवान हैं और साथ ही वे युद्ध कला में प्रवीण और यशस्वी हैं ॥४७॥

उनके इनमें एक न आज। कीनै चित्त जुद्ध की साज॥
जद्ध करे ते जानि न परै। को जानै को हारै मरै ॥४८॥

आज उन मित्रों से यहा पर एक भी नहीं है, फिर भी तुमने युद्ध का विचार किया है। युद्ध होने पर इनका पता न चलेगा। इस स्थिति में कौन जीतेगा और कौन हारेगा, कहा नहीं जा सकता है ॥४८॥

इतकों उतको दल सचरै। तुमकू दुहू भांति घटि परै॥
उत आगे भुवपाल अजीत। सो जूझै जूझै इन्द्रजीत ॥४६॥

चाहे इस दल का विनाश हो और चाहे उस दल का, तुम्हारी दोनों प्रकार से हानि है। उस ओर अजयी राजा है। उस राजा के न रहने पर इन्द्रजीत अपने प्राण दे देगा ॥४६॥

इन्द्रजीत बिना राजा मरै। राजा बिनपुर जौहर करै॥
पुर मे ब्राह्मन बसत अपार। कीजै राज जू परै विचार ॥५०॥

इन्द्रजीत के न रहने पर राजा प्राण दे देगा। राजा के अभाव में सारा गाव जौहर करेगा। गाव में ब्राह्मणों की बस्ती अधिक है। हे राजन्! इस स्थिति पर विचार करके जो तुम्हारी इच्छा हो, वह करो।" ॥५०॥

यह मैं बाट बताई बाम। महा विषम जाके परिनाम ॥५१॥

इसे ही मैने बाये का मार्ग बताया है, जिसका परिणाम बड़ा भयानक होगा ॥५१॥

॥ दोहा ॥

भैया राजा ब्राह्मननि मारे यह फल होय।
स्वारथ परमारथ मिटै बुरो कहै सब कोय ॥५२॥

भाई, राजा और ब्राह्मण को मारने का यह फल होता है कि स्वार्थ और परमार्थ—दोनों का—विनाश हो जाता है और सभी बुरा कहते हैं ॥५२॥

॥ चौपाई ॥

सुनिबे बाट दच्छ दाहिनी। जो दिन दुसद दुःख दाहिनी॥
इक पुरिया अरु राजा वृद्ध। दुहू दीन दीरघ परसिद्ध ॥५३॥

अब दाईं ओर के मार्ग को सुनिये। एक तो वे तुम्हारे पुरिखा (सब से बड़े) दूसरे वृद्ध हैं और तीसरे राजा हैं और दोनों ही धर्मों में प्रसिद्ध हैं ॥५३॥

नैन विहीन रोग संयुक्त। जीवत नाहीं जेठौ पुत्र ॥
ताके द्रोह बड़ाई कौन। मुख दैके बैठारौ भौन ॥५४॥

राजा नेत्रहीन है और साथ ही रोगी भी है। ज्येष्ठ पुत्र भी जीवित नहीं रहता। ऐसे राजा के विरोध में विद्रोह करने से क्या बड़ाई होगी? उसे तो आपको मुख देकर घर पर रखना चाहिये ॥५४॥

सेवा कै सुख दै सुखदानि। पाउ पखारि आपने पानि ॥
भोजन कीजौ तिनके साथ। ढारौं चौंर आपने हाथ ॥५५॥

उनकी सब प्रकार से सेवा करके सुख दीजिये और अपने हाथों से पैर धोइये। उनके साथ ही भोजन कीजिये और अपने हाथ से ही चौंर टारिये ॥५५॥

पूजा यों कीजे नर देव। ज्यों कीजे श्रीपति की सेव ॥
जौ लगि रामसाहि जग जियैं। तनि है राज सेव ही कियैं ॥५६॥

जिस प्रकार से लोग विष्णु भगवान की आराधना करते हैं, उसी प्रकार से आप उनकी सेवा कीजिये। जब तक रामशाहि जीवित हैं तब तक उनकी सेवा करने से ही राज्य की व्यवस्था बनी रहेगी ॥५६॥

पीछे है सब तुमहीं लाज। लीबो पद, जन, साज समाज ॥
निपटहि बालक भारत साहि। तिन तन कुसल कृपा दग चाहि ॥५७॥

रामशाहि के बाद तो तुम्हारा ही सब कुछ है। सम्पूर्ण पद प्रतिष्ठा, राज्य और सारे समाज के साज तुम्हारे ही होंगे। भारतशाहि निपट बालक है। उस पर आपकी कृपा दृष्टि चाहिये ॥५७॥

भारत साहि राउ भूपाल । उग्रसेन सत्र बुद्धि विसाल ॥
इनकी तुम्हैं सुनी, नरनाथ । राजा सौंपे अपने हाथ ॥५८॥

भारतशाहि भूपाल, बुद्धिमान उग्रसेन को राजा ने आपके हाथों में सौंपा है अर्थात् उनकी सुरक्षा का भार आपके ऊपर है ॥५८॥

तब तुम जानौ ज्यों त्यौं करौ। राज लाज आनै सिर धरौ ॥
अपने कुल की कीरति करौ। यहई बाट दाहिनी भली ॥५६॥

अब तुम जिस प्रकार से भी हो राज्य का भार अपने शिर पर ले लो। अपने कुल की कीर्ति की रक्षा का मार्ग ही दूसरा मार्ग है ॥५६॥

यह सुनि सुख पायौ नरनाथ। कही आपने जिय की गाथ ॥
राजहि मोहिं करौ इक ठौर । विविध विकारने की तजि दौर ॥६०॥

केशव के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर वीरसिंह बहुत प्रसन्न हुए अपने मन की बात को कहा। सभी प्रकार के विकारों को (द्वेष) छोड़कर मुझे और राजा को एक साथ कर दो ॥६०॥

मैं मानौं, जौं मानैं राज। सफल होहि सबही के काज॥
तब हँसि मगद पैम बुलाय। कीनौ विदा परम सुख पाय ॥६१॥

जिस वस्तु को राजा स्वीकार कर लेंगे उसे मैं भी स्वीकार कर लूँगा। सभी की मनोकामनायें पूर्ण हों। वीरसिंह ने अत्यधिक सुखी होकर प्रसन्नता के साथ पैम और अंगद को विदा किया ॥६१॥

सुनि यह राजहि परो विचार। कीजे मिलन विप्र यहि बार ॥
यहि बिच पैम कह्यौ हरखाय। कल्यान दे रानि सों जाय ॥६२॥

यह सुनकर राजा ने विचार किया कि इस बार विप्र ने हम दोनों की भेंट करवा दी। इसी बीच में पैम ने प्रसन्न होकर कल्यान देवी से जाकर कहा ॥६२॥

हम न मते को जानैं भेव। जानै मिश्र कै वीरसिंह देव ॥
ज्यौं क्यौं हू घटि बढ़ि परि जाइ। हमको दोष न दीजै भाइ ॥६३॥

दोनों में क्या सलाह हुयी, इसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं। उस सलाह का पता या तो वीरसिंह को है या केशव मिश्र को है ॥६३॥

इतनी कहत महा भय छियौ। कल्यान दे रानि कौ हियौ ॥
रानी कह्यौ सु पूछै काहि। लै आवहु सुव भारत साहि ॥६४॥

इतना सुनते ही कल्यान देवी का हृदय भयभीत हो गया। रानी ने भारतशाहि को बुलाने के लिये कहा ॥६४॥

॥ कुण्डलिया ॥

कीनो कछु कल्यान दे कल्यान न चित चाहि।
पैम जु कीनो प्रेम कछु ल्याये भारत साहि ॥
ल्याये भारत साहि ढाहि मरजाद पंथ की।
मिलई धूरिहि धरा धरनि धर धर्म अरथ की।
फूटि गयौ जस कलस फट्यौ पट मन रस भीनौ।
परमेश्वर पग पेलि बुरौ वरु अपनो कीनौं ॥६५॥

कल्यान देवी का विचार मंगलकारी न रहा। पैम ने भारतशाह को पथ की मर्यादा का विनाश करके बुला लाया उसने धर्म अर्थ की मर्यादा को धूल में मिला दिया। यह उसी प्रकार से हुआ जिस प्रकार से यश का कलश फूट जाने से होता है। परमेश्वर की ओर पैर बढ़ाकर उसने आप अपना बुरा किया ॥६५॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री बीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे शपथ भङ्ग वर्णनो नाम।

दशमः प्रकाशः ॥१०॥

जबही टूटि बसीटी गई । तबही बरषा हर्षित भई ॥
आई बीच करन को मनो । सकल साज साजे आपनो ॥१॥

जब बसीटी टूट गई तब वर्षा अत्यधिक प्रसन्न हुयी । उसने आकर अपने सब प्रकार के साज सजाने शुरू कर दिए ॥१॥

चहु दिसा बादल दल नचै । उज्जल कज्जल की रुचि रचै ॥
दिसि दिसि दमकति दामिनि घनी । चकचौंधति लोचन रचि घनी ॥

चारों ही दिशाओं में सफेद और काले बादल नाच रहे थे । सभी ओर बिजली चमकती है और कौंधा लपकता है ॥२॥

गाजत बाजत मनो मृदङ्ग । चातकि पिक गायक बहु रङ्ग ॥
नन्दन बन में रंभा घनी । तहँ नाचत जनु रंभा बनी ॥३॥

चातक कोयल तथा अन्य अनेक प्रकार के गायक ऐसा गा रहे हैं, मानो मृदंग बज रहा हो । नंदन वन के बीच में गायें रंभा रही है तो ऐसा लगता है कि रंभा (एक अप्सरा) नृत्य कर रही है ॥३॥

अति सज्जल बद्दल की पाँति । तामें हँसावलि बहु भाँति ॥
जल स्यो मरावलि पी गई । उगिलत तासों सोभा भई ॥४॥

बादलों की सजल पंक्ति हैं, उसमे हं ों की कतारें अर्थात् तारे शोभा दे रहे हैं । ऐसा अनुमान है कि सपावली ने जल पी लिया और उसी को उगल दिया है, जिससे यह सब शोभा दिखाई दे रही है ॥४॥

शक्र सरासन सोभा भर्यो । बरन बरन बहु जोतिन धर्यो ॥
रतनमयी अनु बारुन मार । वर्षा गम दिजि गधी वार ॥५॥

इन्द्र धनुष शोभा युक्त होकर अनेक वर्णों की ज्योतियों को धारण कर रहा है । मानो रत्नयुक्त वरुण हो गये हैं और वर्षा के आगमन की सूचना दे रहे हैं ॥५॥

बरसत बुन्द वृन्द घन घनै। बरनत कवि कुल बुधि वल सनै॥
वीर प्रगासा नर परगास। ताकौ धूम धर्‌यो आकास॥३॥

धीरे-धीरे पानी बरस रहा है। अनेक कवि वर्षा का वर्णन कर रहे हैं। आकाश में जो धूम वर्ण के जो बादल दिखाई दे रहे हैं, मानो वे वीरों के यश का प्रकाश कर रहे हैं॥६॥

खेचर दग गन दीरघ ढली। जिनकी जल धारा जनु चली॥
बिन अपराध धरा बन नवै। तिनकी पीड़ा पीड़ित भवै॥७॥

मानो आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की अश्रु धारा प्रवाहित हो उठी हो। वे बिना किसी अपराध के पृथ्वी पर गिरे हैं। केवल उनकी पीड़ा से पीड़ित हुए थे॥७॥

मेघ घोष मघवा बल बढ़े। मानों तमकि तपनि पर चढ़े॥
गरजत ज्वाजनि बजैं निसान। जंत्र पात निरोत नियान॥८॥

मघवा की शक्ति से बादल गर्मी के ऊपर तमक कर चढ़ आये हैं। मच में तो युद्ध की घोषणा निशान बजा कर रहे हैं, किन्तु वहाने से गरज रहे हैं। वायु का आवागमन बन्द हो गया है॥८॥

इन्द्र धनुष घन मण्डल धार। चातक मोर सुभट किलकार॥
खद्योतन कौं बिपदा भई। इन्द्र वधू घर घरनिहि दई॥९॥

इन्द्र धनुष से युक्त बादल पानी से भरे हुए हैं। बादलों को देखकर चातक, मोर और योद्धा किलकारें मार रहे हैं। खद्योतों पर विपत्ति आ गई है। इन्द्र वधू ने घर में घरनी की तरह रहना शुरू कर दिया है॥९॥

किधौं धूम के पटल बखानि। जग लोचननि त्रिलोपक मानि॥१०॥

या तो आकाश पर धूम की तह जम गई है जो कि संसार के नेत्रों में अञ्जन लगाने के काम में आयेगी॥१०॥

कैधौं तमकि चढ़्यो तमराज। ज्योतिपत सब मेटन आज।
रितुराज सेना सी लसै। दच्छिन मुखी न काहू त्रसै॥११॥

या तमराज रतन. सभी ज्योतिरतो का विनाश करने के लिए बढ़ा है। राक्षसों की सेना सी सुशोभित हो रही है। दक्षिन मुनी से कोई भी भयभीत नहीं हो रहा है ॥११॥

अनसूया सी सुनै मुदेस। चारु चन्द्रमा गर्ग सुवेश ॥
रक्षसपति सी दल दरसियै। स्वर्ग साम्ही गति लेखियै ॥१२॥

अनुसुइयाके समान वह सुन्दर थी। सुन्दर चन्द्रमा के समान गर्व से अच्छे वस्त्र धारण किये हुये थी। राक्षसपति का दल सा सामने देखा और सामने स्वर्ग को प्राप्त करने की गति भी देखी ॥१२॥

कुमत कालिका सी मोहियैं। नीलकंठ तन मन मोहियैं ॥
परकीया सी अभिसारिनी। सत मारग की निष्पासिनी ॥१३॥

चतुर कालिका के समान सुशोभित थी और नीलकंठ के मन का अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। परकीया नारी के समान अभिसार किया था। वह सत माग का विनाश करने वाली थी ॥१३॥

द्रुपद-सुता कम' दुति धरै। भीम भूमि भूरि भार्गनि अनुसरै॥

द्रोपदी के समान कांति को धारण करती थी और भीम के मार्ग का अनुसरण कर रही थी।

॥ दोहा ॥

वरनन केसव सकल कवि विषम गाढ़ तम सृष्टि ॥
कुपुरुष सेवा ज्यों भई सन्तत मिथ्या दृष्टि ॥१४॥

वर्षा के कारण ऐसे सघन अंधकार की उत्पत्ति हुई कि सर्वदा (रा।दिन) दृष्टि मिथ्या प्रमाणित होती है (कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है) जैसे बुरे मनुष्य की सेवा से कोई आशा फलीभूत नहीं होती है ॥१४॥

बीते बरषा काल त्यों आई सरद सुजाति ॥
गये अंध्यारी होति हैं चारु चाँदनी राति ॥१५॥

वर्षाकाल बीतने पर शरद सुन्दरी इस प्रकार आ गई जैसे अंधेरी रात बीत जाने पर सुन्दर चांदनी रात आ जाती है ॥१५॥

लछिमन कैसी लछमी लसै। रामानुगत प्रेम हिय बसै॥
मढ़ी देव दीपति अनुसार। अर्द्ध चन्द्रमा ललित लिलार॥१६॥

हे लक्ष्मण! लक्ष्मी किस प्रकार से शोभायमान है। राम का प्रेम इनके हृदय में निवास करता है। देवानुकूल कान्ति शोभित है और मस्तक में अर्द्धचन्द्रमा है॥१६॥

मंडित मंडप हंस अपार। मनौ सारदा उदित उदार॥
नारद कैसी दशा विशेषि। तमकि तमोगुन लोपक लेखि॥२०॥

मंडप अनेक हंसों से भरा हुआ है। ऐसा लगता है कि शारदा स्वयं उदित हुई है। मानों सारे तमोगुणों का लोप कर देंगी॥२०॥

तमकि देवतनि कैसी सिद्धि। समुझव सत मारग की बुद्धि॥२१॥

देवताओं के प्रकार की सिद्धि है और सतमार्ग के लाभ को समझती है॥२१।

॥ दोहा ॥

काहू को न भयौ कहू ऐसी सगुन न होत॥
बीरसिंह के चलत हीं भयौ मित्र उद्दोत॥२२॥

इस प्रकार का सगुन कभी किसी को नहीं हुआ है। वीरसिंह के चलते ही सूर्य भगवान उदित हुए॥२२॥

॥ चौपाई ॥

सोहत अरुन रूप भगवन्त। जनु रिपु रुधिर वली बलवन्त॥
रामचन्द्र जू को अनुसरै। तारापति के तेजहि हरै॥२३॥

सूर्य अरुन रूप में शोभित हैं। सूर्य भगवान रामचन्द्र जी के अनुसार चलते हैं और तारों के तेज का विनाश करते हैं॥२३॥

चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै। चोर चकोर चितसी लसै॥२४॥

सूर्य को देखते ही कोकावेली अपने मन में डरती है और चोरों तथा चकोरों के लिए चिता के समान है अर्थात बहुत दुख देने वाला है॥२४॥

॥ छपद ॥

अरुन-गात अति प्रात पद्मिनी प्राननाथ भय।
जनु केशव हैं गए कोकनद कोक प्रेममय॥
किधौं सक्र को छत्र मढ्यो मानिक मयूष पट।
परि पूरन सिन्दूर पूर मगल घट॥
कै श्रोणित कलित कपाल के किल कापालिक काल को।
ललित लाल कैधौं लसत दिग भामिनि के भाल को॥२५॥

सूर्य प्रातः काल लाल होकर निकले हैं। ऐसा लगता है कि कमल और चक्रवाक के प्रति उनके हृदय में जो प्रेम है वह बाहर निकल आया है। या इद्र का छत्र है जो मणि की किरणों से बुने हुए कपड़े से बनाया गया है। या कोई मगल घट है जो सब का सब सिंदूर से रगा हुआ है। या वह निश्चित ही काल रुपी कापालिक के हाथ में किसी का रक्त भरा सिर है, जिसे उसने बलि चढ़ाने के लिए अभी अभी काटा है अथवा पूर्वदिशारूपी स्त्री के मस्तक का मणि है॥२५॥

॥ चौपाई ॥

पसरे कर कुमुदिनि को लीन। कैधौं कमलनि को सुख दैन॥
बढ़े जानि जनु तारा भगी। जहँ तहँ अरुन जोति जगमगी॥२६॥

सूर्य की किरण फैली हैं। मानो वे सूर्य के हाथ हैं जो कुमुदिनी को पकड़ने के लिए फैले हुए हैं, या कमलिनी को सुख देने के लिए फैले हुए हैं। तारे डर कर मानो अस्त हो गये हैं क्योंकि उन्हें सूर्य की किरणों में फँसने का डर था! चकोर भी सूर्य की किरणों को फंदा समझ कर ठगा सा हो रहा है॥२६॥

॥ दोहा ॥

दिनकर बानर अरुनमुख चढ्यौ गगन तरु धाय।
केसर तारा कुसुम नितु कीनी झुकि झहराय॥२७॥

सूर्य रूपी लाल मुख वाला बंदर आकाश रूपी वृक्ष पर दौड़ कर चढ़ गया है। आकाश रूपी वृक्ष के तारा रूपी फूलों को हिला कर पुष्प रहित कर दिया है ॥२७॥

॥ चौपाई ॥

गगन अरुन दुति लसी विसाल। ज्यौं वारिधि बडवानल ज्वाल ॥
हरि दल खुरनि खरी दल मली। रविकरहिं पूरि पूरि मनु चली ॥
मिटी अरुनता सोभा भनी। निर्त्तवकाल तमनि का मनी ॥
दूरहिं ते तम नासत भयौ। जनु अज्ञान जगत को गयौ ॥२८॥

आकाश में लालरी इस प्रकार से फैल गई मानों समुद्र में बड़वाग्नि लग गई हो। हरि दल का खुरों से मानो दलमल दिया है। सूर्य की धुलि से मानों आकाश परिपूर्ण हो गया है। लालरी मिट गई और शोभा दिखाई पड़ने लगी। सूर्य दूर से अंधकार का विनाश कर रहा है। मानों सारे संसार का अज्ञान समाप्त हो गया है ॥२८॥

॥ दोहा ॥

जबही वारुनी की करी रच्छक द्विजराज ॥
तहां करयो भगवन्त तिन सपति सोभा साज ॥२६॥

जैसे ही चंद्रमा पश्चिम दिशा म जाने की इच्छा करता है, वैसे ही सूर्य उसे सम्पत्ति, शोभा तथा सामान हीन कर देता है। जैसे ही कोई ब्राह्मण थोड़ी भी मदिरा की इच्छा करता है वैसे ही भगवान उसकी कान्ति और सम्पत्ति हर लेते हैं ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

चलत गयन्द तरुन पर चढे। मनौ मेघमाला हरि घढ़े ॥
नदी वेतवै परम पवित्र। देखी बीर नरेस विचित्र ॥३०॥

गयंद के चलते ही वृक्ष पर चढ़ गये, मानों मेघमाला पर हरि चढे हैं। राजा वीरसिंह ने नदी वेतवा के किनारे पर देखा ॥३०॥

दरसे दूरि करै तन ताप। परसे लोपै पाप कलाप ॥
स्नान करे सब पातक हरै। देखत ज्ञान उदै जल करै ॥३१॥

बेनंग को देखने मात्र से शरीर का सारा ताप नष्ट हो जाता है। स्पर्श करने से सारे पापों का विनाश हो जाता है। स्नान करने पर सभी पातकों को हर लेती है। देखने से हृदय में ज्ञान का उदय होता है ॥३१।

सब्दति चञ्चल चतुर विभाति। मनौ राममों रूमी जाति॥
अविवेकी कैमी गति गहैं। परसि असाधु साधु गति लहैं ॥३२।

प्रात काल की वायु चली जा रही है। मानो राम से रूठ होकर चली जा रही है। अविवेकी लोगों के समान व्यवहार करती है। साधु और असाधु लोगों का स्पर्श करके गत को प्राप्त करती है ॥३२॥

विधि मग मति सो बड भागिनी। हरि मन्दिर मों अनुरागिनी ॥
हरि पद पदवी सो मसार। चक्रादिन के चिन्ह अपार ॥३३॥

वह बड़ी सौभाग्यशालिनी है। हरि मंदिर में उसका अनुराग है। हरि पद में अनुराग होने के कारण ही उसमें चक्रों के अनेक चिन्ह हैं ॥३३॥

भव मारग भूमिनी विचारु। वृप चरननि के चिन्हित चारु ॥३४॥

समार में वह भूमिनी की भाति है। वृप के सु र चरणों के चिन्ह उस पर हैं ॥३४॥

॥ दोहा ॥

सुर नर मुनि गुनि गनत गन देसय सेवत सिद्ध।
कलि में गङ्गाजल सबै कहत पुरान प्रसिद्ध ।३५॥

अनेक मनुष्य, मुनि, देवता, सिद्ध उसकी सेवा करते हैं। कलियुग मे गगा जल ही सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा पुरान प्रसिद्ध है ॥३५॥

॥ चौपाई ॥

पार उतरि सब करि स्नान। गये बीर गढ़ दै बहु दान ॥३६॥

पार जाकर सभी ने स्नान किया। अनेक दान देकर वीरसिंह गढ़ को गये ॥३६॥

गये सुबीरसिंह गढ़ बीर। कै गये राम सचिरम सरीर ॥
राजा रानी लै इन्द्रजीत। लै भूपाल राउ मन मीत ॥३७॥

वीरसिंह गढ़ में गये। रामसिंह मिलने के लिए गए। इन्द्रजीत राजा, रानी और अपने मित्रों को लेकर गये ॥३७॥

कह्यौ सबै तुम बुद्धि बिसाल। करने कहा मोहि यहि काल ?॥
रानी कह्यौ सुनौ नरनाथ। बुधि बल इन्द्रजीत के साथ ॥३८॥

हे बुद्धि विशाल! तुमने सभी कुछ कहा है, लेकिन मुझे इस समय क्या करना है? रानी ने कहा कि हे नरनाथ! इन्द्रजीत के साथ में इस समय बुद्धि और बल है ॥३८॥

करौ जु इनके चित्त बिचार। और कछू समुझौ इहि बार ॥
इन्द्रजीत यह कह्यौ प्रवीन। मेरे जीवन होहु न दीन ॥३६॥

इस बार इनके अनुसार विचार कीजिये। मेरे कथन का और कोई अर्थ मत लीजियेगा। इन्द्रजीत ने कहा कि मेरे कारण से आप दीन न हों ॥३६॥

जाही मांझ तुम्हारौ काजु। हमसों सोई करनै आजु ॥
कह्यौ राउ भूपाल बिचारि। कीजै केवल जूझ बिचारि ॥४०॥

जिससे आप का काम पूर्ण हो, वही काम आज मुझे करना है। भूपाल राव ने विचार कर कहा कि युद्ध करने में आज ही कुशल है ॥४०॥

केसव मिश्र कह्यौ गुनि चित्त। दोऊ तुम हो इनके मित्त ॥
कहि जै जिहि सब की प्रतिपाल। अबहीं नहीं सकुच कौ काल ॥४१

केशव दास ने कहा कि तुम दोनों ही इनके मित्र हो जाओ। जिस प्रकार से सभी का प्रतिपाल हो, उसे बिना सकोच के इस समय कहिये ॥४१॥

जितनी जुद्ध करन को साज। तामैं देख्यौ एक न आज ॥
तुम मैं नहीं मन्त्र बल एक। नहीं मित्र बल बुद्धि बिवेक ॥४२॥

युद्ध करने के लिए जितनी सामग्री की आवश्यकता है, उसमें से आज एक भी दिखाई नहीं पड़ती है। तुम्हारे अन्दर एक होने का मन्त्र नहीं है। बुद्धि, विवेक और मित्र बल भी नहीं है ॥४२॥

दल बल नहीं दुर्ग बल आजु। देखत नहीं दान बल साजु ॥
नहीं बाहु बल राज शरीर। नहीं ईस बर तुम कौ बीर ॥४३॥

न तो सैनिक शक्ति है और न दुर्ग ही ठीक अवस्था में हैं और न दान का बल ही आज दिखाई पड़ता है, और न भुजाओं में अब वह शक्ति है और न तुम्हें ईश्वर का अब वह वरदान ही प्राप्त है ॥४३॥

समझौ अपने मन मत - शुद्ध। कहौ कौन बिधि जीतैं जुद्ध ॥
जूझ वृत्त तीनौं फल करै। जीति हारि कौं प्रभु सहरै ॥४४॥

अपने मन में ऊपर की सारी बातों को अच्छी प्रकार से समझ लो कि युद्ध किस प्रकार से जीता जायगा। युद्ध होने से तीन लाभ होंगे। जीतने और हारने पर प्रभु का सहार कौन करेगा ॥४४॥

जौ तुम कैहूँ जीतौ राज। उनकी है हजरति सो लाज ॥
जौ तुम भागे जाउ तजि भौन। तौ राजा की रक्षक कौन ? ॥४५॥

यदि तुम किसी प्रकार से युद्ध जीत लोगे, तो भी हजरत उनकी लाज रखने वाला है। यदि तुम घर छोड़कर भाग गये, तो फिर राजा की रक्षा कौन करेगा ॥४५॥

जो, तुम जूझि जाउ नृपनाथ। राजा परै सत्रु के हाथ ॥
जीवत ताको होय अलोक। अरु दिन दूनौ बाढ़ै सोक ॥४६॥

हे राजा! यदि तुम युद्ध में मारे गये, तो राजा शत्रु के हाथ में पड़ जायेगा। जीवित ही उसे नर्क मिल जाएगा और रात दिन शोक बढ़ता ही जाएगा ॥४६॥

तातें हठ छाड़हु वर वीर। हठी भये सब परम अधीर ॥
हठ ही अधगति कीन त्रिसकु। हठ ही हार्‌यौ रावन लंक ॥४७॥

इस कारण से हे श्रेष्ठ वीर! हठ छोड़ दो। जितने भी हठ करने वाले लोग हुये हैं, वे सभी अधोगति को प्राप्त हो गये हैं। हठ के कारण ही त्रिशंकु की अधोगति हो गई और हठ के कारण रावण लंका को हार गया ॥४७॥

हठ तें भयौ कंस को काल। हठ ते दुरजोधन कौ साल ॥
मंत्री मठ द्विज राजा हठी। इनकी बात देखिए नठी ॥४८॥

हठ के कारण ही कंस मारा गया और हठ ही दुर्योधन के विनाश का कारण हुआ। यदि मंत्री दुष्ट हो और ब्राह्मण तथा राजा हठ करने वाले हों, तो निश्चित विनाश होगा ॥४८॥

सब तजि वीरसिंह को आज। लै आवहु घर दीजै राज ॥
सेवक ज्यों वे करिहैं सेव। ये है दर रक्षो नर देव ॥४९॥

सब प्रकार के बैर भाव को भुलाकर वीरसिंह को बुलाइये और उन्हें राज दे दीजिये। सेवक की भांति ही वे सेवा करेंगे ॥४९॥

यह सुनि रानी अति दुख पाय। केसव मिश्र दये बहुराय ॥
बहुत राज सो औगुन गनै। इनि की जनि जानौ आपनै ॥५०॥

यह सुनकर रानी को बहुत दुख हुआ। उसने केशव मिश्र को वापस कर दिया। जो राज्य में बहुत से अवगुण देखते हों, उनको अपना कभी मत समझो ॥५०॥

इन्द्रजीत पादारघ लये। केसौदास वीर गढ़ गये ॥
वीरसिंह तब कियौ पयान। लियौ बचौना उत्तिम थान ॥५१॥

इन्द्रजीत ने पादारघ लिया। केशवदास वहाँ से उठकर वीरसिंह के गढ़ को चले गये। वीरसिंह ने उस स्थान को छोड़कर बबीना स्थान को ले लिया ॥५१॥

॥ दोहा ॥

आवत सैद मुदफ्फरहि कीनो फेरि पयान ॥
उपजन स्वामि सराय कैं मेल्यौ बुद्धि निधान ॥५२॥

सैय्यद मुदफ्फर को आता हुआ देखकर, फिर वहाँ से भी चल दिया। वन में आकर अपने स्वामी से मिले ॥५२॥

॥ चौपाई ॥

आये तिहि डेरा जनु भूत। गोना अबदुल्लह के दूत ॥
देखि लिखे के आखर नये। वीरसिंघ चित दुचिते भये ॥५३॥

उसी डेरे मे अब्दुल्ला के दूत इस प्रकार से आये, मानो भूत आ गये हों। नये अक्षरों को देखकर वीरसिंह चिंतित हुए ॥५३॥

जाकैं होय प्रेम अधिकार। जाइ सु राजा देय न जाइ ॥
सावधान ह्वै लोहो गहौं। पुर उजारि सुधे ह्वै रहौं ॥५४॥

जिसके हृदय मे राजा के प्रति सबसे अधिक प्रेम हो वह राजा को न जाने दे। अब सावधान होकर युद्ध करें और पुर को उजाड़ कर सीधे रहूँगा ॥५४॥

लिखि पठयौ तब केसवदास। लेख देख कीनो उपहास ॥५५

केशवदास ने वीरसिंह के विचारों को लिखकर भेज दिया। केशव के लेख को देखकर लोगों ने उपहास किया ॥५५॥

॥ दोहा ॥

समय सरोस सलोभ कछु समद मोह को जाल।
आये करन बसीठई। आनन्दी गोपाल ॥५६॥

आनंदी गोपाल समीत, लोभ सहित, क्रुद्धित, मोह के जाल में फँसकर बसीठी करने के लिये आये ॥५६॥

॥ चौपाई ॥

मन और मुह और कहै । सत्रु मित्र की सुधि नहिं लहै ॥
देखै, सुनै न समुझै बात । जानै नहीं काल की जात ॥५७॥

मन में कुछ और है और मुह से कुछ और निकलता है । मित्र शत्रु का विचार नहीं कर रहा है । न उसे समय की कोई बात समझ में आती है और न कुछ दिखाई ही पड़ता है ॥५७॥

तिनकों सिगरी देखि सयान । वीरसिंघ कीनौ प्रस्थान ॥५८॥

उसकी सारी चालाकी देखकर वीरसिंह ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया ॥५८॥

तिनही के आगे बलवीर । सेना बांटि दई रन धीर ॥
किए विचारि चमूपति चारि । सूर सुबुधि ते हितू विचारि ॥५६॥

उसी के सामने वीरसिंह ने सेना का विभाजन कर दिया । अपने हितू, स्नेहियों से विचार करके सेना के चार भाग कर दिये ॥५६॥

इति श्री मत्सकल भूमण्डला खण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंहदेव चरित्रे दानलोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे मन्त्र विभ्रमो नाम एकादशमोध्यायः ॥११॥

—卐—

॥ चौपाई ॥

॥ दान उवाच ॥

विन्ध्यवासिनी सुनहु सभाग । कियें कहा करि चमू विभाग ॥
क्यों पुर आयो कहौ निदान । वीरसिंह अब्दुल्ला खान ॥१॥

हे विन्ध्यवासिनी ! यह बताओ कि सेना का विभाजन करके क्या किया ! वीरसिंह और अब्दुल्ला ने पुर में प्रवेश क्यों किया ॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

सुनो दान तुम जुद्ध विधान । चारि चमूपति बुद्धि निधान ॥
जादौराइ और गम्भीर । वीरसिंह कौ दूजो वीर ॥२॥

हे बुद्ध विधान दान ! सुनो । चारों सेनाओं के चार सेनापति नियुक्त हुये । वीरसिंह के बाद का दूसरा योद्धा जादौराइ था, जो कि शक्तिशाली और गंभीर था ॥२॥

कृपाराम तासौ सुत राज । जाके सीश राज की लाज ॥
वीरसिंह मन्त्री सो कियौ । राज भार ताके सिर दियौ ॥३॥

कृपाराम उसका पुत्र था, जिसके सिर पर राज्य की लज्जा का भार था । वीरसिंह ने उसे मन्त्री बना कर सारे राज्य का भार उन दे दिया ॥३॥

साचे सूरौ मित्र सयान । सदा सहोदर पुत्र प्रमान ॥
सो समर्थ सनामुख चल्यौ । राजसिंह को जिहि दल दल्यौ ॥४॥

वह सच्चा शूर और मित्र था । सदैव भाई और पुत्र के समान कार्य रत था । उसी समर्थ ने सेना का सचालन किया और राजसिंह की सेना का विनाश कर दिया था ॥४॥

गयौ दमोदर तजि सब साज । मारयौ जिहि रन मैं जुगराज ॥
मुकुट गौर कौ पूत बसंत । चल्यौ वाम दिसि बनि बलवंत ॥५॥

दामोदर सारे साजों को छोड़कर गया और उसने रण में युवराज को मारा । मुकुट गौर का पुत्र, बसंत बायीं दिशा को चला ॥५॥

केसौदास जुद्ध जमदूत । देवागद गूजर कौ पूत ॥
सो दच्छिन दच्छिन दिसि चल्यौ । हसन खानको जिहिदल दल्यौ॥६॥

देवागद गूजर का पुत्र युद्ध में यमदूत की भांति था । वह दक्षिण दिशा में गया और उसने हसन खां की सेना का विनाश किया ॥६॥

ईस्वर राउत जुद्ध अभीत । लौंधी लोहु गहै रनजीत ॥
सो सैना के पाछे भयौ । भीमसेन कौ जिहि जस लयौ ॥७॥

युद्ध मे निर्भीक और निडर ईस्वर राउत सेना के पीछे रहा और भीमसेन को पराजित किया ॥७॥

भोर होत ही चारों ओर। आये सेना सजे गभीर॥
गज वाहनि सोहैं पाखर। सुन्दर सिरा सूर मन हरैं॥८॥

प्रात काल ही चारों ओर सेना सज कर आगे। हाथियों पर पड़ी हुई भूल शोभा दे रही थी और घोड़ों के मस्तक पर श्री (गहने) शूरों के मना को आकर्षित कर रहा है॥८॥

अति ताते अति तरल तुरङ्ग। मान्यो चढ़त भयो विहङ्ग॥
सुभटनि सहित सजे तन त्रान। रहे भूमि पर बुद्धि निदान॥६॥

घोड़े तेज हो तेज और चंचल हैं। ऐसा लगता है कि पक्षी बनकर उड़ जायगा। सभी योद्धा युद्ध को तैयारी कर रहे हैं॥६॥

गज गाजत सुनि परदल हलैं। कुनित किंकिनी द्युति भलमलैं॥
घुघर घन घंटा धननात। अति मदमत्त भौंर भननात॥१०॥

हाथियों की चिंघाड़ सुनकर शत्रुदल का हृदय दहल जाता है। किंकिणी शब्द कर रही है और उनकी कांति भलमला रही है घुंघुरू और घंटे बज रहे हैं। ऐसा लगता है कि मस्त भौंरे भनभना रहे हैं॥१०॥

मातंगन सहित सेना गिरि बन। तरल तड़ित जुत जनु घन घने॥
मनौ तमो गुन गगनहि ग्रस। पाये जीतवन्त तन लसै॥११॥

ऐसा लगता है कि मणियों युक्त पर्वत हों अथवा बिजली युक्त बादल हों। मानो तमोगुण आकाश को जीतकर शरीर धारण करके ग्रस रहा है॥११॥

आगे सबै अमना किये। तिहि पाछें पैदल दल दियौ॥
तिन पाछें गाजत गजराज। तिनके पाछें सुभट समाज॥१२॥

सबसे आगे तोपखाना किया और उसके पीछे हाथी थे और उनके वीर समाज था॥१०॥

इहि विधि चमू चारहू ओर। मध्य प्रताप राउ जिय और॥
सुन्दर सूरो सुभट अभीत। वीरसिंह की मानहु मीत॥१३॥

इस प्रकार से चारों ओर सेना थी, और उसके बीच में प्रतापराउ था। प्रतापराउ सुन्दर शूर वीर था और वीरसिंह का मानो मित्र हो ॥१३॥

वीरसिंह बढ़ चढ़ि चल बढ्यौं। मनौ पवन पर पावक चढ्यौ ॥

वीरसिंह इस प्रकार से युद्ध में बढ़ा, मानों वायु पर पावक चढ़कर बढ़ रहा हो ॥१४॥

॥ सवैया ॥

जुद्ध कौं वीर नरेश चढ़े धुनि दुंदुभी की दसहू दिसि धाई।
प्रात चला चतुरंग चमू बरनी ग्रव कैसेह क्यों हू न जाई।
यों सब के तन ग्रानंनि ते झलकी ग्ररनोदय की ग्ररनाई।
ऊपर तैं जनु रंजन को रनपूतन की रज ऊपर ग्राई ॥१५॥

दुंदुभी की ध्वनि को सुनकर वीर नरेश युद्ध के लिए तत्पर हो गये। जिस समय प्रात काल सेना चली, उस समय की शोभा अवर्णीय थी। सभी योद्धाओं के अंग प्रत्यंग में अरुणिमा झलक रही है। ऐसा लगता है कि राजपूतों के प्रनत करण की रज लोगों का रंजन करने के लिए ऊपर आ गई है ॥१५॥

॥ चौपाई ॥

भूतल सकल भ्रमित ह्वै गयो। लोक लोक कोलाहल भयौ ॥
गाजि उठे दिग्गज तिहि काल। सक्ति सकल भ्रक दिगपाल ॥१६॥

समस्त पृथ्वी भ्रम पड़ गई और सभी दिशाओं में कोलाहल व्याप्त हो गया। इसी समय हाथी चिंघाड़ उठे, इससे सभी दिक्पाल सशंकित हो गये ॥१६॥

रोह परी सुर पुरी अपार। बाढ़े सुरपति चित्त विचार ॥
कलप वृक्ष गज बाजि समेत। सौंपे सुर गुरु कौं इति हेतु ॥१७॥

इन्द्रलोक में कोलाहल मच गया, इससे इन्द्र के मन में चिंता उत्पन्न हो गई। इन्द्र ने अपने गुरु को कल्प वृक्ष, हाथी और घोड़े सौंप दिये ॥१७॥

धर्मराज के घरु पक भई। दड नीति कुभज कौ दई॥
चिंता तरुन वरुन उर गुनी। तवही उतरि गई बारुनी॥१८॥

धर्मराज मरभीत हो गये, इससे उन्होंने दण्ड विधान कुभज को सौंप दिया। जैसे ही वरुण देव को चिंता हुई वैसे ही वारुणी का नशा उतर गया॥१८॥

कामधेनु केशव सुखदाय। सौंपी शेष नाग कौं धाय॥
तव कुबेर जच्छनि के नाथ। नौ निधि दई ईस के हाथ॥१६॥

जब कामधेनु शेषनाग को सौंप दी, तब यक्षों के स्वामी कुबेर ने नवों निधियाँ ईश को सौंप दी॥१६॥

मधुकर साहि नद रिंगि चल्यौ। खड खड भुव मडल हल्यौ॥
सव दल हिन्दू तुरक प्रकास। सोभत मनो सिवासित मास॥२०॥

मधुकर शाह नदगिरि को जब चला, तब समस्त पृथ्वीमंडल का खण्ड-खण्ड हिलने लगा। वर्षा ऋतु के समान अर्थात कभी श्वेत, कभी काली सेनायें शोभित हैं॥२०॥

॥ दोहा ॥

तन आननि प्रति तननि प्रति प्रति बिंबित रवि रूप॥
आगैं ह्वै जनु लै चले कहि केशव वहु भूप॥२१॥

ऐसा लगता है कि सभी के के शरीरों पर सूर्य का प्रतिबिंब पड़ रहा है। मानो सूर्य आगे आगे चलकर सभी राजाओं का मार्ग दर्शन कर रह हैं॥२१॥

॥ चौपाई ॥

अधर धूरि अकाशहि चली। हय गय खुरनि खरी दलमली॥
जानि गगन को हालत हियौ। ठौर ठौर जनु थभित कियौ॥२२॥

हाथी और घोड़ों के खुरो से उठी हुई धूल आकाश की ओर चलने लगी। आकाश के हृदय को दहलता हुआ जानकर सूर्यमण्डल स्थाह-स्थान पर रुक जाता है॥२२॥

रह्यौ अकाश विमानन पूरि। मनौ उसारनि धाई धूर ॥
जूझहिंगे रन सुभट अपार। समुहैं धायनि राजकुमार ॥२३॥
आकाश में विमान इस प्रकार से छा गये मानों उसारों से उड़ी धूल जा रही है। अनेक योद्धा और राजकुमार सामने युद्ध में जूझेंगे ॥२३॥

तिनकों सुरपद मनहु मग कियौ। स्वर्गारोहन मारग वियौ ॥
रही धूरि परि पूरि अकास। मिटे निकट है सूर प्रकास ॥२४॥
ऐसा लगता है कि उनके जाने के लिए स्वर्ग तक सीढ़ी तैयार कर दी गयी है। सम्पूर्ण आकाश धूल से मण्डित हो गया है, यहां तक कि सूर्य का प्रकाश भी मिट जाता है ॥२४॥

॥ दोहा ॥

अपने कुल कौ कलह क्यों देखै रवि भगवन्त।
यहै जानि अन्तर करयौ मानहु मही अनन्त ॥२५॥
सूर्य भगवान अपने कुल के कलह को न देख सकने के कारण ही आकाश और पृथ्वी में अन्तर कर दिया है ॥२५॥

॥ चौपाई ॥

तामैं बहुत पताका लसैं। धूम अनल ज्यों ज्वाला वसैं ॥
मनहु काल की रसना घोर। कैधौं मींच नचति चहुँ ओर ॥२६॥
सेना में अनेक पताकायें सुशोभित थीं, ऐसा लगता था कि वे अग्नि की लपटें हैं या यह काल की जिह्वा है या मृत्यु ही चारों ओर नाच रही है ॥२६॥

पवन प्रकाश दीह गति होति। मनहु अकाश दियन की जोति ॥
ननु अकाश वन कलित कलत्र। तरलित तुग ताल के पत्र ॥२७॥
वायु जब चलने लगती है तब वायु मण्डल स्वच्छ हो जाता है और ऐसा लगता है कि आकाश में दीपकों की ज्योति है अथवा आकाश रूपी वन में तुगताल के पत्र फैले हुए हैं ॥२७॥

किधौं विमानन की दुति हलै। देवनि के अंचल सी चलैं ॥
जय श्री भुज सी धुज देखिये। किधौं चौंर चञ्चल लेखिये ॥२८॥

या विमानों की दुति हिल रही है या देवियों के अंचल हिल रहे हैं। युद्ध स्थल में चंचल या तो भुजायें हैं या चवर ॥२८॥

॥ दोहा ॥

वीरसिंह की बल ध्वजा धूरिनि मैं मुख देति ॥
जुद्ध जुरन कौं मनहु प्रति जोधनि बोले लेति ॥२६॥

वीरसिंह की पताका धूरि में भी मुख देती है। मानों युद्ध करने के लिए योद्धाओं को अपनी ओर बुलाये ले रही है ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

टूटत तरु फूटत पाखान। चमकत आयुध अरु तन त्रान ॥
नगर सामुहे सेना चली। दुदुंभि ध्वनि दिसि बिदिसनि भली ॥३०॥

वृक्ष टूट रहे हैं। पत्थर फूट जाते हैं और तलवारें चमक रही हैं। सभी दिशाओं में दुंदुभी बज उठी और सेना नगर के सामने होकर चलने लगी ॥३०॥

येही बिच अब्दुल्लह खान। आनि औंड़छै कर्यौ बिहान ॥
ताके योधा भैरो भूत। मानौ काल जमन के पूत ॥३१॥

इसी बीच में अबदुल्ला खा औड़छे में आ गया। उसके योद्धा साक्षात भैरव नाथ के भूत थे अथवा काल के पुत्र ॥३१॥

राम नृपति के दुदुंभि बजैं। जह तहं सूर घोर गल गजें ॥
तब भुपपाल राउ गज चढ़े। इन्द्रजीत बहुधा बल बढ़े ॥३२॥

राम राजा की भी दुदुंभी बजी और योद्धा इधर उधर गर्जना करने लगे। इस समय भूपाल राव हाथी पर चढ़े। इनके हाथी पर चढ़ने से इन्द्रजीत को बहुत अधिक बल मिला ॥३२॥

रचे दुहून जुद्ध के भेव। मानौ दीरघ देखत देव ॥
प्रगट परसपर जोधा लरैं। कहूं वेग बिजुरी सी मरैं ॥३३॥

दोनों ओर से युद्ध का विधान हुआ। ऐसा लगा कि देवता उसे देख रहे हों। दोनों ओर से योद्धा आपस में लड़ने लगे। म्यानों से निकली हुई तलवारें ऐसी लगती थी मानो बिजली चमक रही हो ॥३३॥

टूटत बाहु कन्ध सिर कटैं। इभ भुसुंड घोटक पग घटैं ॥
गिरि गिरि सुभटनि उठि उठि लरैं। धरैं खड्ग खपुवा जम धरैं ॥३४॥

युद्ध में कुछ लोगों के कधे टूट रहे हैं और कुछ के शिर धड़ से अलग हो जाते हैं। अनेक योद्धा गिर गिर कर युद्ध करते हैं। सभी योद्धा तलवार, खपुवा और जमधर को धारण किए हैं ॥३४॥

दौर्‌यौ इन्द्रजीत रनजीत। जुद्ध जुरै जनु जम को मीत ॥
मारत ही भट हय तैं धक। भट नट मनौ कुल्हाटैं चुकैं ॥३५॥

इन्द्रजीत रण में इस प्रकार से दौड़ा मानों यम का मित्र हो। मारने पर योद्धा अपने घोड़ों पर से गिर पड़ते हैं और अनेक योद्धा वार होने पर नटों की तरह कलाबाजी करते हैं ॥३५॥

कोप्यौ काल राज भूपाल। पावक सम जनु पवन कराल ॥
एक पठान बान कर लयौ। इन्द्रजीत को घोरौ हयौ ॥३६॥

भूपालराउ काल की भाँति कुपित हो गया। उसका क्रोध अग्नि अथवा कराल वायु के समान था। इसी समय एक पठान ने बाण चलाया, जिससे इन्द्रजीत का घोडा घायल हो गया ॥३६॥

लागत ही ह्वै गयौ अचेत। गिर्‌यौ भूमि असवार समेत ॥
भूमि होत ही राजकुमार। दौरे मुगल गहे करिवार ॥३७॥

बाण के लगते ही घोड़ा अचेत होकर सवार सहित धराशायी हो गया। राजकुमार जैसे ही भूमि पर गिरा वैसे ही अनेक मुगल तलवार लेकर दौड़ पड़े ॥३७॥

मथुराई मार्‌यौ असवार। इन्द्रजीत हय मारन हार ॥
एही समय राउ भूपाल। दुर्जन दौरि करे बेहाल ॥३८॥

इन्द्रजीत के घोड़े को मारने वाले को मथुरा ने मार दिया और भूपालराउ ने इसी समय दौड़कर अनेक दुष्टों को बेहाल कर दिया ॥३८॥

कीनी हाथ हथ्यार अपार । भयौ लाल लौहू करिवार ॥
भभरि गयौ अब्दुल्लह खान । भूलि गयौ सब जुद्ध विधान ॥३६॥

भूपालराउ ने कठिन युद्ध किया जिसके कारण तलवार लाल हो गई। अब्दुल्ला खां घबरा गया और उसे युद्ध का सारा विधान भूल गया ॥३६॥

॥ दोहा ॥

कांपन लागी भूमि भय भागि गयो जनु भानु ॥
बाजि उत्यौ दिसि वाम तें बीरसिंह नीसानु ॥४०॥

भय के कारण से पृथ्वी कांपने लगी और सूर्य आकाश मण्डल को छोड़कर भाग गया। बाईं ओर से बीरसिंह की विजयश्री का डंका बजने लगा ॥४०॥

चौपाई

सुनि सुनि मुर्‌यौ राउ भूपाल । जदपि कर्‌यो-मुगलनि की चाल ॥
आयौ तहां जहां इन्द्रजीत । बिह्वल अङ्ग देखियत भीत ॥४१॥

सुन सुन कर भूपालराउ बड़ा दुखी हुआ। वह वहां पर गया जहाँ इन्द्रजीत व्याकुल अवस्था में पड़ा हुआ था ॥४१॥

करच मध्य घायनि की भीर। अन्तर पीड़ा मूँदी पीर ॥
सुधि सरीर की गई नसाइ । सुभट सबै लै चले उठाइ ॥४२॥

इन्द्रजीत के कवच के बीच में और हृदय में पीड़ा हो रही थी। उसे अपनी सारी सुध भूल गई थी। अनेक योद्धा उसे उठाकर वहाँ से चले ॥४२॥

पहुँचे जानि दूरि इन्द्रजीत । या कहि सब सों रह्यौ अभीत ॥
मुगलनि घेरि लियौ अवरोध । कीजै अब राजा को सोध ॥४३॥

इन्द्रजीत कुछ दूर पहुँचा हुआ जानकर उसने उठकर कहा कि मुगलों ने घेर लिया है। इसलिए अब हमें राजा का पता लगाना चाहिये ॥४३॥

॥ कुण्डलिया ॥

भाजन हारे जाउ भजि जिनकौ प्यारो गात।
मरी लौ मो सँग लागियौ मैं राजा पै जात ॥
मैं राजा पै जात सुनो प्रोहित गुन गायक।
फौजदार, सिकदार, सूर, सरदार सहायक ॥४४॥

जिन्हें अपना शरीर प्रिय है, वे भाग सकते हैं, किन्तु मैं राजा के पास जा रहा हूँ। मैं राजा के पास जा रहा हूँ, इसे पुरोहित, चारण, फौजदार, सिकदार, शूर सभी अच्छी प्रकार से सुन लें ॥४४॥

व्रतधारी बानैत मित्र मन्त्री जन साजन।
कहौ राउ भूपाल सबै तुम सुभट समाजन ॥४५॥

हे भूपालराउ तुम इसे सभा का सुनाकर कह दो ॥४५॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री बीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे युद्ध वर्णन नाम द्वादशमो प्रकाश ॥१२॥

—·०·—

॥ चौपाई ॥

काहू कछू न उत्तर दियो। यों कहि कुंवर पयानौ कियौ ॥
देखि अकेलौई भुवपाल। बोलि उठ्यो तब छेत्रमुपाल ॥१॥

कहीं पर भी किसी ने कुछ उत्तर न दिया। इन्द्रजीत उपरोक्त बात कहकर वहां से चल दिया। भुवपाल को अकेला देखकर क्षेत्रपाल बोल उठा ॥१॥

॥ क्षेत्रपाल उवाच ॥

अब्दुल्लह खां खेत खर्गं बल तें मुरकायौ।
अपने हाथ हथ्यार कर्‌य जग कौ जस पायौ ॥
प्रबल घना घन मनहु सुनहु यौं दुंदुभि बाजत।
यों गाजत गजराज लाज दिग्गज गन साजत ॥

ध्वज देखि धार वारसिंह की चमक मनौ चपलानि की।
अब कुमल कुसल घर जाहि जनि बांधैं मोट कलानि की ॥२॥
अपने हथियारों के बल से तुमने अबदुल्ला खां को रणक्षेत्र से भगा दिया और उसके कारण ही तुम्हें संसार में यश प्राप्त हुआ है। दुंदुभी इस प्रकार से बज रही थी मानो आपस में टकरा कर घनघोर बादल गर्जना कर रहे हों। वीरसिंह की पताका और बिजली की तरह चमकने वाली तलवार को देखकर लोग अपनी कुशल नहीं समझते थे ॥२॥

॥ भुवपाल राज उवाच ॥

भूपति भूल्यो मंत्र बैर बहु भांति बढ़ायौ।
करि करि झूठो रोस कोस सब पाइ नसायौ॥
लिये बाजि गज रीझि देस मिसही मिस लीनौ।
सोये निसि लै तियन चेत कछु चित्त न कीनौ॥
सब सुख समाज जिहि राज किय कहि केशव जानति मही।
रन छांडि भगे तो राज को कौन कला हू पै रही॥३॥
हे भूपति! तुमने मंत्र को भुलाकर अनेक प्रकार से शत्रुता को बढ़ाया। व्यर्थ का क्रोध करके सम्पूर्ण कोष को नष्ट कर दिया। रीझकर अनेक हाथी और घोड़े ले लिये और धोखे से अनेक देशों को जीत लिया। स्त्री को साथ में लेकर सोते रहे, मन में कुछ भी विचार नहीं किया। जिसे सारी पृथ्वी राजा के रूप में जान जाय, वही उसका सुख और सम्पति है। उस राजा के पास कोई कला शेष नहीं रह जायगी, जो रण छोड़कर भाग खड़ा होता है ॥३॥

॥ दैव उवाच ॥

कौनउ एक अदिष्ट गयौ पचि विस पियूस ह्वै।
चन्दन सो सुरा कन्द भयौ ज्यौं दहन देह छ्वै॥
को जानै तिहि पुन्य भयौ केहरि गौ जन सौं।
कहि उपर सो परयौ लरयौ सुभ सोम सुमन सौं॥

कहि केसव कौनहु काल जो माल भये अहिवाल को।
किहि भाग भग्यौ अहि जाहि घर पीठि परहि जनि काल की ॥४॥

कोई भी तो वस्तु अनिष्टकारी हो गई है, जिसके कारण से चंदन के समान शीतल और सुख देने वाली वस्तु जलाने वाली हो गई है और पता नहीं किसके पुण्य के प्रताप से सिंह लोगों के लिये गौ के समान हो गया है। मस्तक पर पुष्प की भाँति सुशोभित होने वाली, पता नहीं कहाँ आ गई। केशव पूछते हैं कि क्या किसी भी युग में सर्पों की भी माला हुई है। उसके किस भाग्य का विनाश हो गया है, जिसके घर पर सर्प जाता है ॥४॥

॥ कुंवर उवाच ॥

दिल्ली दल दलमलन राज रावर महं छाड्यौ।
का बिलपतिहि भजाइ जुद्ध जिहि काबिल माड्यौ॥
कुल कामिनि परिवार सहित राजा अरु रानी।
सुर सुंदरी समेत इन्द्र सँग ज्यो इन्द्रानी॥
बहु बालक जाल रसाल सब पति पतिनी सम्पत्ति वर।
छितिपाल सुनहु यह काल भजि कहो कहा ले जाउ घर ॥५॥

दिल्ली सेना का विनाश करने के लिए राजा ने रावर में छोड़ दिया। आज वह विलाप क्या कर रहा है, जिसने काबुल तक युद्ध किया था। परिवार की स्त्रियां, राजा और रानी उसी प्रकार से आनन्द पूर्वक रह रहीं हैं, जिस प्रकार से देव लोक में इन्द्र और इन्द्राणी रह रहे हैं। केशव कहते हैं कि काल से रक्षा करने के लिये पत्नी, पुत्र, स्त्री सम्पत्ति आदि को कहाँ ले जाया जाये ॥५॥

॥ देव उवाच ॥

जौ जीवन तौ जगत बहुरि कै फिरि पति पावहि।
जौ जीवन तौ पुत्र मित्र वित्तन उपजावहि॥
जौ जीवन तौ राज राजकुल लैउर गावहि।
भव में भीम समान दुःख दै दिवस गवावहि॥

वाकीभनै जि भाभी भली जन साजन सजनी जनी ।
सुनि कुवरि जीउ लै जाहि जी जीवन तौ जुवती घनी ॥६॥

यदि जीवन है तो फिर इस देश में तुम वापस आओगे। यदि प्राण रहेंगे तो पुत्र, मित्र और धन फिर पैदा कर लिया जायगा। यदि प्राण रहे, तो राजकुल की आलिंगन करने का पुनः अवसर मिलेगा किन्तु भविष्य के विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता है ॥६॥

॥ कुवर उवाच ॥

जह जह उगन जाहु कहैं सोइ स्वामी द्रोही।
गाइ न जानें नाचि मागि आनै नहि मोही॥
मैरा करि करि मरहि राति दिन दीरघ छाटी।
बीरसिंघ मतु छाड़ि देहि क्वहू नहिं रोटी॥
अब पति पतिनी कह छोड़ि को जरै भूग भर आगि झर।
चढ़ि आज बाजि रन पीठि दै व्याधा काके जाउँ घर ॥७॥

जहाँ-जहाँ म जाऊँगा, वहीं मुझे सब स्वामी का द्रोही कहेंगे। मुझे न तो गाना आता है और न नाचना ही, जिसके सहारे पर मैं कुछ माग सकता। मेरा करते हुए ही अब मरना श्रेयस्कर समझता हू। रोटी के लिए वीरसिंह कभी सत्य को नहीं छोड़ सकता है। अब स्वामी को छोड़कर पत्नी सवार की आग में जलकर मूआ क्या मरे? अब आज घोड़े पर सवार होकर अकेलिया किसके घर जाये? ॥७॥

॥ देव उवाच ॥

पति पतिनी बहु करैं, पति न पतिनी बहु करही।
पति हित पतिनी जरहि, पति न पतिनी हित मरही॥
एक नायिका दुःख कहा बहु नायक दूखे।
सूखे सरिता एक कहा बहु सागर सूखे॥
कहि केसव काटै काल ज्यौं काल न काटै तोहि वर।
नृप नंदन आनंद मय देखि असाहीं जाइ घर ॥८॥

पति अनेक विवाह करता है, किन्तु पत्नी नहीं। पत्नी अपने पति के लिए जलती है, किन्तु पति पत्नी के लिए नहीं मरता है। एक नायिका के दुखी होने से कहीं नायक दुखी होता है? जिस प्रकार से एक नदी के सूख जाने से सारे समुद्र नहीं सूख जाता है मैं काल का विनाश कर दूँगा, वह तुम्हारे पास नहीं आने पायेगा। अब मैं युद्ध करने के बाद ही घर जाऊँगा ॥८॥

॥ कुमार उवाच ॥

इक राजा अरु वृद्ध इते पर हीन सुलोचन।
हमहीं सेवक, सुभट सखा सेवक दुख मोचन ॥
हमहीं मन्त्री मित्र पुत्र हमहीसुनि सपति।
हमहीं हाथ हथ्यार हियौ है सही बुद्धि मति ॥
हौं करत सौंह जगदीशकी ता बिन जीव न लेखिहौं।
जो जियौं त घर सुर पुर करौं मरे अखारौ देखिहौं ॥६॥

एक तो राजा दूसरे वृद्ध और उस पर भी नेत्रहीन है। हमीं सब उनके सेवक मित्र और योद्धा हैं और उनके दुखों का विनाश करने वाले हैं। हमीं उनके मन्त्री, पुत्र और सम्पत्ति हैं। हमीं उनके हाथ और हथियार हैं। मैं सौगन्ध खाता हूँ कि उनके बिना जीवित नहीं रहूँगा। यदि जीवित रहूँगा तो उसके घर को देवपुरी के समान बना दूँगा अन्यथा युद्ध स्थल में मर जाऊँगा। ६॥

॥ दोहा ॥

साईं छांड़े साँकरे फेर लेइ दै दान।
तिनि कै नामहि लेतही थूकै सकल जहान ॥१०॥

जो स्वामी दान देकर फिर वापस ले लेता है, उसके नाम पर सारा संसार थूकता है ॥१०॥

॥ देव उवाच ॥

तूं छत्री कुलपाल तोहि सब दुनी सराहै।
तू सूरो सब भांति सिद्ध संग्रामहि थाहै ॥

तू अभीत रनजीत सत्यव्रती जग वंदन।
तू उदार परिवार तोहि लायौं नृप नंदन॥
सुनि रतन सैनि रनधीर मुत दूरि करहि सब चलि कलुख।
हौं मरन काल आयो निकट देहि मोहि मांगों जु मुख॥११॥

तू क्षत्री कुल का बालक है तेरी सभी सराहना करते हैं। तू सब प्रकार से वीर है और संग्राम में तुझे विजय मिलेगी। तू युद्ध में अभय है और संसार तेरे सत्य की प्रशंसा करता है। तू अत्यधिक उदार है। इसीलिये राजा तेरे पास है। हे रतनसेन! तू चलकर सब प्रकार के कष्टों को दूर कर दे। मेरी मृत्यु निकट आ गई है। इसलिए मैं जो कुछ भी तुमसे मांगता हूँ वह मुझे दो॥११॥

॥ कुमार उवाच ॥

मांगहु मंत्री मित्र पुत्र प्रभु सकल कलित्रन।
मांगहु भोजन भवन भूमि भाजन भूपन गन॥
मागहु आसन असन ग्रान जनिन मांगहु मनि।
मागहु बाग तड़ाग राग बड भाग भोग भनि॥
कहि केसव मागहु सकल पुरसुत समेत धमु असु धर्नौं।
सब देहौं जो कछु मागिहौ धर्म न देहौं आपनौं॥१२॥

मन्त्री, मित्र, पुत्र, परिवार के लोग, भोजन वस्त्र, मुक्तायें भवन भूमि, बाग, तालाब, सवारी तथा अन्य भोग की वस्तुएँ तथा सम्पूर्ण ग्राम, माँग लो। मैं ऊपर की सारी चीजें दे दूँगा, लेकिन धर्म न दूँगा॥१२॥

॥ देव उवाच ॥ दोहा ॥

विविधि धर्म ध्रुव धरनि मैं बरनत वेद पुरान।
कौन धर्म जु न देहि तू देहौं कहत जु प्रान॥१३॥

अनेक ध्रुव धर्मों का वर्णन वेद और पुराणों में मिलता है, उनमें से तुम किस धर्म को नहीं देना चाहते हो॥१३॥

॥ कुमार उवाच ॥

सत्य गाय द्विज मीत की सतत रक्षा धर्म।
स्वामी तजै न सांकरै यहै दमारो धर्म ॥१४॥

सत्य, गाय, ब्राह्मण और मित्र की रक्षा करना सतों का धर्म है। और स्वामी सेवक को सकट काल में नहीं छोड़ता है, यही धर्म है ॥१४॥

॥ देव उवाच ॥ छप्पै ॥

नारी हुँ नरदेव बचे सब परसुराम डर।
देव बचे करि मेर अंध दस कंधर के घर॥
वैई हाथ हथ्यार हुते अपने मन भाये।
अर्जुन नारिन ग्वाइ घरै नीके ही आये॥
रन मारयौ कुंजर नर कह्यौ जव भारत भव मंडियौ।
भुवपाल राउ जग जीव लगि सत्य जुधिष्ठिर छांडियौ ॥१५॥

परशुराम के डर के कारण सभी देव नारी होकर अपनी रक्षा कर सके थे। घमण्डी रावण की सेवा कर देवताओं ने अपनी रक्षा की थी। अर्जुन के पास अपने प्रिय अस्त्र भी थे, फिर भी नारी का रूप धारण करने के बाद ही कुशलपूर्वक घर वापस आये थे। रण में अश्वत्थामा हाथी को मारने के बाद भी युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा से कहा था। वहां पर ससार के जीवों की रक्षा के लिये सत्य को छोड़ दिया था ॥१५॥

॥ कुमार उवाच ॥

प्रथम जाय मतिमान लाज जिय तैं जसु भाकी।
चौंकि चले चतुराइ तेहु तव हित की ताकी॥
सुर सोमा नसि जांइ सुपुनि पति परगट मुक्कइ।
तच्छिन लच्छइ लच्छ नाउ लेतहिं जग थुक्कइ॥
यह लोक नसै परलोक पुनि सद्गु निमंवहि खंडइ।
कहि केश सगु न छडिये जौ छंडत सब छडइ॥ १६॥

हे मतिमान! पहले तो जाकर अपने मन की लज्जा को निकाल दो। उन लोगों की ओर भी थोड़ा देखिये जो कि तुम्हारे साथ चल

दिए हैं। इसका जो ध्यान नहीं रखता है, उसका सारा सुख नष्ट हो जाता है। उसका अथवा उसका नाम लेने पर सारा संसार उस पर थूकता है। ऐसे लोगों का यह लोक और परलोक, दोनों नष्ट हो जाते हैं और शत्रु पराजित करने में सफल होता है। ऐसे शत्रु को कभी नहीं छोड़ना चाहिये जो छोड़ देने के बाद विनाश करने लगे ॥१६॥

॥ देव उवाच ॥

पेस भगे परदेस छाँड़ि मया भारथ कहं।
होरिल रावहि छांडि भगे निज देस जुद्ध महं॥
भजे करहरा छाड़ि राम दूलह कहं दिक्खहु।
सब भागे यहि भांति छत्रि जन जिय जनि लिक्खहु॥
भूपाल राउ का सीस सुनि जब जब जिहि रन मडियौ।
तब तब कहि केशव दास जग कोनहि सत्य न छडियौ॥१७॥

भाई पेस भारथ को छोड़ कर विदेश चले गये हैं। होरिलराव देश के युद्ध को छोड़कर भाग गये हैं। करहरा को छोड़कर दूलहराम भाग गये हैं। इसी प्रकार से सारे क्षत्री भाग गये हैं। इस बात को आप समझ लें। भूपालराव ने भी अनेक बार युद्ध किया है। इस संसार में किसने सत्य को नहीं छोड़ दिया है ॥१७॥

॥ कुमार उवाच ॥

महाराज मलखान पाउ रन दियौ न पीछैं।
अमन दास अमोल मरयौ सुति जस जिय ईछैं॥
मरयौ न होरिल राउ बाम बैकुंठहि पायौ।
रतनसैन रनक जूझि राजा पहुचायौ॥
रन कियौ पच्छि मेरे पिता मृतक पच्छि के पच्छ को।
कहि क्यौं न करौं अब पच्छि मैं जीवत अपनैं पच्छ को॥१८॥

महाराज मलखान ने युद्ध में आगे पैर बढ़ाकर पीछे नहीं रखा। अमलदास अमोल मर गया, लेकिन सत्य नहीं छोड़ा। क्या होरिल,

मरा नहीं ? क्या उसे वैकुन्ठ वास मिल गया है ? खगसेन ने मरकर भी राजा की रक्षा की। मेरे पिता ने मृतक पक्षी का पक्ष लेकर युद्ध किया। अब मैं जीवत रहते हुए अपने पक्ष का पक्ष क्यों न लूँ ? ॥१८॥

॥ देव उवाच ॥ कवित्त ॥

भैरो कैसे भारे भूत, गनपति कैसे दूत,
सज्जे जीमूत जनु कारे वेस कारे के।
विधि कैसे वधव मदध प्रति वधन को,
कलित कराल गन्ध करि न कलेस के॥
काली कैसे छौना काल जौन कैसे दौवा,
महानीच कैसे भैया चेति हौवा परदेश के।
आपुनु यौ मागि रच्छि कौन करै पच्छिदच्छ,
काल कैसे साथी हाथी आये हैं वीरेस के॥२०॥

शंकर के दूत के समान, गणेश के दूतों के समान, काले काले बादल सजकर आ गये हैं। इस प्रकार के हाथी विधि के बाघव और विकराल हैं। वे काली के छौना के समान, काल के दौवा और मृत्यु के भाई के सदृश (हाथी) लगते हैं। वीरेस के हाथी अपने पक्ष की रक्षा करने के लिये और शत्रु पक्ष के लिये कराल बनकर आये हैं।

॥ कुमार उवाच ॥

भीति करहि जनि मीति वस रन जीति हमारी।
व्रतधारी जस अमल ताहि अब करौ नकारी॥
राजनि कै कुल राज कहा फिरि फिरि अब तरियौ।
अब तब जब कब मरन कहत अबहीं किनि मरियौ॥
सुर सूरज मन्डल भेदि ज्यों बिना गये हरि सरन।
सब सूरनि मण्डल भेदि त्यौं रामदेव देखै सरन॥२१॥

अब भय मत करो। मेरा वंश अभीत है। व्रतधारी मेरा वंश है, उसी के अनुरूप अब नकारा बजाओ। राजकुलों का बार-बार विनाश

नहीं होता है। अब आगे मरने की बात क्या कहते हो, अभी क्यों न मरा जाय। सूर्य मण्डल को भेद कर जिस प्रकार से अन्य योद्धा उसकी (भगवान) शरण में जायँगे उसी प्रकार रामदेव भी जाये।

॥ देव्युवाच ॥

उतहि चमू चतुरंग दूतहि तेरे सग को है ?।
लग्यो अगमं वायु महा मेरो मन मोहै ॥
तुपकैं तीर अपार चलति चहुं ओर चपल गति।
नगर गली चौहट्टें रहे भट भूरि पूरि अति ॥
ह्वै जाइ कछू जी बीच ही कीनहु काज न सुद्धरै।
कहि केसव कैंसें कुवर तूं राज लोग कौं उद्धरै ? ॥२२॥

उस ओर बहुत बड़ी सेना है, इधर तुम्हारे साथ कौन है। मेरे अगों में जो वायु लग रही है, वह मेरे मन को आकर्षित कर रही है। चपला की भाँति चारों ओर तोपें चल रहा हैं। नगर की गलियाँ तक योद्धाओं से भर गई हैं। यदि कुछ बीच में ही गड़बड़ी हो जायगी, तो कोई भी काम न हो सकेगा। हे कुवर ! तू लोगों के राज्य का कैसे उद्धार करेगा ॥२२॥

॥ कुमार उवाच ॥ कुंडलिया ॥

पीछे पुर विक्रम वली सत साहस वल साथ।
स्वामि-धर्म मैं करत हौं सिर पर सीतानाथ ॥
सिरपर सीतानाथ चितै को सकै तिरछैं।
जिनके बल हौं जाँउँ राखिहै आगें पीछैं ॥२३॥

पीछे की ओर से सात सहस्र की सेना लिए हुये विक्रम बली है। मैं स्वामि धर्म का निर्वाह कर रहा हूँ। मेरे सिर पर भगवान राम का हाथ है, मुझे तिरछी दृष्टि से कोई कैसे देख सकेगा। जिनके बल से अभी तक रहा हूँ, वही अब भी मेरी आगे पीछे रक्षा करेंगे ॥२३॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर, महाराजाधिराजा राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दानलोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे, युद्ध वर्णनं नाम त्रिदशमोऽध्यायः ॥१३॥

॥ चौपाई ॥

तब तिनि बिदा करी सुख पाइ । निर्भय पट पियरी पहिराई ॥
भाल सुजस को टीका कियौ । सकल सिद्धि कौ बीरा दियौ ॥१॥

निर्भय होकर पीले वस्त्रों को पहनाकर बिदा कर दिया । सुयश का टीका मस्तक पर लगा दिया और सभी सिद्धियों को देने वाला पान का बीड़ा दिया ॥१॥

करि प्रनाम कहि चल्यौ कुमार । अभय करी बर दियौ अपार ॥
सोभ्यौ तब सुग्रीव समान । राम काज जिनको परिवान ॥२॥

कुमार प्रणाम करके चल दिया और राजा ने अभय होने का वर दान दिया । चलते समय कुमार सुग्रीव की भांति सुशोभित हुआ । ऐसा लगा कि राम का काम करने के लिये जा रहा हो ॥२॥

सुभ लच्छन लछिमन सो लसै । मन क्रम बचन राम ब्रत बसै ॥
औरन उर आयौ तिहि काल । अङ्गन ज्यो अङ्गद रिपु काल ॥३॥

कुमार में शुभ लक्षण लक्ष्मण के समान है और मन क्रम, बचन से राम का अनुगामी लगा । अन्य लोगों के हृदय में उस समय काल में अपना भय जमा दिया ॥३॥

रामदेव, दुख हतन अनन्त । सोभ्यौ कुवर मनौ हनुमन्त ॥
रिपु भट भागि गये भहराय । भीतर भवन गयो सुख पाय ॥४॥

रामदेव के दुखों का विनाश करने के लिए उस समय कुमार हनुमान जी की भाँति सुशोभित हुआ । उसे देखते ही शत्रु भाग गये । कुमार घर में सुख के साथ वापस आ गया ॥४॥

देखि राजकुल आनन्द भर्यो । रामदेव के पायनि पर्यो ॥५॥

राजकुल में आनन्द देख कर कुमार रामदेव के पैरों पर गिर पड़ा ॥५॥

॥ दोहा ॥

काज सुधारि बिदारि दल यौं आयौ बलबीर ॥
अभय देव संग्राम ज्यौं रामदेव के तीर ॥६॥

कामों को ठीक करके इस प्रकार से बलबीर आया जिस प्रकार से देवों का भय रहित करने के लिए राम ने अपने तीरों को छोड़ा था ॥६॥

॥ चौपाई ॥

राजहि भयो परम सुख गात । तिहि सुख फूले अंग न समात ॥
अति प्यासौं ज्यौं पानी पाइ । बहु भूखौं भोजन सुखदाइ ॥७॥

राजा को अत्यधिक सुख हुआ । उसका सारा शरीर पुलकायमान हो उठा । जिस प्रकार से भूखे को भोजन और प्यासे को पानी मिल जाने से सुख होता है, उसी प्रकार से राजा को भी हुआ ॥७॥

परम पङ्गु ज्यौं पाये पाँउ । गुङ्ग लह्यौ ज्यौं बचन बनाउ ॥८॥
लहै अंध ज्यौं लोचन चारु । भीजत जनु पायौं अगारु ॥
सीतारत ज्यौं अगिनी लहैं । बन भूल्यौं मारग ज्यौं गहै ॥६॥

लगड़े को पैर मिल जायें, गूंगे को बोलने की शक्ति मिल जाय, अंधे को आंखें, सीगे हुए को आग, मिल जाय और बन में भूले हुए को मार्ग मिल जाने से जो प्रसन्नता होती है, वहा राजा को हुई ॥६॥

॥ दोहा ॥

राज लोक अरु राज के तन मन फूले फूल ॥
फूले रवि कौं परइ ज्यौं अमल कमल के फूल ॥१०॥

सम्पूर्ण राज्य और राजा उसी प्रकार से आनन्दित हो उठे, जिस प्रकार से सूर्य की किरणों को पाकर कमल खिल उठता है ॥१०॥

॥ चौपाई ॥

अंग लगायौ लै सिर बास । निपट मिट्यौ कुल कौ उपहास ॥
पंछी नृपति जुद्ध की बात । बार बार तन की कुसलात ॥११॥

राजा ने उसे अपने अंग से लगा लिया और कुछ का जो उपहास हो रहा था वह सारा समाप्त हो गया। राजा ने युद्ध और उसके शरीर कुशलता के सम्बन्ध में कुमार से बारबार पूछा ॥११॥

करै न कोऊ करिहै काज। जैसें कुवरै करनें आज ॥
दान लोभ सुनियत तिहि काल। बाजि उठे दुंदुभी कराल ॥१२॥

कुमार ने जिस प्रकार से आज काम किया है, उस प्रकार का काम न तो आज तक किसी ने किया है और न कोई कभी करेगा। इसे दान और लोभ उस समय सुन रहे थे। इस अवसर पर दुन्दुभी भी बज उठी ॥१२॥

वीरसिंह आयौ रन रुद्र। प्रलय काल की मनौ समुद्र ॥
देखत ही भागे रिपु लोग। ज्यों धन्वन्तर आए रोग ॥१३॥

रन में रुद्र के समान वीरसिंह को आया हुआ देख कर शत्रु भाग खड़े हुए। शत्रु उसी प्रकार से भागे जिस प्रकार से धनवतर को आया हुआ जान कर रोग भाग खड़ा होता है ॥१३॥

अरि की फौज भगी गहि त्रास। अन्धकार ज्यौं सुर प्रकास॥
परम दानि मुनि जैसें रार। जैसें नखत बड़े ही भोर ॥१४॥

शत्रु की सेना उसी प्रकार से भगी, जिस प्रकार से सूर्य के प्रकाश को देख कर अधकार, दानी को देख कर दुख और प्रात.काल नक्षत्र भाग जाते हैं ॥१४॥

जहाँ तहा भट यों भगि गए। राम सुनत ज्यों पातक नये ॥१५॥

राम का नाम सुनने से जिस प्रकार पातक भाग जाते हैं, उसी प्रकार से योद्धा इधर उधर भाग गये ॥१५॥

॥ दोहा ॥

आये बली पहार तहँ वीरसिंघ नरसिंघ ।
पायक पुञ्ज समेत जहँ बसत हेत रनसिंघ ॥१६॥

वीरसिंह अपने समस्त योद्धाओं के साथ में उस स्थान पर आये जहा पर रनसिंह रहता था ॥१६॥

॥ चौपाई ॥

छूटि गई जहँ तहँ की गढ़ी। चमू चमकि सिगरे पुर मढ़ी ॥
भय सधूम अटारी अटा। मानहु सजल सरद की घटा ॥१७॥

जहा तहा के छोटे-छोटे गढ़ छूट गये। सारी सेना गाव में छा गई। गई। अटारी और अटा भय के कारण से सधून हो गये। ऐसा लग रहा था कि जल युक्त शरद की घटा छाई हुई है ॥१७॥

लुटन लग्यो पुर सघन अपार। जच्छराज कैसो भण्डार ॥
यौं मनुज के सत छुटि गये। द्विज-देखिन के ज्यौं मुस नए ॥१८॥

सभी लोग इस प्रकार से नगर को लूट रहे थे मानो यक्ष का भण्डार लूट रहे हों। इससे शत्रुओं का सत छूट गया और द्विज-दोषियों को बड़ा आनन्द हुआ ॥१८॥

पकरी सूरन की सुन्दरी। काम कलप तरु कैसी फरी ॥१९॥

शूर योद्धाओं की सुंदरियों को पकड़ लिया गया। वे कल्प वृक्ष की भाँति फली हुई लग रही थीं ॥१९॥

॥ दोहा ॥

किरवाने काँधे कवच तन लीन्हे हथियार।
बन्दि परे सब सूरि वकि सुन्दरि सहित कुमार ॥२०॥

तलवार, कवच और हथियारों को धारण किये हुए थे। सभी योद्धाओं और कुमारियों के साथ में कुमार बन्दी हो गया ॥२०॥

॥ चौपाई ॥

वीरसिंघ तब देखत भये। करुनामय तबही ह्वै गये ॥
कोऊ जनि काहू कौं हनौ। बरज्यौ लोग सबै आपनौ ॥२१॥

वीरसिंह ने जब देखा तब उन्हें करुणा हो आई। वीरसिंह ने एक दूसरे को मारने के लिये रोक दिया ॥२१॥

अबदुल्लह खा ढोवा ठयौ। वीरसिंघ आए बल भयौ ॥
मुगल राम दुवह के लोग। गटन लागे जुद्ध प्रयोग ॥२२॥

वीरसिंह के आने से अबदुल्ला खा को बल मिला। दूलह राम युद्ध करने के अनेक विधान सोचने लगा ॥२२॥

आस पास तुरकनि कौ जाल। राजत मध्य राउ भुवपाल ॥
मत्त गजनि ज्यौं कर्यौ विचार। घेरि लियौ मृगराज कुमार ॥२३॥

आस पास तुरकों का जाल बिछा हुआ था, उसके बीच राजा सुशोभित हो रहा था। ऐसा लगता था कि मस्त हाथियों ने विचार करके मृगराज, कुमार को घेर लिया है ॥२३॥

मनहु पर्वतन अति बल भयो। इन्द्रपुरी कौ ढोवा ठयौ ॥
मनौ निसाचर गन बलवंत। घेरि लियौ मानौं हनुमंत ॥२४॥

ऐसा लगता था कि पर्वतो ने अत्यधिक शक्तिशाली होकर इन्द्रपुरी को ढोने का निश्चय कर लिया। मानो निशाचरों ने बली होकर हनुमान जी को घेर लिया है ॥२४॥

मानौ अधरार बल लये। धारक सूर सामुहैं गये ॥
दीरघ सर्प बहुत पुर कढ़ैं। मानहु कोपि गरुड़ पर चढ़ैं ॥२५॥

सूर्य के सामने से जाने पर अंधकार बलशाली हो गया हो। मानो अनेक सर्प कुपित होकर गरुड़ पर चढ़ाई कर दिए हो ॥२५॥

जनु प्रहलाद रामरस रयौ। घेरि पिता के दोखनि लयौ ॥
अध ऊरध मन्दिर चहुँ कोद। वाहिर भीतर भवन अमोद ॥२६॥

राम में अनुरक्त प्रह्लाद को मानों उसके पिता के पापों ने घेर लिया हो चारों दिशाओं के मंदिरों में आनन्द हो रहा था ॥२६॥

कैसे हूँ काहू नहि डरै। सब सौं कुवर अकेलौ लरै ॥
छल बल दल बल बुद्धि निधान। कै अटक्यौ अबदुल्लह खान ॥२७॥

कुमार किसी से नहीं डर रहा है। वह सबसे अकेले ही युद्ध कर रहा है। छल, बल, बुद्धि बल तथा दलबल से अबदुल्ला खाँ ने उसे रोक लिया ॥२७॥

॥ कवित्त ॥

सहि कौं सराहि मिंद सैद अबदुल्लह सुभायौ,

ओंड़छे कौं मुढ मोहनी सी मेलि कें।
पचम प्रचारि लर्‌यो और न विचार कर्‌यौ,
ठौर ठौर ठेल्यौ दल खग्ग रेलि रेलि कै॥
राख्यौ राजलोक पन रन रस भीज्यों मन,
केसोदास देवगन रीझ्‌यौ दृग पेलि कै।
मागें पालजैं न कछू वदूहू अमोल पात लै,
रह्यौ भुपाल राउ सबको मरेलि कैं॥२८॥

शाह की सराहना कर मोहिनी छोड़कर अबदुल्ला ओड़छा की ओर चल दिया। बिना किसी विचार क वह स्थान-स्थान पर ललकार कर सभी से युद्ध करता रहा। राजलाक का प्रतिश रखा, रण म उसकी अनु रक्तता देखकर देवता प्रसन्न हो गये। मागने से कुछ भी प्राप्त न होता किन्तु भूपालराउ ने बलपूर्वक सबका सब कुछ छीन लिया॥२८॥

राजत रन अगन मुखकारि। कन्ध धरे नांगी तरवारि॥
अति राती रिपु सोनित भरी। तरनि-किरन सी उज्जल खरी॥२६॥

युद्ध में अग प्रत्यग शोभा दे रहा है। वह कंधे पर नगी तल वार रखे हुए है। पृथ्वी शत्रु के खून से लाल हो गई है। वह सूर्य की किरणों के समान उज्ज्वल है॥२६॥

रतन सेन सुत कौं तिहि घरी। बरनत देव देव सुन्दरी॥
रन समुद्र बोहित कौ छियो। करिया मौ किरवारी लियो॥३०॥

रतनसेन के पुत्र का उस समय सभी देव और देवरानियाँ वर्णन कर रही हैं। रण समुद्र के समान अथाह होगया था, उसमें पड़ी नौका के लिये उसकी तलवार ने पतवार का काम किया॥३०॥

पारथ मो सैना मथरै। जनु जम कालदण्ड कौं धरै॥
सोभत बलि कैसी प्रतिहार। गदाधरैं सेवत दरबार॥३१॥

काल के समान रूप धारण कर पार्थ के समान वह सेना का सहार

कर रहा है। वह बाल के प्रतिहार के समान सुशोभित हो रहा है। दरबार की सेवा गदा धारण किए हुए कर रहा है ॥३१॥

राज श्री चचल मानियैं। ताको दामिनि सी जानियैं॥
जनमे जय तैं ज्यौं हरि डरै। तक्षक की रक्षा भी करै ॥३२॥

राजश्री अत्यधिक चचल है, इसे बिजली के समान समझना चाहिये। मानों इन्द्र जनमेजय से डरकर तक्षक की रक्षा कर रहे हो ॥३२॥

॥ कवित्त ॥

कालिका की कौलि सी, कै काल कूट वेलि सी,
कै काली कैसी जीभ किधौं का कामिनी।
किधौं केसौदास आछी तच्छक की देह दुति,
जात की जोति किधौं जात अत गामिनी॥
मीच कैसी छाह, विष कन्या कैसी बाह,
किधौं रन जय साधि ताका सिद्धि अभिरामिनी।
राती राती माती अति लोहू की भूपाल,
राइ तेरी तरवारि पर वारि डारौं दामिनी ॥३३॥

हे भूपालराव ! तेरी तलवार—कालिका की भाँति क्रीड़ा करती है, वह काली की जीभ के समान विकराल है, उसमें तक्षक के शरीर को दुति सी है, वह मृत्यु की छाया है, वह विष कन्या की भुजा के समान है, वह खून से अत्यधिक लाल—पर दामिनी को भी तेरी तलवार निछावर कर सकता हूँ।।३३॥

॥ कवित्त ॥

मन जिमि निकसि लराई कीनो मन ही ज्यौं,
आनि छिके रावर में जानियै न कब को।
राखि लीनी राज लोक लोक राजसिंघ सम,
ठान ठान मुगल पठान ठेलि ठब के॥
लैंगो गज गामिनिन गाजि गजराज सम
केसर सराहैं सूर सब के और अब के।

वांकुरा भूपाल राउ भीर परैं ता दिन कौ,
तेरे रूप ऊपर सरूप वारौं सब के ॥३४॥

जिस प्रकार से मन वाहे ही समय में पता नहा कहां से कहा पहुँच जाता है, उसी प्रकार से उसका तलवार भी चलन हो रही है। मुगलों से युद्ध करके उसने राजलोक की मर्यादा की रक्षा करली है। वह सिंह की भाँति गर्जना कर के गज गामिनियों को ले गया, इसकी सभी योद्धा सराहना करते है। हे भूपाल राव! जिस समय भी विपत्ति पड़ेगी, उस दिन तेरे ऊपर सभी को निछावर कर दूँगा ॥३४॥

॥ सवैया ॥

बाज ज्यों बांकुरा श्री महाराजा जू धाये जबै अब्दुल्लह जू पर।
साधिये हाथ हथ्यार एक सो एक भिर्‌यो भट दूपर॥
हिम्मति के हद केहरि केसर यौं जसराउ भुपाल जू भूपर।
श्रावनि धावनि लैउ पठावनि तीनि करी तिहु लोकहू ऊपर ॥३५॥

बाज की भांति महाराज जी अब्दुल्ला के ऊपर झपट पड़े। अपने अपने हाथियारों को सम्हाल कर दोनों योद्धा एक दूसरे पर टूट पड़े। जसराव भूपाल इस पृथ्वी पर सिंह की भांति है। वह इतनी जल्दी आता जाता है कि तीनों लोकों में उतनी जल्दी कोई नहीं कर सकता है ॥३५॥

॥ कवित्त ॥

भौंर हू की ज्वाल में भूपालराउ बांकुरा,
सर विकट बाल समिपाल मुरे रहौ।
कवन उभरे मुठ भेरहू के गल बल,
याजिन को दल सनमुख पल द्वै रह्यौ॥
पचम के हाथ लागे हाथिनि तें रथी गिरे,
महिर्थी के मथे मद गजनि कौन्दे रह्यौ।

सिरी झरि, सार झरि, झनन भनन बाजै,
ठननि ठननि सद्द खोलनि मैं ह्वै रह्यौ ॥३६॥

मोरहू की ज्वाला में भूपालराव सत्तिपाल की रक्षा कर रहा है। युद्ध में हाथी के कवच उमर आये हैं। उसके सामने वाजिद का दल केवल दो पल रुक सका। पचम का हाथ लगने से हाथी पर से सवार गिर पड़े। हाथियों के मस्तक से मद चूने लगा। श्री और सार गिर गये। हाथियों के खोल झनन झनन की आवाज करने लगे ॥३६॥

॥ दोहा ॥

लिये तरल तरवारि कर सोहत श्री भूपाल।
हाथ छरी जनु राज राजकुल गोकुल को गोपाल ॥३७॥

भूपाल तलवार को लिये हुए सुशोभित हो रहा है और गोकुल के गोपाल की भांति हाथ में छड़ी लिये हुए है ॥३७॥

॥ चौपाई ॥

विविध बन्धु रजपूत बुलाइ। सुजन सजन सब बरनि सुनाइ ॥
बीरसिंह राजा यह कह्यौ। हम पर दुख न जाय सह्यौ ॥३८॥

बीरसिंह ने अपने सभी बन्धुओं को बुलाकर कहा कि मुझसे दुख नहीं देखा जा रहा है। ३८॥

एक मुदफ्फर बिन सब कोय। जा काहू के जिय रज होय ॥
अबहिं जाइ राजा मैं मरै। मर्यो न जाइ तलै उद्धरै ॥३६॥

एक मुदफ्फर को छोड़कर, यदि सभी के हृदय में दुख है तो वह भी जाकर राजा का उद्धार करे ॥३६॥

ताकी जस जग मैं जानिवी। अरु मेरे प्रति दिन मानिवी ॥
काहू कछू न उत्तर दियौ। सुनि सबही सिर नीचौ कियौ ॥४०॥

उसका यश ससार में फैला हुआ मैं मानूँगा, और अपने प्रति उपकार स्वीकार करूँगा। सभी ने यह सुनकर सिर नीचा कर लिया। किसी ने भी कुछ उत्तर नहीं दिया। ४०॥

अति दृढ़ जान्यौ नृप आगार । अवदुल्लह कौ थक्यो हथ्यार ॥
यादगार सौं कह्यौ बुलाइ । क्यौं हू राजहिं मिलहु आइ ॥४१॥

राजा के दृढ़ विचारों और अवदुल्ला की शक्ति को क्षीण समझकर यादगार को बुलाकर कहा कि किसी भी प्रकार राजा को लाकर मिलाओ ॥४१॥

तिहिं सुन्दर कायथ सौं कह्यो । हम सौं तुम सौं निग्रह रह्यौ ।
जहांगीर की पञ्जा लेव । राजा कौं मिलवो करि भेव ॥४२॥

उसने सुन्दर कायथ से कहा कि हमारी तुम्हारी लड़ाई रही है। जहांगीर के हस्ताक्षरों की किसी भी प्रकार से मुहर लेकर राजा को मिलाओ ॥४२॥

राजा अरु नवाब सुख पाइ । देखहिं जाइ साहि के पांइ ॥४३॥

राजा और नवाब सुख पूर्वक शाह के चरणों को जाकर देखें ॥४३॥

॥ दोहा ॥

छिये नवाब मुसाफ कौं लीजैं बीच बदाय ।
जात दिवावै ओड़्छौं हजरति सौं पहिराय ॥४४॥

नवाब मुसाफ को बुला लीजिये । मैं जाते ही हजरत से ओड़छा दिला दूंगा ॥४४॥

॥ चौपाई ॥

सुन्दर कही राजा सो बात । राजा सुख पायौ सब गात ॥
यादगार पै सौंहैं कराय । राम मिले खोजा कौं जाय ॥४५॥

सुन्दर ने राजा से कहा, इससे राजा बड़ा प्रसन्न हुआ । राम शाहि यादगार को सौगंध देकर खोजा से जाकर मिले ॥४५॥

खोजहिं भजैं तजी सब मही । चहुँदिसि हाय हाय है रही ॥
जीत्यौ जिहिं तू रम रनधीर । जालिम जाम कुली सौ वीर ॥४६॥

खोजा के भागने से चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था । राम शाहि ने खोजा से कहा कि तूने जालिम जामकुली को भी युद्ध में जीत लिया था ॥४६॥

जानि न जाय करम की गाथ। राम मु अबदुल्लह के साथ ॥४७॥
रामशाहि का साथ अबदुल्ला दे रहा है। कर्म की गति के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता है ॥४७॥

अली कुली खा लीनों लूटि। साहिम खा जिनि पठयौ छूटि ॥
जीत्यो महा वली रन रुद्र। दरिया खा जिनि सूर समुद्र ॥४८॥

अली कुली खाँ भी जिससे पराजित होगये और जिन्होंने छल करके साहिम खाँ को भेजा था दरिया खाँ ऐसे महाबली को भी युद्ध में पराजित कर दिया ॥४८॥

॥ दोहा ॥

जानै को नहि जानि है कठिन करम की गाथ ॥
हाकन हार हकीम कौं अबदुल्लह के हाथ ॥४६॥

कर्म की गति को न तो किसी ने समझ पाया है और न कोई भविष्य में ही समझ पायेगा। राजा सब प्रकार से अबदुल्ला के हाथ में है ॥४६॥

॥ चौपाई ॥

सूरज अधकार जब हर्यौ। भैरौ भूतनि के बस पर्यौ ॥
बाज काग चुगल चपि गयौ। मत्त गयंद ससा गहि लयौ ॥५०॥

सूर्य ने जब अधकार का विनाश कर दिया तब भैरो भूतों के बस मे हो गये। बाज ने काग पक्षी पर आक्रमण किया और मत्त हाथी ने ससा को पकड़ लिया ॥५०॥

बन मे सिंह स्यार बरु हर्यौ। सर्पनि मनौ गरुड़ बस कर्यौ ॥
ऐसे ही अबदुल्लह राम। छल बल चल्यौ संग लै ताम ॥५१॥

बन से सिंह और सियारो को हर लिया और सर्पों पर मानों गरुड ने अपना प्रभुत्व जमा लिया है। इसी प्रकार से अबदुल्ला छल बल से राम शाहि को लेकर चला ॥५१॥

॥ दोहा ॥

बीरसिंह रावन कहे ज्यौं ज्यौं राजाराम।
त्यों त्यों चाले रामहीं कठिन करम की काम ॥५०॥

बीरसिंह जितना ही राम शाहि से रुकने के लिये कहता है उतना ही वह चलने को उद्यत होता है। कर्म की गति बड़ी ही कठिन है ॥५०॥

॥ चौपाई ॥

बीरसिंघ राजा हरि कीयौ। सबही कल सिर टीका दियौ॥
विहट राउ भूपालहि दियौ। इन्द्रजीत गढ़ कौ प्रभु कियौ॥५३॥

बीरसिंह को सभी ने राज तिलक देकर राजा बनाया। भूपालराव को विहट दिया और इन्द्रजीत को गढ़ का स्वामी बनाया ॥५३॥

बाघ राउ परताप की दई। आनंद मति सबही की भई॥
तिनकौं सौंपि देस पार करे। बीरसिंह हजरत पै चले॥५४॥

प्रतापराउ को बाघ दिया। सभी लोग उपरोक्त व्यवस्था से प्रसन्न हुए। सारा देश का कार्य इन लोगों को देकर बीरसिंह हजरत (बादशाह) के पास चले ॥५४॥

यह विचारि छाड़ौ सब काम। लै आऊँ घर राजाराम॥
देख्यौ राज जाइ कुरखेत। धरनी तल मैं धर्म निकेत॥५५॥

यह विचार करके सारे काम छोड़ दिए कि मैं राजाराम को घर वापस लाऊँगा। कुरु क्षेत्र में जा कर राजा को देखा जो कि पृथ्वी पर में धर्म का घर था ॥५५॥

गज घोटक हाटक पट नये। हरषि हरषि बहु विप्रनि दये॥
मुक्ता अरु मुहरैं बहु लई। धरनी धर सबही धरवाई॥५६॥

बहुत से हाथी और घोड़े प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को दिये। मुक्ता और मोहरें भी दी गईं ॥५६॥

जानि गये जबही अति दूरि। जन पद उठी जोर की धूरि॥
भारतसाहि संग लै आई। सोर उठायौ देवाराइ॥५७॥

जनपद में बड़ी दूर पर धूल उठी। भारत शाहि सेना लेकर आया और उसने देवाराइ में शोर मचा दिया ॥५७॥

पटहारी तिन लई मुभाउ। मारे जत्र घटा के गाउ॥
नगर ओंड़छौं कपन लग्यो। जन पद यों चल दल ज्यों कप्यौ ॥५८॥

उसने बिना किसी परिश्रम के ही पटिहारी को जीत लिया। सारा ओड़छा नगर कांपने लगा और सेना बिजली की तरह कांपने होने लगी ॥५८॥

नगर नगर के लोग अपार। लगे मिलन लै लै उपहार॥
लयौं बगीना तेही काल। अपबल आनि राउ भूपाल ॥५९॥

नगर के अनेक लोग उपहार ले लेकर मिलने लगे। इसी समय भूपालराव सेना सहित आकर मिला ॥५९॥

रक्षक लोग ते भक्षक भये। ठाकुर सबै एक ह्वै गये॥
निपट अनाथ आपनै जानि। वीरसिंह भुव प्रगटे आनि ॥६०॥

जितने रक्षक थे, वही भक्षण करने वाले हो गये और सारे ठाकुर मिलकर एक हो गये। नितान्त अनाथ जानकर इस पृथ्वी पर वीरसिंह प्रकट हुआ ॥६०॥

अकसमात प्रगट्यौ रनजीत। जैसैं वीर विक्रमाजीत॥
ऐसैं राखि लियो सब देश। ज्यौं नृसिंह प्रह्लाद सुरेश ॥६१॥

विक्रमाजीत की भाँति अकस्मात ही रन में जीत विजय प्राप्त हो गयी। जिस प्रकार से नृसिंह रूप ने प्रह्लाद की रक्षा कर ली थी, उसी प्रकार उसने देश को बचा लिया ॥६१॥

इहि विधि करी दूरि तै दारै। ज्यौं गज गहे देव सिर मौर॥
भारतसाहि समेत डराइ। घिरे लहचुरा देवाराइ ॥६२॥

इस प्रकार से सारी सेना को दूर से ही हटा दिया मानौं हाथी अपने सिर पर मौर रखे हुये हो। भारत साहि सहित वे सब बहुत अधिक डर गये। लहचुरा का देवाराइ भी बहुत बुरी तरह से घिर गया ॥६२॥

घेरत छूटि गयौ सत ऐन। मानौं कृष्ण राइ गहि दैन ॥६३॥
घिरने ही देवराय का साग सत्य छूट गया ॥६३॥

॥ दोहा ॥

कृपा राम कौं तिन दये भारतसाहि कुमार ॥
कृपाराम तिनकौं दयौ केवल धर्म दुवार ॥६४॥

उन्होंने कृपाराम को भारतसाहि को समर्पित कर दिया और कृपाराम ने उन्हें केवल धर्म दिया ॥६४॥

॥ चौपाई ॥

कृष्णराय कौ काढ्यौ मुंड। जान दियौ कायर कौ झुंड ॥
पातसाहि पठयौ फरमान। दियौ ओड़छौ उत्तम थान ॥६५॥

कृष्णराय का सिर काट लिया और शेष कायरों के झुंड को जाने दिया। पातसाहि ने फरमान भेजा। ओड़छा में उत्तम स्थान प्रदान किया ॥६५॥

जहांगीर पुर तिहिं कौ नाउ। फेरि बसायौ सुखद सुभाउ ॥६६॥
अत्यधिक ,खुशी होकर उसे जहांगीर के नाम से फिर बसाया ॥६६॥

॥ दोहा ॥

राजा मधुकुरसाहि कौ जग मे जितनौ देस।
जहांगीर सब कौं करयौ विरसिंघ देव नरेस ॥६७॥

राजा मधुकर शाहि का संसार में जितना देश है, उस सब को जहांगीर ने वीरसिंह को दिया ॥६७॥

॥ छप्पै ॥

फेरि बसायो नगर नगर नागर नर नायक।
थपे पुरोहित मिश्र व्यास परिगह पटु पायक ॥६८॥

उस नर नायक ने फिर से नगर को बसाया। उस नगर स्थापना में पुरोहित, व्यास तथा अनेक पटु पायक लगे हुए थे ॥६८॥

केशव मन्त्री मित्र सभा मद सब सुख दायक।
फौजदार सिक्दार बधु सरदार सहायक ॥६६॥

केशव, मत्री, मित्र, सरदार, बधु सभी सुख को प्रदान करने वाले हैं। फौजदार, सिक्दार, सरदार आदि सभी सहायता के लिये प्रस्तुत रहते हैं ॥६६॥

बहुबन्दी मागध सूत गुनि गुनि दसो दिय साखि निति।
रैयत राउत राजहित चार्यो बरन विचारि चित ॥७०॥

अनेक बन्दी, मागध सूत आदि सभी दसों दिशाओं में उसके गुणों का गान किया करते हैं। राजा और प्रजा के हितार्थ चारो वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के साथ उनके अनुरूप ही समुचित व्यवहार किया जाता है ॥७०॥

॥ देव उवाच ॥ दोहा ॥

दान लोभ तुम सब सुन्यौ दह्न नृपति की भेव।
वीरसिंह अति देखि जैं नर देवनि कौ देव ॥७१॥

तुमने राजा के दान और लोभ दोनों को सुना है। लोगों को वीरसिंह को देखना चाहिये, जो कि देवता के रूप में है ॥७०॥

इति श्रीमन्सकल भू मण्डलाखण्डलेश्वर, महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे चतुर्दशमोः अध्याय ॥१४॥

दान उवाच

लीनी कहन कछू जब दान। है गई देवी अतरध्यान ॥
दान लोभ तब दोऊ भले। देखन जहाँगार पुर चले ॥ १ ॥

जब दानने लेने की बात कही तब देवी अन्तर्ध्यान हो गयी। दान और लोभ दोना ही जहागीर पुर को देखने के लिये चल पड़े ॥१॥

देखे पुर पट्टन गन ग्राम। कहौं कहाँ लगि तिनिके नाम ॥
देखे सर सरिता सुखदानि। वीर समुद्र देखियो आनि ॥ २ ॥

उन्होंने जहाँगीर पुर में अनेक वस्तुयें देखीं, उनके नाम कहाँ तक गिनाऊँ। सुख देने वाले तालाबों और नदियों को देखा और लौटकर समुद्र को देखा ॥२॥

बीर बीर सागर को देखि। बरनन लागे बचन बिसेखि ॥
अति अनद भूतल जल खड। अद्भुत अमल अगाध अखड ॥ ३ ॥

बीर सागर को देखकर उसका वर्णन करने लगे। पृथ्वी पर वह जल खण्ड अत्यधिक शुद्ध और आनद प्रद है ॥३॥

फूले फूलन को आवास। मानौ सहित नक्षत्र अकास ॥
अति सीतलता कैसो देस। ग्रीषम रितु पावत न प्रवेस ॥ ४ ॥

फल फूलों से आवास इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो आकाश नक्षत्र खिले हों। वहाँ पर सदैव शीतलता ही बनी रहती है। ग्रीष्म ऋतु का प्रवेश भी नहीं होने पाता है ॥४॥

सुभ सुगध ताके मौ ओक। मानहु सुन्दरता कौ लोक ॥
जग सतापनि की हरतार। मनहु चद्रिका कौ अवतार ॥ ५ ॥

सुदर सुगध का वह घर है। मानो वह सुदरता का ससार है। ससार की गर्मी को हरने के लिये चन्द्रिका ने वहाँपर अवतार लिया है ॥५॥

तंग तुरग घनानि की राजि। वर्षत पवन बुंद जल साजि ॥
अरुन जोति दामिनि सचरै। जगत चित्त की चिंता हरै ॥ ६ ॥

रिमझिम रिमझिम पानी बरसता है। उसके बीच में चमकती हुई अरुणिम विद्युत लोगों की चिंताओं को हर लेती है ॥६॥

नाचत नीलकंठ चहुँ दिसा। बरखत बरसा वासर निसा ॥
फूले पुंडरीक चद्रभान। स्वेतराम-चद्रिका समान ॥ ७ ॥

चारों दिशाओं में नीलकण्ठ नृत्य करता रहता है और रात दिन वर्षा हुआ करती है। फूले हुए पुडरीक के पुष्प चन्द्रमा की श्वेत किरण की भाँति सुदर लगते हैं ॥७॥

हमनीन सग सोहत हस। बसत सरद सर सोभित अस ॥
सीतल जल अति सीतल बात। सीतल होत छुवत ही गात ॥ ८ ॥

शरद ऋतु में हँस हँसिनियों के साथ शोभा देते हैं। वहाँ पर शीतल वायु है और शीतल ही जल है जिसे छूने मात्र से शरीर शीतल हो जाता है ॥८॥

ऊपर लसत हस सौं हस। सरद बसत सिसिर कौं अस ॥
चदन बदन कैसी धूरि। उडत पराग दसौ दिसि धूरि ॥ ९ ॥

उसके ऊपर हंस की भांति सुशोभित है, वह शरद, बसन्त एव शिशिर के अंश के समान है। दसों दिशाओं में इस प्रकार से धूल उड़ रही है माना चदन का बदन उड रहा हो ॥९॥

करि करि सरवर मैं कुल केलि। फूले फूल फाग सी खेलि ॥
बसंत सरवर मैं हेमत। मुदित होत सब सत ॥१०॥

सरोवर में केलि करके पुष्प फाग सा खेल कर बढे हुए हैं। सभी सन्तों ने सरोवर में स्नान कर बसन्त के मास की प्रसन्नता का अनुभव किया ॥१०॥

भ्रमर भँवर बग गज मैमत्त। पद्मिनी सोहै अति अनुरक्त ॥
बोलत कलहसी रसभरैं। जनु देवी देवति अनसुरैं ॥११॥

बगुले, भ्रमर और हाथी मस्त होकर घूम रहे हैं। पद्मनी अनुरक्त सी सुशोभित है। कलहसी रसयुक्त वाणी में बोल रहे हैं। मानो वे सभी देवों का अनुसरण कर रहे हैं ॥११॥

सोहत समर समेत बसत। बिरही जन कौं दुख अनत ॥
पाचौं रितु मानहु मर बसैं। सिगरे ग्रीषम रितु को हँसैं ॥१२॥

बसन्त अपने समर सहित सुशोभित है और बिरही जनों को दुख दे रहा है। पाचों ऋतुयें मिलकर मानों ग्रीष्म ऋतु पर हँसी कर रही हों ॥१२॥

फूले सेत कमाल देखियैं । सुन्दरता हिय से लेखियै ॥
फूले नील कमल जल थैन । मानु मुंदरता के नैन ॥१३॥

फूले हुए खेना की सुन्दरता का अनुभव हृदय से कीजिये । नीले फूले हुए कमल इस प्रकार से सुन्दर लग रहे हैं मानों सुन्दर नेत्र खिले हो ॥१३॥

कुल कल्हार सुगंधित भनो । सुभ सुगंधता के सुख मनो ॥
प्रफुलित सूर काकनद क्रिये । मानहु अनुरागिनि के हिये ॥१४॥

पुष्पित कुल्हार इतने सुन्दर हैं मानो वे साक्षात सुगन्ध के घर हों । प्रसन्न होकर सूर्य ने कमल को खिला दिया है । ऐसा लगता है कि वह खिला हुआ कमल अनुरागी जनों का हृदय हो ॥१४॥

पीत कमल देखत सुख भयो । मनो रूप के रूपक रयो ॥
राते नील कंज कर हाट । तापर सोहत जनु सुरराट ॥१५॥

पीले कमल को देखकर बहुत सुख हुआ मानों वह पीला कमल सौंदर्य का रूपक हो । नील और लाल कमलों के दलों पर ऐसा लगता है कि मानो इन्द्र स्वयं ही उन पर विराजमान हैं ॥१५॥

बैठे जुग आसन जुग रूप । सूर को सेवाकरि अनुरूप ॥
सोधि सोधि सब तंत्र प्रसिद्ध । जल पर जयत मंत्र सौसिद्ध ॥१६॥

खिले हुए कमलों के जोड़ों को देखने से ऐसा लगता है मानों वे सूर्य की सेवा में लगे हुए हैं । मानों अनेक प्रकार के तंत्रों को पढ़कर वे जल पर अपनी विजय को सिद्ध कर रहे हों ॥१६॥

पावक हरन काय मन राज । राजसीय वस कीवे काज ॥१७॥

पापों को हरने के लिए उसने राजसी रूप बना रखा है ॥१७॥

सवैया

सुन्दर सेत सरोरुह में कर हाटक हाटक की दुति सोहै ।
तापर भौंर भलो मन रोचन लोक बिलोचन की रुचि रोहै ॥

देपि दई उपमा जल देविनि दीरघ देवनि के मन मोहै।
केसव केसवराई मनौ कमलासन के सिर ऊपर सोहै ॥१८॥

कमलों की हार में कान्ति फैली हुई है। उस पर मडराते हुए भ्रमर लोगों के मनों का अपनी ओर आकर्षित करते हैं और नेत्रों को अच्छे लगते हैं। उसे देखकर जलदेवियों ने उपमा दी कि मानों स्वयं विष्णु कमलासन के ऊपर सुशोभित हो रहे हैं ॥१८॥

दोहा

सोषन बंधन मथन भय लै जनु मन मन सोचि।
बीरसिंह सरवर बस्यौ सिंधु सरीर सकोचि ॥ १६ ॥

शोषण, बन्धन और मथन के सकोच से समुद्र स्वयं बीरसिंह के सरोवर में निवास करने लगा ॥१६॥

चौपाई

मगर मच्छ बहु कच्छप बसे। सारस हंस सरोवर लसैं ॥
चचरीक बहु चकई चकोर। बहु सुरभि मृगगन चितचोर ॥२०॥

अनेक मगर, मच्छ, कछुए, हंस आदि उसमें निवास करते हैं। चंचरीक और चकोर उसमें आवास करते हैं। कहीं-कहीं पर घूमते हुये मृगों की सुरभि चित्त को चुरा लेती है ॥२०॥

कहूं गयद कलोलनि करैं। करि कलभनि के मन हरैं ॥
बहु सुंदरि सुंदर जल भरैं। कहुं महा मुनि मौननि धरैं ॥२१॥

कहीं कहीं पर कलोल करते हुए गयंद हाथी के बच्चों के मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। कहीं कहीं पर मुनियों के गण उसमें मौन धारण करते हैं ॥२१॥

दोहा

बीरसिंह नर देव की सेवा करौ सभाग।
बाढैहो नृपति बढै देपहु भूमि तडाग ॥२२॥

वीरसिंह देव की सेवा कीजिये। तालाब को देखकर इसका अनुमान कर सकते हो कि किस प्रकार से बढ़ने पर सम्पत्ति बढ़ने लगती है अर्थात् पैसे के पैसा पास आता है ॥२२॥

कवित्त

जम्बुक जमाति कौल कामिनी विभाति जहां,
करि कुल काम केलि प्रीति किलकति है।
जहाँ आक कनक कमल कुवलय,
तहाँ गीधनि के थल हंस हंसिनी लसति है॥
जहा भूत जामिनी समेत तहा केसोदाम,
देवनि सी देवी जलकेलि विलसति है।
देषि बीर सागर को नागर कहत,
सपति बीरेस जू कें बाधेही बढति है॥२३॥

जहां पर किसी समय सुअर श्रगाल थे वहा पर इस समय हाथियों के समूह से काम केलि करते है। जो आक कनक कमल गीधों आदि का स्थल था वहा पर इस समय हंस हंसनिया विराजमान हैं। जहा पर भूत भूतनिया निवास करते थे वहा पर देव देवनियों के साथ इस समय विलास कर रहे हैं। वीरसिंह के सागर को देखकर चतुर लोग कहते हैं कि वीरसिंह की सम्पत्ति बाधने के पश्चात् भी बढ़ती है॥२३॥

चौपाई

चले तहां तें अति सुख पाइ। नदी बेतवे देषी आइ।
देखि दंडवत करे अपार। कलि गंगा कीनी करतार॥२४॥

वहा से अत्यधिक सुखी होकर बेतवा नदी के किनारे पर आये। उसे देखकर प्रणाम किया। बेतवा नदी को देखने पर ऐसा लगा कि मानो भगवान ने उसे कलियुग की गंगा बनाया है॥२४॥

कबहू पूरब उत्तर बहै। सरिता स्वामिनि मग जग कहै॥
तुंग तरंग प्रताप प्रचंड। भनो पगा पडन पापड॥२५॥

कभी कभी पूर्व उत्तर में प्रवाहित होती है। सारा संसार उसे सभी सरिताओं की स्वामिनी कहते हैं। उसकी ऊँची ऊँची तरंगे मानो पाखंडों का खण्डन करने वाली हैं ॥२५॥

गर्जति तर्जति पाप कपाटा। बात करति जनु पातक दाटा ॥
सुबरन हर सुबरन हर रचै। पर त्रिया पर त्रिया प्रिय सचै ॥२६॥

पापों का विनाश करके वह गर्जना तर्जना करती है। बात करती है मानो पटक रही हो। दूसरे के वर्ण का विनाश करके अपने अनुकूल बना लेती है। दूसरी स्त्रियों को भी वह प्रिय लगती है ॥२६॥

सुरापी सुरापी सुर पग धरै। ब्रह्म ब्रह्म दोषनि को करै ॥
तपसी लायें नगनि न तजै। आपु सद्गति अगतिनि भजै ॥२७॥

सुरापी धीरे धीरे पग रखता है। अनेक ब्रह्म दोषों को वह करती है। तपसी के होने पर भी अपने नगेपन को नहीं छोड़ते हैं, किन्तु स्वयं दूसरों की अगति का भजन करती है ॥२७॥

दिगबार अम्बर उर धरै। यति प्रताप पन्थी मन हरै ॥
जीवनि हारिन के मन हरै। विष मय अमृत पान फल करै ॥२८॥

दिगबार अम्बर को हृदय में धारण करता है। साधुओं, प्रतापी राजाओं तथा पथिकों के मनों को अपनी ओर आकर्षित करती है। जीवन को नष्ट करने वाली वस्तुओं के मन को भी अपनी ओर आकर्षित करती है। विषय तुल्य वस्तुओं का भी अमृत के सदृश पान करती है ॥२८॥

जद्यपि नेह दशा कैं हीन। प्रगट प्रचंड पवन सौं लीन ॥
वीरसिंह कुल दीपक जोति। जाके जल अवदूनी होति ॥२९॥

यद्यपि वह स्नेह अवस्थाओं से बिलकुल दूर है, क्योंकि प्रचंड वायु में वह सदैव ही लीन रहती है। फिर भी वीरसिंह के वंश का दीपक उसके जल से द्विगुणित प्रकाशित होता है ॥२९॥

कबहुँ कै सूरज कैसी लगै। सीर रत्न चर्चित जग मगै ॥
कबहुँ कै जमुना जसमाल। सोभित संग गोकुल गोपाल ॥३०॥

कभी कभी उसकी दीप्ति सूर्य की भाति लगती है। अनेक हीर रत्नों से जटित, वह जगमगा रही थी। उसके गले में कभी यमुना यशमाला के रूप में शोभा देती है और कभी उसके साथ में गोकुल के गोपाल शोभित होते हैं ॥३०॥

सिंधुर लसत सिंधु सी लेपि। गडक मनी सिलामय देपि ॥
सोभित सोभा जाऊ छियैं। तुगारंन्य तिलक सौं दियैं ॥
मह्म २ सूर दुति सी लेखियैं। भरत षड द्विज सी देखियै ॥३१॥

शिलायुक्त गडक सिंदूर की भाति शोभित है। जिसके छूने मात्र से ही शोभा शोभित होती है। तुगारण्य तिलक सा दिये हुये है।

ब्राह्म की कांति सी दिखाई पड़ती है। भारतखण्ड में वह द्विज की भाति शोभित थी। ॥३१॥

सवैया

औंडछैं तीर तरङ्गिनि वैत वै ताहि तरै रिपु केसव को है।
अर्जुन बाहु प्रवाहु प्रवोधि तरे वाज्यौ राजनि की मति मोहै॥
जोति जगै जमुना सी लजै जगलोचन लोलिट पाप वियो है।
सूर सुता सुभ संगम तुग तरङ्ग तरगित गंगा सी सोहै ॥३२॥

ओड़छा के किनारे बेतवा नदी है, उसे पार करने का साहस किस शत्रु में है। अर्जुन का प्रबोध करने वाली तथा राजाओं की मति को आकर्षित करने वाली है। उसकी ज्योति यमुना की भाति लज्जित हो जाती है और ससार के पापों को नष्ट कर दिया है। यमुना और बेतवा का सगम उसी प्रकार शोभा देता है जिस प्रकार गगा और यमुना का *सगम शोभा देता है ॥३२॥*

चौपाई

स्नान करत द्विज दर्पन देव। पूरति दान देत नर देव ॥३३॥

उसमें सभी ब्राह्मण स्नान करते हैं। सभी मनुष्य पूर्ण दान देते हैं ॥३३॥

दोहा।

बारन बाजी नारि नर जहँ-तहँ पालनि पेलि।
दुहू कूल अनुकूल कै करत देखियत केलि ॥२४॥

बारन, घोड़े, स्त्रिया, मनुष्य सभी दोनों किनारों पर बिना किसी वैमनस्य के केलि करते हैं ॥२४॥

इति श्रीमन्मण्डल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री राजवीरसिंघ-देवचरित्रे दानलोभ सवादे ब्रह्मसागर वैत्रवती वर्णन नाम पञ्चदशमः प्रकाशः ॥२४॥

अथ नगरी वर्णन ॥ चौपाई ॥

नगरी की दुति दूरिते देखा दान प्रवीन।
मनहु दूसरी द्वारिका सरि समुद्र के तीर ॥ २ ॥

दान ने नगरी का ऐश्वर्य दूर से ही देखा। मानो दूसरी द्वारिकापुरी की समानता करने वाली नगरी समुद्र के किनारे बसी हुई है ॥२॥

नीचे की चौपाइयों में पताकाओं की विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

चौपाई

प्रति मदिरन पताका लसैं। अति ऊँची आकासहि ग्रसैं।
बरन बदन अद्भुतकारिनी। तपसी लाद दड धारिनी ॥ ३ ॥

प्रत्येक मदिर के ऊपर पताकायें शोभित हैं जो कि आकाश मण्डल को ग्रस रही हैं। अनेक प्रकार के रगों को उत्पन्न करने वाली हैं अथवा साधुओं के धारण करने का ऊँचा दण्ड है ॥३॥

भवन सलाक निचल गामिनी। मानहु उरझि रही दामिनी।
सोभा सिंधु तरंगै मनौ। द्रोनाचल ओषधि सी मनौ ॥ ४ ॥

पताका की सलाक भवन के नीचे तक गई है। यह सलाक ऐसी सुन्दर लगती है मानों विद्युत उलझ गई हो। लहराती हुई पताकायें

सागर की तरंगों की भांति सुशोभित हो रही हैं पताकायें द्रोनाचल पर्वत की औषधि की भाँति भी प्रतीत हो रहीं हैं ॥४॥

नगर निगर नागर बहु बसै। तिनकी धर्म सिद्धि सी लसै ॥
कैधौं धर्म वृद्धि लेखियें। प्रति घर देवी सी देखियें ॥ ५ ॥

नगर में अनेक बसे हुए नागरिकों की मानो धर्म सिद्धि का स्पष्ट करने वाली वे पताकायें हैं॥ या वे पताकायें धर्म वृद्धि को दिखा रही हैं। वे प्रत्येक घर में देवी के समान दिखा रही हैं ॥५॥

गृहगन दोष हरति हित भरी। पुर रक्षा निधि सी विधि करी ॥
किधौं भवन दीपति सी लगै। नव रस माह मास जगमगै ॥ ६ ॥

हित से युक्त वे अनेक ग्रह का विनाश करती हैं और अनेक प्रकार से ग्राम की रक्षा करती हैं। भवनों में वे कान्ति युक्त होकर चमक रही हैं। उनके देखने से नवों रसों की जाग्रत हृदय में होने लगती है ॥६॥

परम प्रताप ज्वलनिकी ज्वाल। प्रगटई बहु बेष विसाल ॥७॥
तेज युक्त अग्नि की ज्वाला अनेक वेषों में प्रकट हुई है ॥७॥

दोहा

जीति कीरति की लई सत्रुन की बहु भांति।
पुर पर बांधी सोभिजै मानौ तौनि की पाँति ॥८॥

शत्रुओं की कीर्ति को अनेक प्रकार से जीत लिया है। ग्राम में बँधी हुई मानों तान की पँक्ति सुशोभित हो रही हो ॥८॥

नीचे की चौपाइयों में हाथियों का वर्णन है।

चौपाई

चहुँ ओर बहु कोटि सुवेस। सुखद सूर कैसी परवेस ॥
वीर प्रताप ज्वलनि की ज्वाल। राजाति जनुचहुँ ओर विसाल ॥ ६ ॥

चारों ओर अनेक वेषों को धारण किए हुए हैं। सूर्य की भांति उनका वेष अत्यधिक सुख देने वाला है। सभी ओर वीर राजाओं का प्रताप फैला हुआ है ॥६॥

बाहिर कोटि मत्त गज बसै। जहँ तहँ मानो घना घन लसै॥
करिनी कलभनि लै एकत्र। मनौं विंध्य की पुत्र कलित्र॥ १०॥

बाहर अनेक हाथी सुशोभित हैं। मानो जहाँ तहाँ बादल शोभित हों। हथिनी अपने बच्चा को लेकर एक स्थान पर इस प्रकार लग रही हैं मानो विंध्य का पुत्र कलित्र हो॥१०॥

बीच बीच दीरघ मातंग। नखसिख चंदन चर्चित अंग॥
जनुमंदर के सिर बिसाल। दिग्गज बल जे मंथन काल॥११॥

बीच बीच में बड़े बड़े मस्त हाथी हैं जिनके नख शिख चंदन से चर्चित हैं। मन्दिरों की चोटी की भाँति वे बड़े हैं। ये हाथी बड़े ही शक्तिशाली हैं॥११॥

दिग दंतिन के मनौं कुमार। दिगपालनि दीनैं उपहार॥
चंदन चंदन सूंडनि भरे। कहुँ सिंदूर धूरि धूसरे॥ १२॥

दिशाओं के हाथियों के मानो वे कुमार हैं, जिन्हें दिग्पालों ने उपहार स्वरूप दिया है। सूंडों में कहीं तो चन्दन लगा हुआ है और कहीं सिंदूर और कहीं धूल लगी हुई है॥१२॥

बीर रुद्र रस मनहुँ अनंत। डोलत भूतल मूरतिवन्त॥
दीरघ दरवाजे लेखिये। अष्ट दिसा मुख से देखिये॥१३॥

मानों रुद्र देव स्वयं वीर रस का रूप धारण किए हुए पृथ्वी पर घूम रहे हैं। बड़े बड़े दरवाजे हैं जो कि अष्ट दिशा के मुख की भाति दिखाई देते हैं॥१३॥

जितने हैं जा दिसी के देस। तिनके जन तहँ करत प्रवेस॥१४॥

जितने भी देश हैं, उन सभी के रहने वाले वहाँ पर आया करते हैं॥१४॥

दोहा

आठौ दिसि के सील गुन भाषा वेष विचार।
बाहन बसन विलोकि जै केसव एकहि बार॥ १५॥

आठों दिशाओं का शील गुण भाषा, वेष, विचार, सवारी, वस्त्र आदि सब एक ही स्थान पर देखने को मिल जाता है ॥१४॥

नीचे की चौपाइयों में कोटों का वर्णन है।

चौपाई

रचे कोट पर जहँ तहँ जँत्र। सोधि सोधि दिन पढ़ि पढ़ि मन्त्र॥
विविध हथ्यारन की कोठरी। दारु गोलन की ओबरी॥ १६॥

अनेक कोटों पर जहाँ तहाँ मन्त्रों का उच्चारण करके तथा उन्हें शोध करके जन्त्रों की रचना की गई है। अस्त्रों को रखने की अनेक कोठरियाँ हैं। बारूद और गोलों को रखने के लिये ओखलियाँ हैं ॥१६॥

दोहा

कलभनि लीनैं कोट पर खेलत सिसु चहुं ओर॥
अमल कमल पर पर मनो चचरीक चित चोर ॥१७॥

कोटों पर हाथी के बच्चों को लिए हुए अनेक शिशु क्रीडा करते हैं। मानो स्वच्छ मान के ऊपर वे कमल भ्रमर की भाँति चित्त को हरने वाले हैं ॥१७॥

चौपाई

येक गुनीं गुन गावत भले। येक विदा ह्वै घर को चले॥

सभी गुणी जन गुणों का वर्णन करते हैं। एक गायक जाता है और उसके स्थान पर दो आ जाते हैं ॥१८॥

दँडक

भुमिया भूपाल राउ सामय जन समीप,
गुनी रावे सुख मढ़ि मढ़ि।
केसादास नगर निवास सोहैं आम पास,
अपने अपने सुमग लागे जस पढ़ि पढ़ि॥
राजा चोर मिद सब दानैं दि विदा कै हेम,
हय हाथी दै दै लै लै मोल बढ़ि बढ़ि।
मानहु चतुर्भुज के पाई दोप चले दिगपाल से,
दिगतर कौं दिगगजन चढ़ि चढ़ि ॥१९॥

भूपाल राय अनेक गुणी लोगों को सुख पूर्वक अपने पास रख छोड़ा है। सभी यश का पाठ करते हुए नगर में निवास करते हैं। वीरसिंह ने सभी को हाथी, घोड़ा, का दाम सोना दे दे कर विदा कर दिया। जिस प्रकार दिगपाल चतुर्भुज को देखकर अपने हाथियों पर बैठ कर चलते हैं, उसी प्रकार वे लोग वहाँ से चले ॥१६॥

नीचे की चौपाइयों में सेना का वर्णन है।

चौपाई

आठचमू चतुरगणि भरी। आठहु द्वार देखिये खरी ॥
चारि चारि घटिका परमान। घर ह जाँई जब आवै आन ॥२०॥

चतुरगणी (पैदल, हाथी घोड़ा, ऊँट) आठ सेनायें आठों द्वारों पर सदैव खड़ी रहती हैं। एक सेना को चार घड़ी वहा पर रहना होता है। जब उनकी ड्यूटी समाप्त हो जाती है तब वे अपने घरों को चली जाती हैं ॥२०॥

इहि विधि निसि वासर सविलाप। सोहत द्वार बारहू मास ॥
दरवाजे भितर जब भये। दरबानि नै पाछे छनिछये ॥२१॥

इस प्रकार से रात दिन बारहों मास सेनायें द्वारों पर खड़ी रहती हैं। दरवाजों के अन्दर घुसने पर द्वारपाल मिलेंगे ।२१॥

ग्रामवासियों के घरों का वर्णन है।

देषी दीह अटारी अटा। वरन वरन छतरनि की छटा ॥
उज्जल वीथी विसद समान। रहित रजोगुन जीव निधान ॥२२॥

अनेक बड़ी बड़ी अटारियाँ हैं। उन पर अनेक रङ्ग की छतरियों की छटा है। स्वच्छ, उज्ज्वल मार्ग हैं। रजो गुण से दूर सभी प्राणी वहाँ पर निवास करते हैं ॥२२

दस दिसि देखिये दीप विसाल। प्रति दिन नूतन वदन माल ॥
घर घर वहु विधि मगल चार। बाजत दुंदुभि मुरज अपार ॥२३॥

दसों दिशाओं में बड़े बड़े दीपक हैं और नित्य ही नई बन्दनवार रहती है हर घर मुरज और दुन्दुभी को बजा कर मङ्गलाचार मनाया करता है ॥२३॥

गावत गीत सरस सुन्दरी। चतुर चारु सो सुफरक फरी ॥
सुन्दर दोऊ देव कुमार। गये चतुर्भुज के दरबार ॥२४॥

सभी सुन्दरियां सरस गीतों को गाती हैं। वे सुन्दरियां चतुर और सुन्दर हैं। चतुर्भुज के दरबार में दोनों सुंदर कुमार गये ॥२४॥

महाराज चतुर्भुज के दरबार का वर्णन है।

देखे जाइ चतुर्भुज देव। जिनकी करत जगत सब सेव ॥
चँदन चर्चित येक प्रवीन। सोभत तहं बजावत बीन ॥२५॥

चतुर्भुज देव को जाकर देखा जिनकी सारा संसार सेवा करता है। कोई चन्दन को लगाये हुए वहां पर सुशोभित है और कोई बीन को बजा रहा है ॥२५॥

जिनकी धुनि सुनि मोहै सभा। मानौं नारद पावत प्रभा ॥
पढ़त पुरान एक बहु भेद। मानौं सोभित श्री सुकदेव ॥२६॥

उस बीन की ध्वनि का सुनकर सारी सभा मोहित हो जाती है। ऐसा लगता है कि नारद की प्रभा हो। पुरान का पाठ अनेक प्रकार से ने वाला सुकदेव की भांति सुशोभित हो रहा है ॥२६॥

बेद पढ़त बहु बिप्र कुमार। मानौं सोभत सनत कुमार ॥
सेवत सन्यासी तजि आधि। मानौं घटे बहु सिधि समाधि ॥२७॥

अनेक ब्राह्मणों के बालक वेदों का पाठ कर रहे हैं। वे सभी सनत कुमार की भांति लग रहे हैं। अनेक सन्यासी आधियों को छोड़कर *इस प्रकार तपस्या में लगे हुए हों मानो सिद्धियों ने समाधि लगा* ली हो ॥२७॥

पंडित करत बिचार अनत। षट दरसन जे मूरति वत ॥
गावत बजावत नाचत येक। जनु किन्नर गंधर्व अनेक ॥२८॥

पंडितगण छः दर्शनों पर विचार करते हैं। कुछ लोग गाते बजाते हैं मानों गन्धर्व और किन्नर लोग नृत्य कर रहे हों ॥२८॥

तहां दिगम्बर नर देखियैं। महादेव जू से लेखियैं ॥
तिह अगन अगना अपार। भूषन पर पूरन सिंगार ॥२६॥

वहाँ पर महादेव के समान अनेक मनुष्य दिगम्बर रूप में भी मिलेंगे। उसी स्थान पर शृङ्गार सम्बन्धी अनेक आभूषण भी उपलब्ध होंगे ॥२६॥

क्षमा दया सी मूरति वंत। श्री ह्री सी समुझंत संत ॥
सोभति अति सुन्दर सुभमदा। मख चक्र कर पंकज गदा ॥३०॥

क्षमा दया के समान वहां पर मूर्तिवत है, जिसे सभी संत लक्ष्मी के तुल्य ही समझते हैं। हाथ में कमल, गदा, शंख तथा चक्र को लिए शुभ सदा शोभित है ॥३०॥

पद ऊपरै स्याम तल लाल। बरनत नेसव बुद्धि बिकराल ॥
मानौं गिरा जमुना जल आयी। सेवत चतुर चरण चितलाई ॥३१॥

उसका चरण ऊपर श्याम वर्ण का है और नीचे का जो तल भाग है वह लाल है। उनकी शोभा इस प्रकार से लग रही है मानो सरस्वती और यमुना दोनों आकर मिल गयी हों। उसके चरणों की सेवा चित्त लगाकर चतुर लोग कर रहे हैं ॥३१॥

हिरा मणिमय नूपुर आयी। सेत पाट पर जटे सुभाई ॥
नख द्युति चमकति चरण मुकुर। गंगा जल कैसे जल बुंद ॥३२॥

मणि युक्त नूपुरों को धारण किए हुए उसने वहां पर प्रवेश किया। उसने अपने श्वेत वस्त्रों पर सुन्दर जड़ाई का काम कर रखा है। उसके चरणों के नख इस तरह चमक रहे हैं मानों गङ्गा जल की बूँदे चमक रही हों ॥३२॥

गज मोतिन की माला लसै। साधुन के मन उर बसै ॥
कंठ माल मुकुतनि की चारू। श्रुति बरनन कैसो परिवारू ॥३३॥

गजमोतियों की माला जो कि उसके गले में पड़ी हुई है वह साधुओं के मनको अपनी ओर आकर्षित कर रही है। गले में सुन्दर मुक्ताओं की माला है। कानों की शोभा का वर्णन ही नहीं किया जा सकता है ॥३३॥

भृगु लगइ सोभा कौ सदन। श्री कमला कर केसौ पदन॥
कटितट छुद्र घटिका बनी। बीच बीच मोतिन की दुति घनी ॥३४॥

कमला के हाथ में जिस प्रकार से कमल शोभा देता है उसी प्रकार भृगु शोभा का घर है। बीच बीच कमर की कर्धनी की छोटी छोटी घण्टियां बजती हैं। उस कर्धनी के बीच बीच मोतियों की सुंदर काँति है ॥३४॥

चंदन तिलक स्वेत सिर पाग। मुक्ता श्रुति सोभित सुभाग॥
देखत होइ सुद्ध मन छुद्र। निकसे मथि जनु छीर समुद्र ॥३५॥

चन्दन और तिलक लगाये हुए हैं और शिर पर सफेद पगड़ी धारण किये हुये हैं। कानों में मुक्ता सुशोभित हैं। उसको देखने से उसी प्रकार मन शुद्ध हो जाता है जिस प्रकार से समुद्र मन्थन से निकले ही विष्णु को देखने के बाद मन पवित्र हो जाता था ॥३५॥

सीस छत्र मरकट मय दंड। मानों कमल सनाल अखंड ॥३६॥

शिर पर छत्र शोभा देता है और हाथ में दण्ड है जो कमल की सनाल की भांति लगता है ॥३६॥

दोहा।

बरनै कहा चतुर्भजहि केसव बुद्धि तुसार।
जिनकी सोभा सोभिजैं सोभा सब ससार ॥३७॥

केशव अपनी बुद्धि अनुसार चतुर्भुज का वर्णन करते हैं, जिनकी शोभा से ही सारा संसार शोभित है ॥३७॥

॥ चौपाई ॥

करि प्रणाम तब राज कुमार। देखत नगर गये बाजार ॥३८॥
राजकुमार प्रणाम करके नगर को देखने के लिए गये ॥३८॥

इति श्रीमतसकल भूमण्डालाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वारसिंघ देव चरित्रे श्री चतुर्भुज दर्सन नाम पोडसो प्रभास. ॥१६॥

बैठक तथा नगर का वर्णन नीचे की चौपाइयों में है।

अति लामी अति चौरी चारु। निसद बैठकी उंच विचारु ॥
दुपद चतुप्पद जन बहु भाँति। भाजन भोजन भूख न जाति ॥१॥

वह अत्यधिक लम्बा और चौड़ा था। बैठक स्वच्छ थी जो कि उच्च विचारों को पैदा करती थी। उसमें अनेक दुपद चतुपद लोग थे। बहुत प्रकार की भोजन सामग्री, वस्त्र तथा आभूषण थे॥ १ ॥

डासन वासन आसन जानि। मूल फूल फल नव रस पानि ॥
आयुध सुखद सुगंध विधान। चित्र विचित्र विविध तन त्रान ॥२॥

वस्त्र और आभूषण के अतिरिक्त नवरसों से युक्त फल फूल थे। आयुध सुख देने वाले तथा सुगंधित थे। अनेक प्रकार के चित्रों से कवच चित्रित थे॥ २ ॥

धातु धार मय सन कर्पास। रोम चर्म मय पाट विसाल ॥
निधि मय जनु भय कुबेर की धरा। चिंतामनि कैसी कदरा ॥३॥

कर्पास युक्त धातु धार है। रोम चर्म युक्त विशाल पाट है। कुबेर की निधि की भांति उसके पास धन संचित है। चिंतामनि के समान कदरा है॥ ३ ॥

मड़ई बहु मंडित चहुँ पास। देखन लागौ नगर निवास ॥
राजा लोइन के चहु ओर। विप्र सोम सोभै चित चोर ॥४॥

अनेक छोटी छोटी मड़ई चारों ओर पड़ी हुई हैं। कुमार नगर को देखने लगा। राजाओं के चारों ओर सुशोभित होने वाले ब्राह्मण मन को चुराते हैं ॥ ४ ॥

पूर्वादिक के विधि ब्यौहार। चौहू दिसि चारयौ दरबार॥
राजै स्वेतसिंह दरबार। देखि देखि गज भजहिं अपार ॥५॥

व्यवहार की रीति चारों दिशाओं के चारों दरबारों में पहले का है। स्वेतसिंह दरबार में विराजमान है जिसे देखकर सभी हाथी भागते हैं ॥५॥

एकनि रुचिर वरन गजराज। सुनि सुनि होति दिग्गजनि लाज॥
एकनि बाजी परम उदार। एक वृषम नंदी आकार ॥६॥

एक ही रङ्ग के अनेक हाथी हैं, जिनके सौंदर्य को सुनकर दिग्गज तक लज्जित हो जाते हैं। घोड़े बड़े ही उदारवृत्ति के हैं। बैलों का आकार नन्दी बैल की भांति है ॥ ६ ॥

इक दरबार मुहल्ला दाग। दूजै दान देत वर भाग॥
तीजै नगर न्याउ देखिये। चौथे चिर दफ्तर लेखिये ॥७॥

दरबार का एक मुहल्ला दाग दूसरे श्रेष्ठ दान देता है तीसरे नगर का न्याय और चौथे दफ्तर देखने योग्य हैं ॥७॥

भीतर पाँच चौक तिहिं चारु। तिनकौ बरनि कहौ बिस्तारु॥
एकु चौक मैं सोभन सभा। दूजै नृत्य गीत की प्रभा ॥८॥

अन्दर सुन्दर पाच चौक हैं। उनका विस्तार से वर्णन करता हूँ। एक चौक में सभा बैठती है दूसरे में नृत्य गान होता है ॥ ८ ॥

तीजै भोज करै परिवार। चौथे सेन सुमंत्र विचार॥
मध्य चौक सुन्दरि सुख करै। नर नारी पवनै सचरै ॥९॥

तीसरे में सम्पूर्ण परिवार का भोजन और चौथी चौक में सुमित्रसेन विचार करता है। मध्य चौक अत्यधिक सुन्दर और सुखदायी है। वह मनुष्यों में धवन का सन्चार करती है॥ ६ ॥

सात खंड अगन सत हारि। उपर दानि दिव्य पड विचारि॥
खंड चतुर्दस चतुरनि करै। चौदह भुवन भाव रस भरै॥१०॥

सात खण्डों में ससार विचार करते हैं। ऊपर के भाग के सम्बन्ध में अनेक प्रकार से विचार करते हैं, किन्तु चतुर लोग चौदह खण्डों में विचार करते हैं। चौदहों भुवन अनेक भाव रसों से परिपूर्ण हैं॥१०॥

जाके जे गुन रूप विचित्र। तहँ तहँ ताके चित्रै चित्र॥
इह विधि पांचै चौक प्रकास। सोभित मानो ऊँच अवास॥११॥

जिसके जो विचित्र गुण हैं, उन सभी के विचित्र प्रकार के गुणों के अनुरूप ही चित्र खींचे गये हैं। इस प्रकार से पांचों चौक सुशोभित हैं। वह इतने सुन्दर हैं कि मानो स्वर्गपुरी का आवास हो॥११॥

चारि चौक बरनै सुविलास। मध्य चौक अति सेत प्रकास॥
पीत सदन पर छतरी सेत। हाटक मुकुट सीस सुख देत॥१२॥

चार चौक विलासपूर्ण हैं और मध्य चौक श्वेत रङ्ग की है। पीत सदन पर सफेद छतरी है और उसके शिर पर सोने का मुकुट सुख देने वाला है॥१२॥

देखत मोहत सकल सुजान। जनु सुमेरु पर देव विमान॥
सोभित अमित अरुन आगार। तापर छतुरी स्याम विचार॥१३॥

उसे देखते ही सभी लोग मोहित हो जाते हैं। उसे देखने से ऐसा लगता है माना सुमेरु पर्वत पर देवों का विमान सुशोभित हो। उसका लाल वर्ण है, जिस पर श्याम वर्ण की छतुरी सुशोभित हो रही है॥१३॥

देखि मगहत राजा रंक। सोभित मजत सूर्य के अंक।
नील सदन भाभति बहु भाँति। निकट स्वेत छतुरी की पाँति॥
जनु बरखा हरषै उड़ि चलि। कहि केसव सोभहि सावली॥१४॥

नीले रङ्ग का चौक अनेक प्रकार से सुशोभित है, जिसके निकट सफेद छतुरियों की पंक्ति लग हुई है। ऐसा लगता है कि वर्षा हर्षित होकर उड़ी चली जा रही है (चौक का नील रङ्ग बादलों की ओर संकेत करता है और सफेद छतुरी पानी की ओर)! यह शोभा अत्यधिक सुन्दर है ॥१४॥

छतुरी स्यामल सुमिल समान। स्वेत महल पर रचै सुजान॥
उपमा कवि कुल कहत निसक। मानहुँ सोम समेत कलंक ॥१५॥

स्वेत महल पर श्यामल छतुरियाँ सुशोभित हैं, उसके सम्बन्ध में कवि निर्भय होकर उपमा देते हैं। यह ऐसा लगता है मानों चन्द्रमा अपने कलङ्क समेत वहा पर है ॥१५॥

लाल महल पर छतुरी स्याम। सोभत जनु अनुराग सकाम॥
तिन पर नील परेवा बनै। कमल कुलनि पर जनु अलि बनै ॥१६॥

लाल महल के ऊपर श्याम वर्ण की छतुरी है। उसे देखने से ऐसा लगता है कि सकाम अनुराग हो वहा पर विराजमान है। उसके ऊपर नीले परेवा बने हुये हैं, मानों कमलों पर भ्रमर हों ॥१६॥

बहु रंग महल मडली बनी। मंदिर मांझ स्वेत द्युति घनी॥
अमल कमल मैं मनहु समूल फूल्यो पुंडरीक कौ फूल ॥१७॥

अनेक रङ्ग की महल मडली बनी हुई है। मन्दिर में श्वेत कांति विराजमान है। पुंडरीक का पुष्प कमलों के बीच में खिला हुआ है ॥ ७॥

जब जब नगर विलोकन काज। तब बैठत राजा गज॥
पीत महल पर लसत अनत। मनौ मेरु जगमगल जयत ॥१८॥

समय समय पर नगर को देखने के लिये राजा और उसके सहयोगी वहा पर बैठते हैं। पीले महल पर अधिक शोभा देते हैं। मानों सुमेरु पर्वत पर जयत शोभित हो ॥१८॥

लाल सदन पर लसत सुजानु। मानो उदयाचल पर भानु ॥
स्वेत चरण पर राजत राज। ज्यौं कैलास पच्छि सिरताज ॥१९॥

लाल महल पर सुजान लोग इस प्रकार सुशोभित होते हैं मानों उदयाचल पर भानु ही उदित हो गया हो। श्वेत चरणों पर राजा उसी प्रकार सुशोभित है जिस प्रकार कैलास पर्वत पर पच्छियों का सिरताज सुशोभित होता ॥१६॥

स्याम बरण मोहैं नरनाथ। मनौ नीलगिरि पर जगनाथ ॥२०॥

श्याम वर्ण पै नरनाथ ऐसे सुशोभित ह मानो नीलगिरि पर जगनाथ सुशोभित हों ॥२०॥

दोहा

जब जब सदननि पर चढ़ै वीर सिंह नृपनन्द।
देखि द्वैज के चद ज्यौं होत नगर आनन्द ॥२१॥

जब जब वीरसिंह का पुत्र सदनों पर चढ़ता है तब तब नगर द्वितीया के चन्द्रमा को देखने के समान आनन्दित होता है ॥२१॥

खड खड किंकिन अति बनी। छाजनि हैं छबि छूटति घनी ॥
प्रगटित होति बल्लभनि प्रभा। मोहित देखि देव बल्लभा ॥२२॥

खण्ड खण्ड की अनेक किंकिनी बनी हुई है। छज्जों का सौंदर्य अनुपम है। स्त्रियों की कांति चारों ओर फैली हुई, जिसे देखकर देवों की स्त्रिया भी मोहित हो जाती हैं ॥२२॥

झर्झरिनि झलक झरोखनि लसैं। सूर सोम प्रति बिंबत ग्रसैं ॥
ऊपर तें अन्तर कमनीय। जहा रमति रामा रमनीय ॥२३॥

चन्द्रमा और सूर्य का किरणें झझरियों और झरोखों पर पड़ती हुई शोभा उत्पन्न करती हैं। ऊपर और अन्दर दोनों से वह सुन्दर है। वहा पर रमणीय स्त्रिया आनन्द करती है ॥२३॥

भवन देखि हयमाला गये। देखि देखि हिय हरषित भये ॥
अति दीरघ अति चौरी चारु। उज्वलि सोभा कैसो सारु ॥२४॥

भवन को देखकर हयशाला की ओर गये जिसे देखकर हृदय बड़ा ही प्रसन्न हुआ। हयशाला अत्यधिक बड़ी और चौड़ी है। उसकी उज्वलता शोभा का मूल है ॥२४॥

पट्टनरे मोटे ऊजरे। सोभ जतु बाईजनि केरे॥
सरस मरासन वांधी बनी। जरवाफनि की भूलौं घनी॥२५॥

घोड़ों के पट्ट मोटे और उजले हैं, मानो बाईजनि की शोभा हो। सुन्दर मरासन की काठी बनी हैं और जरवाफनि की झूलें हैं॥२५॥

मल्लूहा कुमैत के यह घनै। कुही कुमल किलकी कूदनै॥
कुरंग कररिया कारे बनै। कच्छी पच्छी के मन दनै॥२६॥

मल्लूहा कुमैत के घोड़े कूद कूद कर अपनी कुशलता प्रकट कर रहे हैं। कररिया घोड़े काले रंग के हैं जो कि कच्छ देश के घोड़ों का घमण्ड विनाश कर रहे हैं॥२६॥

खुरनि लिखैं भूमंडल पेचरी परकति परक पलनि कौं परी॥
पधारी पनकाई सुख देत। उपजे पुरासान के खेत॥२७॥

निगडेल घोड़े अपने खुरों से जमीन पर कुछ लिखते हैं, जिन से दुष्टों का दिल दहल जाता है। कधारी और पनकाई के घोड़े सुख देने वाले हैं, जिनका जन्म पुरासन के खेत में हुआ है॥२७॥

गुररी गिरद गात गुन भरे। गूढ़नि गोलनि मौलिक गरे॥
घूँघट घालि चलत गुन घनैं। लागत घाइनि रन मे घनैं॥२८॥

गुररी और गिरद जाति के घोड़ों के शरीर में गुण ही गुण भरे हुए हैं। वे घूंघट निकाल कर चलते हैं और युद्ध में चोटों को सहन करते हैं॥२८॥

चौधर चालि चाबुकी चारु। चतुर चित्त कैसी अरनारु॥
चाबुक चितन व रिस चौगुनी। पञ्चन लोचन मोहैं गुनी॥२९॥

अनगारु चतुर चित्त की भांति चचल है और वह चौधर चाल चलता है। चाबुक लगने ही उसका क्रोध बढ़ जाता है उसके चचल नेत्र गुणी लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं॥२९॥

आजति छौहैं अंगनि माह। छवा छवीले छुवे न जाहि ॥
जादरु जानि जनम ते बली। जोवन और जाति संदली ॥३०॥

छोहा अगों पर शोभा देता है और उनकी सुन्दर एड़ियाँ स्पर्श नहीं किया जा सकता है। आदर जन्म से ही शक्तिशाली है। वह अपने यौवन के बल से संदली तक चला जाता है ॥३०॥

ठेली ठौरि ठौरनि मौरवै। नागर निरख निरखि मनरवै ॥
डोरेहू न देत डग शुद्ध। डांकि डांकि धर परहि विरुद्ध ॥ ३१ ॥

स्थान स्थान पर चक्र घुमी करते हुये घूमते हैं जिन्हें देख देख कर नागरिकों का मन प्रसन्न हो जाता है। लगाम के तरासने पर ठीक ढग से पैर नहीं डालते हैं। जिधर का संकेत चलने को किया जाता है उसके विरुद्ध ही वे अपने पैरों को डाक डाक कर रखते हैं ॥३१॥

नैनि निपट नैन ज्यौं नवैं। नागर निगर निरखि मनुरवै ॥
ताते तेजी तरल तुषार। तातैं तनजा तेज अपार ॥ ३२ ॥

जब वह अपने नेत्रों को झुका लेता है तब नागरिकों के मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इसी कारण से उससे अधिक तेज़ी तुषार में है और उससे भी अधिक तेजी तनजा में है ॥३२॥

तुरकी तरतन तीर सी चालि। डग तुरग करै नृपलालि ॥
थूल्ह थुनी विन थकै न पथ। थल जल डगै न थापै पंथ ॥३३॥

तुरकी घोड़े तीर की सी चाल से चलते हैं। वे चलने में न तो कभी थकते हैं और न कभी जल थल के मार्ग में रुकते (अड़ना) ही हैं ॥३३॥

दू दू दांत दीह दौरनै। दूरि देस के देखत बनै ॥
धरि धूमरे घर घूमरे। धार धरण धावनि वधकरैं ॥ ३४ ॥

मटमैले रंग के घोड़े दूर से देखने में अत्यधिक सुन्दर लगते हैं। वे दाँत पीस कर पानी की धारा की भाँति दौड़कर बध करते हैं ॥३४॥

पीन पुथी नती पातरी। पाये पश्चिम दिसि की थरी ॥
पाथर पदपल्लव सी पीठी। पच कल्यान लगत अति दीठि ॥ ३५ ॥

पुथी पतली, नर्मी पतली, पैर कठोर तथा पीठ पत्ते के समान है, इस प्रकार का पचकल्यान घोड़ा (इसके चारों पाँव और माथे का रंग सफेद होता है और शेष भाग अन्य किसी रंग का होता है) देखने में सुन्दर लगते हैं ॥३५॥

फूले मननि फूल से अंग । फूल उठी तन तेज तुरंग ॥
चल के बादामी बलिवत । बीर चलोचि बर्नै अनत ॥ ३६ ॥

जिस प्रकार पुष्प फूल उठते हैं उसी प्रकार घोड़ों के अंग प्रसन्न आनन्द से फूल उठे हैं। बादामी घोड़े, अत्यधिक शक्तिशाली हैं और अनेक बीर चिलोची घोड़े हैं ॥३६॥

चद कमान उपजे बहु वेस। दै पठाये बालुका नरेस ॥
भूरे भौंरे भूरि गुनभर । भष्पर मुत्र भूषन मक्करे ॥ ३७ ॥

बालुका नरेश ने अनेक कमानवंशी घोड़ों का दान दिया। भूरे, सुदर, गुणयुक्त घोड़े, आभूषणों को धारण किये हुए हैं ॥३७॥

मूलतानी मागधी असेष। मत्स्य देस के मोहन वेस ॥
राजत मनरजित सुभ वेस। उपजे रोम राट के देस ॥ ३८ ॥

मुल्तानी, मागधी और मत्स्य देश के घोड़े सुदर वेश धारण किये हुये हैं। राट देश में उत्पन्न घोड़े अपने सुन्दर वेश से लोगों का मन रंजन करते हैं। ॥३८॥

लाषौरी लषि लाषनि लये । लीले लोल लक्षिये नये ॥
सुनंद सीतपुर सोहियैं । सिंधु तीर के सुर मोहियैं ॥ ३९ ॥

लाखौरी घोड़ों को सभी ने लिया है। लीले घोड़े सदैव नये प्रतीत होते हैं। सुनन्द घोड़े शीतपुरी में सुशोभित होते हैं। सिंधु तट के घोड़े देवों तक को आकर्षित करते हैं ॥३९॥

हीरा हिरनागर ही सनै। हरसिंह हीस हांसुराल बनैं ॥
जाई इराअन सो वधि जाई। लैन हाट नर जात सिराइ ॥ ४० ॥

हीरा, हिरनागर, हरसिंह, हौस, हामुव स आदि घोड़े इतने मूल्यवान हैं कि बाजार में व्यक्ति जब खरीदने जाता है तब वह भी इनके खरीदने में बिक जाता है ॥४०॥

मोल लये अति जदपि अमोल। अचल करत चित चिर्खान लोल।
अति ताते तन प्रगट तुषार। लोह लगे मुष उरसि उदार ॥ ४१ ॥

घोड़ा को खरीद लिया है, यद्यपि वे अमोल हैं। चचल चित्त को भी उनके नेत्र अचल कर देते हैं इसी कारण शरीर से तुषार प्रकट हो रहा है ॥४१॥

लोभ उवाच। दोहा ॥

दान सुजान सुनाइजैं हरषि हयनि की जाति।
कहौ सुभा सुभ आय अरू लछन लसि बहु भाँति ॥ ४२ ॥

हे दान! प्रसन्न होकर अब घोड़ों की जाति को सुनाइये। अनेक प्रकार के शुभ अशुभ लक्षणों का विचार करके कहिये ॥४२॥

दान उवाच। चौपाई ॥

पहिल सपच्छ हुते हय सबै। जहाँ तहाँ उडि जाते तबै ॥
रमियौ देषि तिनहि सुरराई। सालि होत्र पर मागे जाइ ॥ ४३ ॥

पहले घोड़ों के परवे होते थे। वे जहा भी चाहते थे उड़ जाते थे। उन घोड़ों को देखकर इन्द्र प्रसन्न हो गया उसने शालि होत्र से घोड़े मागे ॥४३॥

तेहि रिषि तिन पाइनि किये। देवनि दे नर देवनि दिये ॥
बसे भूमि बिधि चारि अनूप। ब्रह्म छत्रि विट सूद्र सुरुप ॥ ४४ ॥

रिषि ने उन्हें पैरों का कर दिया। पहले तो उन्होंने देवों को दिया और फिर नर देवों को दिया। वे पृथ्वी पर चार प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के रूप में आकर रहने लगे ॥४४॥

स्वेत ब्रह्म छत्री बन लाल। पीत बरन बहु बैस्य बिसाल ॥
सूद्र कहावैं कारे अंग। मिश्रित बरन् तिमिश्रित रंग ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण का शरीर श्वेत, क्षत्रिय का शरीर लाल, वैश्यों का शरीर पीला तथा शूद्रों का शरीर काला था। जो वर्ण मिश्रित हो गये थे, उनका रंग मिश्रित हो गया था ॥४५॥

सुनियत हय सब तीन प्रकार। उत्तम मध्यम अधम विचार ॥
बिप्रनि चढ़ि सब कीजै धर्म। छत्रिनि चढ़ि जुद्धनि के कर्म ॥४६॥

सुना है कि घोड़े उत्तम, मध्यम तथा अधम, तीन प्रकार के होते हैं। विप्र घोड़ों पर चढ़कर धर्म के काम करते हैं और क्षत्रिय घोड़ों पर चढ़ कर युद्ध करते हैं ॥४६॥

बैसनि चढ़ियैं बहु धन साज। सूद्रनि दुष्ट कर्म के काज ॥
राते ओंठे जो गरी हीन। राती जीभ सुगधनि लीन ॥ ४७ ॥

वैश्य घोड़ों पर चढ़कर व्यापार करते हैं और शूद्र घोड़ों पर चढ़कर दुष्टता का कार्य करते हैं। उन घोड़ों के ओठ तथा जीभ लाल है जिसमें सुगन्ध है ॥४७॥

रातो तरुवा कोमल खाल। ऐसौ घोरौ सुभ सब काल ॥
दंत चिक्कनै सुदृढ़ समान। सोमन मुख हनु बाहु निधान ॥ ४८ ॥

तरुवा लाल हो और खाल बहुत ही कोमल हो। ऐसा घोड़ा सब समयों में शुभ होता है। दांत चिकने और सुदृढ़ हों तो ऐसा घोड़ा बड़ा शक्तिशाली होता है ॥४८॥

नैन बड़े बहु आभा भरे। कारे तारे चंचल खरे ॥
भौरी सयुत चौरो भाल। द्वै भौरी युत सिर सब काल ॥४६॥

नेत्र बड़े, आभायुक्त, पुतली काली और चंचल हो और भौरी युक्त मस्तक हो तो वह घोड़ा सर्वश्रेष्ठ होता है ॥४६॥

अति सूक्षम अति छोटे कान। कुचि दीरघ ग्रीव समान ॥
जटाहीन कोमल किमवार। बिन भौरी दृढ़ कध बिचार ॥५०॥

कान बहुत सूक्ष्म और छोटे हों। बाल गर्दन के समान लम्बे हों। यदि सिरवार जटाहीन और कोमल है तथा उसके भौरी भी नहीं है, तो सुदृढ़ कधों का विचार करना चाहिये ॥५०॥

उन्नत कूंप उरज सुविसाल। गूढ़ गाढ़ि छूटे मव काल॥
सूधी सुमिल मास करि हीन। नरी पातरी सुनौ प्रवीन॥५१॥

कूप ऊँची है वक्षस्थल चौड़ा है, तो वह सभी कठिन समयों पर काम दे सकता है। यदि सूधी सीधी है मास हीन है तथा गर्दन पतली है, तो ऐसा घोड़ा बड़ा ही प्रवीन होता है॥५१॥

छोटे मुख्य गाठि न होई। पुतरी दृढ़ कारे पुर जोई॥
ऊँचे पाँजर जठर उदार। औरि वर्त्तुल पूठि अपार॥५२॥

छोटे मुख का घोड़ा हो और उसके कोई गाठ न हो, दृढ़ पुतली, और खुर काले हों, पाजर ऊंचे हों, पेट में सदैव भूख लगी रहती हो और पुट्ठे गोलाकार हों, तो घोड़ा अच्छा होता है॥५ ॥

छोटी मोटी पाठि सुदेस। कोमल दीर्घ पूँछ के केस॥
आट अमोल बेल परवान। कृष्ण बरन बिन दुवै समान॥५३॥

पीठ छोटी और मोटी हो, पूछ लम्बी हो किन्तु उसके बाल लम्बे हों, तो ऐसा घोड़ा कृष्ण वर्ण न होने पर भी अच्छा होता है॥५३॥

बत्तिस तीस सतायस मान। आंगुल मुख घोरन के जान॥
उत्तम मध्यम अधम विधान। इहिं विधि गिगरे अग प्रधान॥५४॥

अधिकाशत घोड़ों का मुख बत्तीस, तीस और सत्ताईस अगुल के होते है और इसी क्रम से वे उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि में भी आते हैं यही ऊपर गिनाये हुये घोड़ों के प्रधान अंग है॥५४॥

छप्पन चौवालीस छत्तीस। अगुल ग्रीव हयकी दीस॥
अरु वृष्टि करि मुख परिमान। केन सप्त अगुलि समान॥५५॥

घोड़े की गर्दन छप्पन, चवालीस और छत्तीस अगुल की होती है और केन सात अगुल होती है॥५५॥

अरुन होई पट अगल तालु। कोमल अमल पूंम कौनालु॥
बीस अठारह चौदह दोई। अगल लामी जानी लोई॥५६॥

तालू छै अगुलि कोमल हो, पूछ के नाचे का हिस्सा कोमल हो और लोई बीस, अठारह, चौदह अगुलि की लम्बी हो॥५६॥

सात पाँच अँगुलनि जातु । वारे कठिन सुम परिमानु ॥
चारि हाथ ऊँचो हय लेखि । साढ़े तीन तीर सम देखि ॥५७॥

सात पाँच अगुलि की लम्बी सुन हो और चार हाथ का ऊँचा घोड़ा बहुत ही अच्छा होता है और यदि वह साढे तीन हाथ का ऊँचा हो तो वह तीर की भांति तेज चलता है ॥५७॥

पाँच चारि कारि साढ़े तीन । लामौ लौंवी धारी वीन ॥
कारे कान सबै तन सेत । स्याहकर्न लीजै सुन देत ॥५८॥

घोड़े के कान काले हों और शेष शरीर बिलकुल ही सफेद हो तो वह घोड़ा बड़ा ही अच्छा होता है ॥५८॥

सेत तिलक पद चार्यो सेत । पच कल्यान लीजे सुभ हेत ॥
मुर मुप पच्छ पाइ सब सेत । मगल अष्ट सुराधु निकेत ॥५६॥

मस्तक और चारों पैर सफेद हों तो शुभ लक्षणों के लिये पचकल्याण घोड़े को ले लो । उसका मुख भी सफेद हो तो उसम आठ मगलकारी लक्षण रहते हैं ॥५६॥

कुरुम तालुता की जो होय । ताहि बुरौ जनि मानौ कोय ॥
पच कल्यान जो होय सरीर । भौरी असुभ सुभै गान वीर ॥६०॥

यदि घोड़ा कुरम तालुता का है तो उसे बुरा नहीं मानना चाहिये। यदि घोड़ा पचकल्यान शरीर का है तो उसकी अशुभ भौरी भी शुभ हो जाती है ॥६०॥

जाके कारे चार्यो पाय । सब तन सेत सुता जमराय ॥६१॥

जिसके चारों पैर काले हों और सारा शरीर सफेद हो, तो वह साक्षात यमराज है ॥६१॥

भौंरि तीन हौंहि जो भाल । ऊरध अध न्यधि पत्रि रिमाल ॥
सो बाजी त्रश्रेनी नाम । घोरे धनै बढ़ावैं धाम ॥६२॥

यदि मस्तक पर तीन भौरी हों, तो ऐसे घोड़े का नाम श्रेनी होता है ऐसा घोड़ा धन धान्य को घर में बढ़ाता है ॥६२।

दुहु ओर देय भौंरी भाल। सो घोरो नीकौ सब काल॥
जाघो रेक भौंरी कठ। नृपवाहन कहिये मनिकठ॥६३॥

यदि घोड़े के मस्तक पर दोनों ओर भौंरी है तो वह घोड़ा सभी कालों में शुभ ही रहेगा। यदि जघा में रेक हो और कठ मे भौंरी हो, तो ऐसा घोड़ा राजा की सवारी के लिये उपयुक्त होता है॥६३॥

जा घोरे के भौंरी पीठि। सो पुनी राज बाहकै दीठ॥
जाकैं भौंरी दुहू कपोल। ताकौं न जानौ परम अमोल॥६४॥

जिस घोड़े की पीठ पर भौंरी रहती है वह घोड़ा यमराज होता है। जिस घोड़े के दोनों कपोलो पर भौंरी होती है, वह घोड़ा मूल्यवान नहीं होता है॥६४॥

काधै युगल कर्न के मूल। भौंरी मानौ कमल के फूल॥
भौंरी होय नाऊ पर एक। अथवा जानौ हीन विवेक॥६५॥

यदि कन्धे और कानों के मूल म भौंरी हो तो वह कमल की भाति सुन्दर लगती है। यदि घोड़े की नाक पर भौंरी हो तो वह घोड़ा बड़ा विवेकी होता है॥६५॥

तापर चढै बहुत सुख होई। ताहि मोल अति लीजौ लोइ॥६६॥

' यदि ऐसे घोड़े पर कोई चढे ता बड़ा सुख प्राप्त होता है और उस घोड़े को हट पूर्वक मोल ले लेना चाहिये॥६६॥

॥ दोहा

भौंरी घूटे आउतर पूँछ हेट तर होय॥
ओठ दुबै सब बाजि सो बुरो कहैं सब कोय॥ ६७॥

यदि भौंरी घूटे और पूछ की नीची हो और ओठ द्रवित होता हो, तो ऐसे घोड़े को सभी बुरा कहते हैं॥६७॥

॥ चौपाई॥

घट वद दाँत निकारी तालु। मुसला शृगी अरु कुब्दालु॥
धनी द्रिपुर कुकुदी हय लेपि। इतनै सबमैं सर्कैन देषि॥६८॥

यदि तालू में दात घट बढ़ कर निकल रहे हों, थगी मूसला हो, और उसमें थनी, दिखुर तथा कुकुनी भी हो तो ऐसा घोड़ा अपने स्वामी के लिये *अशुभ होता है और स्वामी निश्चय ही मृत्यु का कारण बनता* है ॥६८॥

रोम आड़ें पर एकै आड़ें। ऐसौ घोड़ौ लीवौ छांड़ि ॥
बरस गए ते रुपसी होई । कहे अषण्ड ताहि सब कोई ॥६६॥

रोम आड़ें पर यदि एक ही आड़ें है तो ऐसे घोड़े को छोड़ कर दूसरे घोड़े को खरीदना चाहिये। एक वर्ष में यदि घोड़ा रुपसी हो जाता है तो ऐसे घोड़े को सभी अखण्ड कहते हैं ॥६६॥

पाँचइ तै चौदांत तुपार । तासौं जग जन कहै प्रचार ॥
ते बल दमन कालिमा होय। नौलै रहत कहत सब कोय ॥७०॥

पाच से चार दात तक तुपार रहता है, इसे सभी लोग कहते हैं। जब दातों में कालिमा आ जाती है तब नौ तक रहेगा, ऐसा सभी कहते हैं। ७०॥

बहुरै होय कालिमा पीत । एकाद लौं रहै सुभीत ॥
बहुरि वायवरन देषिये । सोरह वर्ष रहत लेषिये ॥७१॥

जब कालिमा पीली होने लगती है, तब ग्यारह वर्ष तक रहेगा और जब वह वामवर्ण का हो जाता है तब वह सोलह वर्ष तक जीवित रहता है ॥७१॥

होय बीस लौ मधु के रंग । बहुरै होय सॅप के अँग ॥
भरि भरि चौबीस सँपनी रहै। षोडस परत बहुरि सब कहैं ॥७२॥

यदि उसका मधु रग हो जाय तो बीस वर्ष की अवस्था तक जीता है और शख रग हो जाय तो चौबीस वर्ष तक जीता है और सपनी रंग हो जाय तो वह फिर सोलह वर्ष का युवक घोड़ा हो जाता है ॥७२॥

दांत जाहि जब पूजैं तीस । घोरी जियैं वरष बत्तीस ॥
ऊँचौ मुह कर दीसै घार । पापर नापैं घोरी धीर ॥७३॥

जब घोड़े की तीस दांत हो जाते हैं तब वह बत्तीस वर्ष तक जीवित रहता है यदि घोड़ा मुह ऊँचा करके देख रहा हो तो वह घोड़ा बहुत ही धैर्यवान होता है ॥७३॥

खौंदे भूमि जुपुर की कोर । जोति वहत है ते चहुओर ॥७४॥

जो घोड़ा अपनी खुर की कोर से भूमि खोदता है, उसकी कीर्ति चारों ओर फैल जाती है ।७४॥

मूतै बार बार अरु हगै। नैनन तें आँसू ढगमगै ॥
तब ही होय अनमनो चित्त । सो हय कहैं पराजय चित्त ॥७५॥

यदि घोड़ा बार बार मूत और हग रहा है और आखों से आसू बहते हैं तो ऐसे घोड़े का चित्त ठीक नहीं और वह पराजय की सूचना दे रहा है ॥७५।

बिन कारण ज्यौं बोलौं मनि। अधरताहि उठि उठै सुनि ॥
सो घोरो करिकै हिय हेत । आरि आगमन कहै ही देत ॥७६॥

जब घोड़ा रात को अकारण ही हिनहिना रहा हो तो वह घोड़ा अपने स्वामी के हित के लिये हिनहिना कर शत्रु के आगमन की सूचना दे रहा है ॥७६॥

। दोहा ।

जा घोरे की आख मे नीरे पीरे बिंदु ॥
तौ जीवैं सौ मास दम जो ज्यावे गोविंद ॥७७॥

यदि घोड़े की आख से नीचा पीला बिन्दु है तो वह घोड़ा ११० मास जीता है यदि ईश्वर उसे जियावे ॥७७॥

इति श्रीमन्‍महामण्डल भूमण्डलाखण्डेश्वर महाराजाधिराजा-राजश्री वीरसिंघ देव चारित्रे रायर लोग हयसाला बरननं नाम सप्तदसम. प्रकास

———

चौपाई

नगरी गीतन की माधुरी । मोहति मनु माधी मधुपुरी ॥
बाजत घँट घनें घरयाय । मांझ झालरैं भेरी तार ॥१॥

सम्पूर्ण नगर गीतों की मधुर ध्वनि से गूज रहा है, ऐसा है लगता है कि वह माधौ की मधुपुरी है जो कि सभी को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। स्थान स्थान पर झांझ, घण्टा, घड़ियाल और भेरी बज रही है ॥१॥

ठौरे ठौरे ठौरे कीरँतन घनें । अति ऊँचे देवालय बनें ॥
जहँ तहँ हरि लाला मुनि मीत । राम कृष्ण के गावहिं गीत ॥२॥

स्थान स्थान पर ऊचे ऊचे देवालयों में कीर्तन हो रहा है। रामकृष्ण के गीत गाये जा रहे हैं। हरि की लीला ही जहा तहा सुनाई देती है ॥२॥

निर्पट वेला वन सोभा साज्यौ। नील महावन मोहन बाज्यौ ॥
घर घर घटा थम सोहियैं । मुरली देखति मन मोहियैं ॥३॥

सम्पूर्ण वन वेल से सुशोभित हो रहा है। नील महावन में कामदेव की दुदुभी बज रही है। मुरली को देखकर मन मोहित हो जाता है ॥३॥

ताकी छवि मेरे मन बसी। सोहती मानों बारानसी ॥
पँडित मँडल मँडित लसैं । परम हँस के गनजहँ बसैं ॥४॥

उसकी सुन्दरता मेरे मन में बस गई। मानो वह नगर वाराणसी ही हो। पंडित के झुड के झुण्ड सुशोभित हो रहे थे और हसों के समूह वहाँ विराजमान थे ॥४॥

मिटति सुभासुभ की बासना । पारवती पति की सासना ॥
रामैं रटत छत्तीसौ कुरी । मानौं रामचन्द्र की पुरी ॥५॥

वहा पर शुभ अशुभ सभी वासनायें नष्ट हो जाती हैं। वहा पर शङ्कर भगवान का शासन है सभी (छत्तीसो कुरी) परिवार राम ही राम रटते हैं, मानो रामचद्र की अयोध्या पुरी हो ॥५॥

कुशल बसे नर नायक बनै । पूजित तहँ सनौढिया घनै ॥
अति पंडित पावनि दिन राति । पादारघ पावत बहु भांति ॥६॥

सभी लोग कुशलता पूर्वक वहां पर रह रहे हैं सनाढ्य ब्राह्मणों की पूजा होती है। पंडित को अत्यधिक पवित्र माना जाता है और उन्हें सदैव पादारघ मिला करता है ॥६॥

दिन दिन पूजत जहँ पितृ देव । अर्चमान श्री हरि की सेव ॥
इकै कहत इक सुनत पुरान । घोषत इक व्याकरण प्रमाण ॥७॥

पितृदेवों की सदैव उपासना होती है। श्री हरि की सेवा होती है। एक पुराण कहता है और दूसरा सुनता है तथा दूसरा व्याकरण का अध्ययन करता है ॥७॥

साधन एक ते मंत्र प्रयोग । उपदेसत एकन कहँ योग ॥
अद्भुत अभय दान के दानि । कविकुल सौं नाहिन पहिचान ॥८॥

कोई मंत्रों की साधना कर रहा है और कोई दूसरों को योग की शिक्षा का उपदेश दे रहा है। अद्भुत अभय होने का दान मिलता है। कविकुल से किसी भी प्रकार परिचय नहीं है ॥८॥

सोभित सदा पवित्र प्रसंग । जद्यपि द्वार द्वार मातंग ॥
होम धूम मलिनाई जहां । अति चंचल चल दल दल तहां ॥६॥

सदैव पवित्र प्रसंग बने रहते हैं यद्यपि द्वार द्वार पर मातंग विराजमान रहता है, मलीनता केवल वहां पर होम के धुयें की ही मिलेगी। चंचलता सेना ही में मिलेगी ॥६॥

घात नाम है चूरा कर्म । तीक्ष्णता आयुध के धर्म ॥
जहँ विधवा बाटिका न नारी । जहां अधोगति मूल विचारी ॥१०॥

घात नाम केवल चूरा कर्म ही का है। आयुध धर्म में ही तीक्ष्णता है। कोई भी स्त्री वहां पर विधवा ही नहीं है। विधवा के नाम पर केवल वाटिकायें ही हैं। अधोगति केवल जड़ों की ही होती है ॥१०॥

मान भंग मानिनि की जानि । कुटिल चाल सरितानि बखानि ॥
दुर्गनि की दुर्गति संचरै । व्याकरण के द्विज वृत्तिनिहरै ॥११॥

मानभरा केवल मानिनी नारियों का ही होता है। कुटिल चाल केवल सरिताओं को ही प्राप्त होती है। दुर्गति केवल दुर्गों की होती है ब्राह्मण लोग केवल व्याकरण की वृत्ति छीनते हैं ॥११॥

कीरत ही के लोभी लाप। कविजन कै श्रीफल अभिलाप॥
लेखहु लोभ समुद्र अगस्ति। त्रसना लता कुठार प्रसस्ति ॥१२॥

लोगों को लोभ केवल अपनी कीर्ति का ही है और कवियों को केवल श्रीफल की ही अभिलाषा है। यदि लोभ ही देखना है तो वैसा ही मिलेगा जैसा कि अगस्ति ऋषि का समुद्र के प्रति था ॥१२॥

महा मोह मत वैसे मित्र। क्रोध भुजंग मन्त्र पवित्र ॥१३॥

महामोह की मित्रता वैसी है जैसे कि क्रुद्ध सर्प को मन्त्र द्वारा ठीक कर लिया जाता है ॥१३॥

॥ दोहा ॥

ऐसे नागर नगर जव विद्यन के अवतार।
आचार्जन के भवन मे गुन गन से मसार ॥१४॥

प्रत्येक नागरिक सभी विद्याओं का अवतार सा प्रतीत होता है। आचार्यों के घर ऐसे लगते हैं मानो संसार के सभी गुणों के घर हों ॥१४॥

चौपाई

सत्रु समूह सुनत ही सर्मैं। कबहु देव पुरी कौ ह्सैं॥
रमति मजुघोषा है जहां। सुंदरि सुमुखि सुकेषी तहां ॥१५॥

शत्रु समूह सुनते ही भी डर जाता है कभी देवपुरी पर हंसता है। मजुघोषा वहाँ पर विहार करती है वहाँ पर अनेक सुन्दरियाँ सुमुखी है ॥१५॥

तिलोत्तम न तहां को गनै। रंभा कौ वन देषत बनै॥
गनपति धन पति प्रति घर घनै। सूर सम्पति घर सोभा सनै ॥१६॥

तिलोत्तमा ऐसी विदुषी नारी वहा पर अनेक हैं। रभा का वन बहुत ही सुन्दर है। गणेश और कुबेर घर घर में विराजमान हैं सुरशक्ति की शोभा से प्रत्येक घर परिपूर्ण है ॥१६॥

कपिकुल मंगल गुरु बुध वास। विद्याधर गधर्व निवास॥
थल थल प्रति सुमनति तरु बनैं। बरन बरन तनु सोभा मनैं॥१७॥

कपिकुल के मगल गुरु बुध और विद्याधर गधर्वों का वहा पर वास है। अनेक वर्णों के सुन्दर वृक्ष स्थान स्थान पर खड़े हैं ॥१७॥

जहं तह सुर तरगनि सार। घर घर सुर सगीत विचार॥
सकल भुवन जस सौ यह छुरी। सिव के जटा मनो ससि जुरी॥१८॥

जहाँ तहाँ सुर की तरगे सुनाई पड़ती हैं और प्रत्येक घर मे सुखद सङ्गीत पर विचार होता है। सारी पृथ्वीमें यह उसी प्रकार से सुन्दर है जैसे शिव जी की जटाओं में बधा हुआ चन्द्रमा सुन्दर है ॥१८॥

जद्यपि लोग सबै बहु वीर। विविध विनय युत सकल सरीर॥
अति ऊँचे आगारनि बनी। चिंतामणि गिरि कैसे घनी॥१६॥

यद्यपि सभी योद्धा वीर हैं किन्तु विनय सभा में विराजमान है। चिंतामन गिरि की भाँति ऊचे ऊचे आगारो से यह नगर बसा हुआ है ॥१६॥

विचित्र चित्र सुमित्रन ससी। विश्वरूप कैसी आरसी॥
धूपति सतमष धूप सनेह। सुन्दर सुरपति कैसी देह॥२०॥

विश्वरूप की आरसी की भाति यह अनेक चित्र विचित्र चित्रों से बनी हुई है। इन्द्र की शरीर की भाँति शतमष का धुआँ निकल रहा है ॥२०॥

दोहा।

तिन नगरी तीन नागरी प्रतिपद हस कही न।
जलज हार सोभित तहा प्रकट पयोधर पीन॥२१॥

उस नगरी की चतुर नारियाँ की चाल के सम्मुख हँस भो कम हैं। नारियों के स्वस्थ पयोधरों पर कमलों का हार शोभित रहता है ॥२१॥

चौपाई

देवनि सों दिति सी जग मगै। सिंघ सयुत दुर्गा सी लगै ॥२२॥

देवों की दिति के समान जगमगा रही है। दुर्गा के समान वह लग रही है ॥२२॥

॥ दोहा ॥

नृप नल नहुष जजाति प्रभु भय भागीरथ भेव।
जहांगीर पुर को प्रगट राज बीर सिंघ देव ॥२३॥

नल, नहुष, ययाति, भागीरथी आदि अनेक राजा हुये हैं उन्हीं के समान जहाँगीरपुर में वीरसिंह देव राजा प्रकट हुआ है ॥२३॥

। चौपाई।

तिथि ही को छय जाके राज, । पिते पुत्र कै छाडत काज ॥
वै द्वै पर नारी कों गहैं। भारहैं बिभिचारिनि समहैं ॥२४॥

उसके राज्य में क्षय एक मात्र तिथि का ही होता है। पिता पुत्र को हर केवल काम के लिये छोड़ता है। केवल भास्य व्यभिचारिनियों का सग्रह ही करते हैं ॥२४॥

फागुही लोग निलज दीखियैं। जुवा दिवारी की लेखियैं ॥
खेलहीं मैं बिग्रह मानियै। बिग्रह खेलहि की जानियैं ॥२५॥

फाल्गुन में ही लोग निर्लज्ज दिखाई पड़ते हैं और जुआँ दिवाली को ही दिखाई पड़ता है। खेलने में ही केवल झगड़ा दिखाई देगा और यदि विग्रह किसी वस्तु का है तो केवल झगड़े का है ॥२५॥

दिन चढिरे भौंहैं मारियैं। चोपरि मैं क्योंहू हारियैं ॥
जादौराय गौर कौ पूत। मनक्रम वचन समुझि सुभ सूत ॥२६॥

नित्य उठ कर भौंहें को सभी मारते हैं और हार केवल चौपड़ के खेल में मानते हैं जादौराय गौर का पुत्र मन क्रम वचन से शुभ है ॥२६॥

राजभार ताके सिर धारयौ। मनों कुमरु गुन भारी भरयौ ॥
छत्रि जानि कहैं सब लोग। परम पुण्य पौरष संयोग ॥२७॥

राज्य का सम्पूर्ण भार उसी के सिर पर रख दिया है। उसे क्षत्री समझ कर सभी लोग कहते हैं कि पुरुषत्व तथा पौरुष्व के गुणों का संयोग हुआ है ॥२६॥

कृपा राम यह नाम प्रसिद्ध। कृपान कर की पावन सिद्ध ॥
और कहै सब ताकी ख्याति। मध्य देस देसियनें मुजाति ॥२८॥

कृपाराम प्रसिद्ध है, जिसे कृपाण में कुशलता प्राप्त है। सभी और उसकी ख्याति को कहते हैं ॥२८॥

इहि विधि सो अद्भुत रस भर्यौ। वीरसिंह सनापति कर्यौ ॥
दमनक ज्यौं जल कै मानियैं। सौम्य सुचन रुनिकै जानियैं ॥२६॥

इस प्रकार के अद्भुत रसों से पूर्ण रूप को वीरसिंह ने सेनापति बनाया जिस प्रकार से जल में दमनक होता है या सौम्य रुचि जानिये ॥२६॥

ज्यौं वासिष्ट दसरथ कौ मित्र। रामचन्द्र कैं विश्वामित्र ॥
वीरसिंघ त्यौं मंत्री कर्यौ। कन्हर दास विप्र मति भर्यौ ॥३०॥

जिस प्रकार वशिष्ठ दशरथ के मित्र हैं और राम चन्द्र के विश्वामित्र मित्र हैं उसी प्रकार से कन्हरदास, विप्र को वीरसिंह ने अपना मंत्री बनाया ॥३०॥

विन कलक को किये द्विजराज। कन्हर नाम करै नृप काज ॥३१॥

कन्हरदास अकलंकित रूप से सभी कार्य राजा के करता है ॥३१॥

दोहा

वचन मर्है उपदेश ज्यों उन सब मगल मानि ॥
निसि वासर जपियौ करै महामत्र सौं जानि ॥३२॥

उपदेश के सभी रचना से मङ्गलप्रद जान कर ग्रहण करता है और उन्हें महामंत्र समझ कर रात दिन जपा करता है ॥३२॥

इति श्रीमत् सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री राजा वीरसिंघ-देव चरित्र दान लोभ सवादे नगर वर्णन नाम अष्टादस प्रकासः ॥१८॥

॥ चौपाई ॥

देखै प्रकट लोभ अरु दान। निकसे महाराज चौगान ॥
हाथ धनुष मनमथ के रूप। साहत संग पयादे भूप ॥१॥

महाराज जब चौगान खेलने के लिये निकले तब दान और लोभ, दोनों ही दिखाई दिये। हाथ में धनुष धारण किये हुये राजा के साथ पैदल ही मन्मथ के रूप में सुशोभित हैं ॥१॥

जबहीं जाको आयसु होय। जाइ चढ़ै गज बाजिनि सोय ॥
पसुपति से भूपति देखियें। महामत्त अनगन लेखियें ॥२॥

जिस समय जिसको आज्ञा होती है उस समय वह घोड़े पर जाकर बैठ जाता है। भूपति पशुपति के समान सुशोभित हैं और अगणित मस्त हाथी दिखाई देते हैं ॥२॥

जबहीं प्रयान दुन्दभी बजै। तबही सुभट बाजि गज सजै ॥
बरनत जय सर मागध सूत। जय पालत बंदिन के पूत ॥३॥

जिस समय चलने के लिये दुंदुभी बजती है उस समय सभी योधा अपने अपने घोड़ों को सजाने लगते हैं। बंदी मागध, सूत सभी जय जयकार करते हैं ॥३॥

दीन दुखी रोगी जब जिते। गुंग पांगुरे कहियैं किते ॥
बहिरे अंध अनाथ अपार। तिन पर बरसी कंचनधार ॥४॥

जितने भी दीन दुखी रोगी पगु गूंगे बाहर अंधे अनाथ हैं उन सभी पर कंचन की वर्षा हुई ॥४॥

बीथी सब असवारनि भीर। गज बाजिन की सोभा सही ॥
दरु पुरजनि सो सरिता भयी। मानो मिलन समुद्रहि चली ॥५॥

हाथी और घोड़ों की सवारियों से सभी गलियाँ सुशोभित हो गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सरिता जनयुक्त होकर तत्पर होकर समुद्र से मिलने के लिये चल दी है ॥५॥

इहि विधि नृपति गये चौगान। सावकास सब भूमिसमान ॥
ऊंचा थम्भ मध्य सोहियें। ससि सा चिन्ह लोचन मोहियें ॥६॥

इस प्रकार से राजा चौगान का खेल खेलने के लिये गये। सारी भूमि खूब लम्बी चौड़ी एक समान थी। उसके बीच में ऊँचा खम्भ सुशोभित था, जो कि चन्द्र की भाति मन को मोहित कर रहा था ॥६॥

ताहि विलोकैं कुवर सुजान। दौरि दमाकन मेलत बाहन ॥
दै दै तुरग समूधी धाप। हनत लच्छि फिर खैंचत चाप ॥७॥

उसे देखकर चतुर कुवर गोला और बान चलाता है। बार बार तुरग समूधी धाप देकर लक्ष्य को मारता है और चाप को खींच लेता है ॥७॥

मनहु मदन बहु रूप सुधारि। हनत सोम सिव बैर सम्हारि ॥८॥

ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव शिवजी से बैर लेने के लिये चन्द्रमा को मार रहे हों ॥८॥

॥ दोहा ॥

वेध्यो मारि गिराई भुव बान नरेस सुजान ॥
खेलन लागे कुवर सब चतुर चारु चौगान ॥६॥

राजा ने अपने बाणों से जमीन पर गिरा दिया। फिर सभी लोग कुवर के साथ चौगान खेलने लगे ॥६॥

॥ चौपाई ॥

एक कोद नृप परम उदार। कोद दूसरि रजपूत जुझार ॥
सोहति लीन्हैं हाथनि छूरी। कारी पीरी राती हरी ॥१०॥

एक ओर राजा हैं और दूसरी ओर जुझार राजपूत हैं। उनके हाथों मे काली पीली लाल तथा हरी छड़ी शोभा देती है ॥१०॥

देखन लागे सबैरै लोय। डारि दई भुव राती गोय ॥
गोला होइ जितहि जित सबै। होत सबै वितही तित तबै ॥११॥

लाल गोले को जमीन में डाल दिया गया उसे सभी लोग देखने लगे। जिस ओर गोला जाता है उसी ओर सभी लोग चलने लगते हैं ॥११॥

मनौ रसिक लोचन रुचि रचे। रूर संग बहु नाचनि नचे ॥
लोक लाज छांड़े सब अंग। डोलत जिय जनु मन के संग ॥१२॥

खिलाड़ी गेंद के साथ इस प्रकार दौड़ते हैं मानों रसिकों के लोचन सौंदर्य के साथ अनेक प्रकार का नृत्य कर रहे हों अथवा पूर्ण रूप से लोक लज्जा को छोड़ कर मानो पति अपनी पत्नी के साथ घूम रहा हो ॥१२॥

भवर पराग रग रुचि रये। मानौं भ्रम तरग के रये॥
गोला जाके आगे जाये। सोई ताको चले अपन्याय ॥१३॥
नायक मन जैसे बहु नारि। कारति आपु आपु डर डारि ॥
रूप सील गुन जानन रयौ। जिहि पाया ताहि कौ भयौ ॥१४॥

जिस प्रकार से भ्रमर पराग में अनुरक्त होकर अपने को भूल जाता है उसी प्रकार गोला जिसके आगे जाता है वहा उसे अपना कर चल देता है अथवा जिस प्रकार बहु स्त्री अनुरागी नायक जिस स्त्री के रूप गुण शील पर आशक्त हो गया है उसी का हो गया ॥१३-१४॥

नैकहुँ हालि न पावै सांय। इततैं उत उततैं इत होय ॥
काम लोभ बाहु बाध्यों विकार। मानौं जीव भ्रमत ससार ॥१५॥

वह गेंद इधर से उधर और उधर से इधर जाता रहता है। उसे थोड़ी देर की भी छुट्टी नहीं मिल पाती है। जिस प्रकार से काम क्रोध एवं लोभ में बधा हुआ जीव ससार में भ्रमण करता रहता है उसी प्रकार गेंद भी इधर उधर घूमता है ॥१५॥

जहां तहां मारे सब कोय। ज्यों नर पच विरोधी होय ॥
घरी घरी प्रति ठाकुर सबै। बदलत बासन बाहन तबै ॥१६॥

वह गेंद जिधर जाता है उधर ही सब उसे मारते हैं जैसे पच विरोधी मनुष्य जहा जाता है वहीं उसका विरोध होता है। एक एक घड़ी पर सभी लोग अपने वस्त्र और वाहन बदलते हैं ॥१६॥

॥ दोहा ॥

जब जब जीते हाल नृप तब तब बाजत निसान ॥
हय गय भूषण दाह पर दीजत विप्रनि दान ॥१७॥

जब जब राजा जीतते हैं तब तब बाजे बजते हैं और ब्राह्मणों को बहुत से घोड़े हाथी दान दिए जाते हैं ॥१७॥

॥ चौपाई ॥

तब तिहि समय एक बेताल । पढ्यौ गीत गुनि बुद्धि बिसाल ॥
गोलनि की विनती सुरप पाइ । राज जू सौं कीनी आइ ॥१८॥

तब उस समयएक बुद्धमान बेताल ने एक कवित्त.पढ़ा मानों राजा के गोलों की विनती सुनाई हो ॥१८॥

कवित्त

पूरब की पूरा पुरी पापर पुरी से तन,
वापुरी वे दूर ही तें पायन परत हैं।
पश्चिम की पक्षादीन पक्षी ज्यौं उरति है,
उत्तरि की देती है उतारी सरनागतिन ॥
बातनि उतायनी उतारि उतरति है,
गोलनि को वीरसिंघ दीजै जू सभय दान।
तेरे बैर कहां जाई बिनती करति है ॥१९॥

भाट कहता है कि हे वीरसिंह ! अब गेंदा को अभयदान दीजिये, क्योंकि वे विनती करते कि वीरसिंह से बैर करके कहा जाय :-कहीं भी शरण नहीं मिलती । क्योंकि पूर्व की ओर जाते हैं तो वहा के पुर और नारिया पापर के समान दुर्बल तन वाली होने के कारण दूर से ही पैर पड़ती हैं कि हमारे पास मत आओ हम तुमको शरण न दे सकेंगी । पश्चिम की पुरियां पक्षी की तरह उड़ना चाहती हैं पर पक्षहीन होने से उड़ नहीं सकतीं और उत्तर की पुरिया शरणागतों को अपने पहाड़ी

स्थानों से उतार देती है तेजी से बातें करती है कि दलवा भूमि है जल्दी से उतर आओ, अतः हमें उतरते ही बनता है ॥१६॥

॥चौपाई॥

गोलनि की विनती सुनि ईस। घर कौं गमन करयौ जगदीस ॥
पुर पैठत बहु सोभा भई। तहँ तहँ गली सबै भर गई ॥२०॥

गोलों की विनती सुनकर जगदीश घर को चले गये। ग्राम में प्रवेश करते ही सारी गलिया भर गईं और ग्राम सुशोभित हो गया ॥२०॥

मनौ सेत मिलि सहित उछाह। सरितनि के फिरि चले प्रवाह ॥
हैही समय दिवस निसी गयी। दीप उद्दोत नगर मैं भयी ॥२१॥

चौगान के मेल से लौटती हुई सेना ऐसी प्रतीत होती है मानो समुद्र सेतु से टकराकर उत्साह पूर्वक नदियों के प्रवाह उलटे बह चले हैं। उसी समयसध्या हो गयी और नगर में दीपक जल उठे ॥२१॥

नखतन की नगरी सी लसी। कै धौं नगर दिवारी बसी ॥
नगर असोक वृक्ष रुचि रयौ। जनु प्रभु देखि प्रफुल्लित भयौ ॥२२॥

दीपकों के जलने से नगर की ऐसी शोभा हुई मानो वह नगरी नक्षत्रों की हो अथवा दीपावली ही नगर में आकर बस गई हो। अथवा वह नगर सुन्दर अशोक वृक्ष है और वीरसिंह बसत है। अत उन्हें आया हुआ जान प्रफुल्लित हुआ है ॥२२॥

अध अधफर ऊपर अकास, चल दीप देखिये प्रकास ॥
मौ चतुरभुज की करि सेव। बहुरे देवलोक कौ देव ॥२३॥

(कुछ गुब्बारे उड़ाये गये हैं) कुछ चलते दीपक आकाश के नीचे के माग में हैं। उनका प्रकाश ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों देवता लोग चतुर्भुज की सेवा करके पुनः देवलोक को वापस आ गए हैं ॥२३॥

बीथी विमल सुगन्ध समान। दुहु दिसि दिपत दीप समान ॥
महाराज को सहित सनेह। निज नैननि जनु देखत देह ॥२४॥

नगर की गलियां स्वच्छ हैं, सुगंधित हैं और समतल हैं दोनों ओर असख्य तैलयुक्त चिराग रखे हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों नगर के समस्त घर प्रेम युक्त होकर अपने नेत्रों से महाराज के दर्शन कर रहे हैं ॥२४॥

बहु विधि देखत पुर के भाय । गये राज मन्दिर द्वढ जाइ ॥२५॥

ग्रामवासियों के अनेक प्रकार के भावों को देखते हुए वीरसिंह राजमदिर चले गये ॥२५॥

इति श्रीमन् सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्रीराजवीरसिंघ-देव चरित्रे चौगान बर्नन नाम नवदसमः प्रकास ॥१६॥

॥चौपाई॥

दीरघ दोउ वीर विसाल । अगन दीप वृक्ष की माल ॥
जोतिवन्त जन सब सुख देत । राज लोक कौ पहरौ देत ॥१॥

दोनों ही वीर बड़े और विशाल हैं। उनके अग प्रत्यग इस प्रकार दमक रहे हैं मानों किसी ने वृक्ष पर दीपक जला दिये हों। सभी लोगों को सुख देने के लिए ही वह जोतिवत हैं। ये दोनों वीर राज्य का पहरा देते हैं ॥१॥

॥दोहा॥

दान लोभ दोउ जनै पीछे डोलत साथ ॥
वीरसिंघ अवलोकियौं राजलोक नर नाथ ॥२॥

दान और लोभ उसके पीछे पीछे घूमते हैं। वीरसिंह ने जाकर राज लोक को देखा ॥२॥

॥चौपाई॥

सूधी सब चन्दन की करि। अगर स्वरूप सिरनि पर धरी ॥
अगरावन के बनै रसाल । चारु रक्त चन्दन के लाल ॥३॥

सारी सूधी चदन की बनाई और उसके सिरों पर अगर की बत्तियां

रखी। रसाल युक्त वन के स्वरूप को लाने के लिये सुंदर चंदन का लाल रङ्ग रखा ॥३॥

बीच बीच सुभ सुबरन बनीं। साँकैं गज दन्तन की घनी॥
तिनकी छबि सौं छप्पर नये। विह्व पर कलस किये मनि मये॥४॥

बीच बीच म सुनहली हाथी दातों की साँकें हैं। इनकी सुंदरता से नये छप्परों की शोभा और भी बढ़ गयी है। उनके ऊपर मणियुक्त कलश रक्खे गये हैं॥४॥

ऊँचे थम्भनि दुगई नीं। गजदन्तन की सोभा सनीं॥
जरे जरायन क अनूकूल। सब अग ममिल कनक के फूल॥५॥

हाथी क दातों युक्त सुन्दर ऊँचे खम्बे बने हैं। उन पर सुन्दर बड़ाऊ काम है और सभी अँगों म सुन्दर सुनहले फूलों का काम है॥५॥

बरन बरन बहु सोभा सनैं। परम पवित्र चँदोवा तनैं॥
मोतिन की झालरि चहुँ ओर। झलक भूमकन अति चित चोर॥६॥

अनेक रगों में सुन्दर चँदोआ तने हुये हैं। उनमें चारों ओर मोतियों की झालर लटक रही है जो कि मन को चुरा लेती है॥६॥

कँचन सुमन समेत उदार। मोहन मनिमय चारु विकार॥
राती पियरी सेत सरूप। विद्रुम कि परदा बहु रूप॥७॥

सुन्दर सुनहल्न मणियुक्त लाल पीला, श्वेत विद्रुम का पर्दा मन को मोहित करने वाला है॥७॥

फटिक सिलनि में अगन बनैं। सुमिल समान सोभ सौं सनैं॥
तामें मनि मय बनौ हिंडोला। फूलत भूतल लोचन लोला॥८॥

फटिक शिलाओं पर सुन्दर सुमिन्न क समान चित्र बने हुए हैं। उसमें मणियुक्त हिंडोला बना हुआ है जिसमें सुन्दर चंचल नेत्र भूलते रहते हैं॥८॥

भीतिन अगन में सुख देति। अनि प्रतिबिंब हिये हरि लेति॥
पलँग पलँगिया सेज समेत। सिंघासन प्रति घर सुख देत॥९॥

दीवालों पर जो सुन्दर चित्र बने हुये हैं, वे अत्यधिक सुखदायी हैं और मन को हरने वाले है। सिंहासन पलग, सेज आदि सुख देने वाली सामग्री घर घर में विराजमान हैं ॥६॥

बहु भाँति मोहत अवरोध। देखत उपजत बहुत प्रबोध॥
क्यों ईस यह परम अशोक। सुन्दरिनि मय अद्भुत लोक॥१०॥

अनेक प्रकार से अन्तःपुर सुशोभित है जिसे देखने से प्रबोध उत्पन्न होता है ईश्वर ने शोक रहित सुन्दरियों से युक्त इस अद्भुत लोक की रचना की है॥१०॥

मुँख मडल दुति मंडित गेह। मत सहस्त्र ससि सहित सदेह॥
अमृत घर पुन्य करि जानियै। मानौ मदन सरासन मानियै॥११॥

उनके कांतियुक्त मुखमँडलों को देखने से ऐसा लगता है कि सहस्त्रों चन्द्रमा सदेह आ गये हैं मानों साक्षात कामदेव धनुष लिये खड़े हैं॥११॥

भृकुटि बिलास भग को गनै। काम धनुष सी सोभा सनै॥
हास चन्द्रिकनि चर्चित्त मही। स्वासा नील सुगध हैं रही॥१२॥

भृकुटि के टेढ़ेपन को कौन कहे। वह टेढ़ी भृकुटिया ऐसी लग रही हैं माना कामदेव का धनुष हो सम्पूर्ण पृथ्वी चन्द्रिकाओं के हास से मडित है। फलस्वरूप एक एक श्वास सुगध से पूर्ण हो रही है॥१२॥

जहँ सुगधनि के अमल कपोल। दरसत जनु आदरस अमोल॥
दासिनि हीं के अँग अगराज। स्वासा जहँ सुगन्ध बड़भाग॥१३॥

सुन्दरिओं के कपोल स्वच्छ हैं जो कि देखने में अमोल मालूम होते हैं। दासियों के अगों में भी अँगराज है, जिसके कारण बड़भागिनी श्वासा सदैव सुगधित बनी रहती है॥१३॥

अंग दुति जहँ कुमकुमा कपूर। अवलोकनि मृगनन्द के पूर॥
बाहु लताई चम्पक माल। तन्त्रीवर आलाप रसाल॥१४॥

जहा अगों की काँति कुम कुम और कपूर की भाति है। देखने में वह मृगमद से पूर्ण दिखाई देती है। चम्पा की लता की भाति उनकी भुजायें लम्बी हैं और उनके अलाप बड़े ही रसयुक्त हैं॥१४॥

निज सरीर की प्रभा प्रचन्ड । बसननि की गठना अखंड ॥
गति की भनु महावर जहाँ । अँसुक अग टेपिवर तहाँ ॥१५॥

उनके शरीर की कांति बड़ी ही प्रचण्ड है और वस्त्रों का गठन बड़ा ही सुन्दर है। चलने पर पैरों में लगा हुआ महावर सूर्य की भांति प्रतीत होता है और शरीर पर पतला रेशमी दुपट्टा सुशोभित है ॥१५॥

सखि कर अवलंबन उत्थान । गुरुजन प्रति साहस अतिजान ॥१६॥

सखी का सहारा लेकर गुरुओं के प्रति अत्यधिक साहस का व्यक्त होना है ॥१६॥

॥ दोहा ॥

प्रकट प्रेममय रूपमय सोभामय आगार ।
चतुराईमय चारुमय सोभामय श्रगार ॥१७॥

उनका श्रगार प्रेम, रूप, शोभा का घर है उस श्रगार में सुन्दरता और चतुरता भी है ॥१७॥

॥ चौपाई ॥

तहँ रमनि राजति बहु भाति । पदमिनि चित्रिनि हस्तिनि जाति ॥
गवा कहू बजावति वीन । कहू पढ़ावति पढ़ति प्रवीन ॥१८॥

वहा पर चित्रणी, हस्तिनी जाति की अनेक रमणिया निवास करती है वे गाते और वीणा को बजाते हैं। कहीं पर वे पढ़ाती है और कहीं स्वय पढ़ती हैं ॥१८॥

कहूँ चौपर खेलै बनिवाल । कहूँ सतरंज मतिरंज विसाल ॥
कहू चरित्रनि चित्रहिं चित्र । कहू मनिमाला गुहैं विचित्र ॥१९॥

कहीं पर वे बालायें चौपड़ का खेल खेलती हैं और कहीं पर शतरंज का खेल खेलती हैं। कहीं पर लोगों के चरित्र की चित्र बनाती हैं और कहीं पर विचित्र मनिमाला को गुहती हैं ॥१९॥

कहूँ प्रिय मँजन अंजन करहीं। अँगराग बहु अँगनि धरहीं ॥
कहूँ भूषनगन भूषित अग । कहूँ पहिरत उब बसन सुरंग ॥२०॥

कहीं पर बालायें मज्जन करती हैं और कहीं पर अञ्जन लगाती हैं। अनेक प्रकार के शरीर पर अगराग धारण करती हैं। कहीं पर आभूषणों से भूषित उनके शरीर दिखाई देते है और कहीं वे नवीन वस्त्र धारण करती दिखाई देती हैं।२०॥

येकै बैठी आनदभरीं। येकैं पौढ़ीं पलकनि परी॥
येकै कहरी प्रीतम की प्रीत। एकै कहति कपटि की रीति ॥२१॥

कोई आनन्द से बैठी है और कोई पलग पर लेटी हुई है। कोई अपने प्रियतम के प्रेम के ढग का वर्णन कर रही है और कोई कपट की रीति का वर्णन कर रही है ॥२१॥

पिये के एक परेषे कहैं। एक सषिन की सिख सुन रहैं॥
एकै पिये के औगुन गनै। एक अनेक भांति गुन भनैं ॥२२॥

कोइ प्रियतम की परीक्षा को कह रही है और कोई अपनी सखी की सीख को सुन रही है। कोई अपने प्रियतम के दोषों को कह रही है। और कोई गुणों का वर्णन कर रही है ॥२२॥

कहूँ भाजनि मान समेत। कहूँ मनावति सखि सुख हेत॥ *
सारो कनि पढ़ावति एक। परवा तें सुनि हँसति अनेक ॥२३॥

कहीं पर मानिनी अपना मान कर रही हैं और कहीं पर सखिया अपनी सहेलियों के सुख की कामना करती हैं। कोई तोता को पढ़ाती हैं। कोई परवा को सुनकर हँस रही हैं ॥२३॥

जो देखिये जोई ओक। सोई मानौ मदन कौ लोक ॥२४॥

जिसे ही देखिये वही मानों कामदेव का घर है ॥२४॥

॥ दोहा ॥

मृगज मराल मयूर सुक सारो चतुर चकोर॥
भूषन भूषति देषि कैं आँगन मैं चित चौर ॥२५॥

हिरन के बच्चा, हँस, मोर, तोता, चकोर, आदि आभूषणों से भूषित मन को चुरा लेते हैं ॥२५॥

चौपाई

इहि विधि भूषण भूपति देषि । जोवन जनम सुफल करि लेत ॥
तन मन अति आनन्दित भये । पद्मावति महल मैं गये ॥२६॥

इस प्रकार से आभूषणों से भूषित नायिकाओं को देखकर जीवन को सुफल कर ले । तन मन में अत्यधिक आनन्दित होकर पद्मावती के महल को चले गये ॥२६॥

बन्यौ कनक मय सदन सुवेस । मानौं मेंरु कौ उदर सुदेस ॥
सोहति तामैं पद्मावति । स्वर्ण कलस ज्यौं पद्मावति ॥२७॥

वह सोने से बना हुआ घर इतना सुन्दर है कि मानों सुमेरु पर्वत का उदर हो । उसमें स्वर्ण की भाँति पद्मावती सुशोभित है ॥२७॥

तव नृप रंग महल में गये । राज श्री मानौं रुचि रये ॥
रंगमहल बहुरंगनि बसैं । मूर्तिवन्त रंग जहँ लसैं ॥२८॥

तब राजा रंग महल में राज श्री पर अनुरक्त होकर गये जहाँ पर अनेक रंगों में मूर्तिवत होकर सौंदर्य स्वयं विराजमान है ॥२८॥

धरनी लालन वरनी जाई । जनु अनुराग रह्यौ लपटाई ॥
नख सिख तैं जहँ चित्रौ चित्र । परमेश्वर के परम विचित्र ॥२९॥

लाल पृथ्वी का वर्णन ही नहीं किया जा सकता । मानो सारी पृथ्वी पर अनुराग छा गया है । नख से शिख तक के परमेश्वर अनेक प्रकार के चित्र चित्रित हैं ॥२९॥

बनि आई जहँ बाला नई । निकरि चित्र तैं ठाढ़ी भई ॥
कंठ माल कल कठनि बनी । बनी कर्नफूलनि दुति घनी ॥३०॥

वहाँ पर एक बाला सज कर आई जिसे देखने में ऐसा लगा कि मानो वह चित्र से ही निकल कर आई हो । गले में माला है और सुन्दर गले वाली भी है अर्थात मधुर वचनी है । उसके कर्ण फूलों की कांति भी बहुत अधिक है ॥३०॥

झलकै दुति अँग अँग अनूप । प्रति बिम्बित तहँ रूपक रूप ॥
छमा दई दान विधरनैं । जनुपति तनु गुन मूरति वनै ॥३१॥

अंग प्रत्यंग से भाँति झलक रही है। वहाँ पर अंग अंग का रूप प्रतिबिम्बित हो रहा है। दास ने विचित्र उपमा दी है कि *प्रत्येक अंग मानों अपने गुणों का मूर्तिरूप है ॥३१॥*

प्रभु आगे कुसमांजलि छांड़ि। नृत्यति नृत्य कलान की माँड़ि ॥
नाद ग्राम स्वर पद विधि तालि। गर्भविविधि लय आलति काल ।३२।

स्वामी के सामने कुसुमांजलि को छोड़कर अनेक कलाओं से नृत्य करती है। नाद, ग्राम, स्वर, पद ताल अलाप आदि गर्व के साथ लेकर नृत्य कर रही है ॥३२॥

जानति गुन गमकनि बड भाग। जाति कला मूरछना राग ॥
जोति अरु यचन प्रकासहि चाल तीवर उरपति हय आडाल ।।३३।।

गमकन के गुणों को वह अच्छी प्रकार से जानती है और उसे मुर्छाना राग की कला भी ज्ञात है। तीवर उरपति, हय अडाल आदि नृत्य करती है ॥३३॥

राग डाट अनुरागत गाल। शब्द चालि जाने मुप ताल ॥
ढेकी उलथा अलमडिड। दुरमति सॅकनि पटरी डिड ॥३४॥

डाट राग अलापती है और शब्द चालि ढेकी, उलथा, अलमडिड दुरमति आदि नृत्य करती है ॥३४॥

तिनकी देखी भ्रमी मतिधीर। सीख्त मिस सतचक्र समीर ॥
नाचति विरसि असेष अपार। विषमय रस वरसत अमरार ॥३५॥

उनकी भ्रमित मति को देख सत चक्र समीर के बहाने वह सीखती है। सब प्रकार से विरसि नृत्य करती है और विषमय रस की वर्षा करती है ॥३५॥

पग पटतार मुरज पटतार। सब्द होत सब एकही बार ॥
सुनिजति है प्रति ध्वनि सबगीत। मानो चित्त पठत सरगीत॥३६॥

पैरों से पटतार और मुरज शब्द एक ही बार में होते हैं और सभी गीतों की प्रतिध्वनि सुनाई देती है ॥३६॥

हस्तक सँयुक्त एक । उपजत अँग अँग भाव अनेक ॥
जित हस्तक तित दीठिहि करै । दीठि जितै तित मन अनुसरै ॥३७॥

मयुक्त असंयुक्त हस्तक नायिकाओं के अङ्ग अङ्ग से अनेक भाव उत्पन्न होते हैं । जिधर हस्तक नायिका रहती है उसी ओर सब की दृष्टि जाती है और जिधर दृष्टि जाती है उधर ही मन लुभा जाता है ॥३७॥

जित जित मन तित-- छिनभाउ। भाग साव उपजै रसराउ ॥
इहि विधि पहर तीन निस गई । सोवन कै रुचि सबकै गई ॥३८॥

जिधर मन जाता है उसी के अनुरूप मन में भाव पैदा होते हैं। इस प्रकार से तीन पहर रात बीत गई, इससे सभी के सोने की इच्छा हुई ॥३८॥

पहुँचे सुन्दर सुख रुचि रए। पारवती के मंदिर गये ॥३६॥

अत्यधिक सुखी और रुचि के अनुकूल पार्वती के मंदिर में वीरसिंह गये ॥३६॥

इति श्रीमत् सकल भूममण्डला खण्डेश्वर महाराजाधिराज श्री राजा वीरसिंघ देवचरित्रे राजलोक वर्नन नाम बीसमः प्रकास ॥२०॥

॥ चौपाई ॥

मंदिर मानों सुधा सौं सच्यौं । कैधौं हीरन की रुचि रच्यौं ॥
बासे घनसार मलय रस रस्यो । अधि ऊरध सुभ गंधनिग्रस्यो ॥१॥

मंदिर मानों सुधा से सिंचित हो अथवा हीरों से रुचि के अनुसार सजाया गया हो। सम्पूर्ण मलय और कपूर की सुगंधि से पूर्ण है। ऊपर नीचे सभी जगह सुगंध व्याप्त हो गई है ॥१॥

किधौं सोम कौ उदर उदार। कै कैलास कंदरा सार ॥
दीप देखि गति मोहन लगी। मनौ मदन जोति जगमगी ॥२॥

अथवा चंद्रमा का उदार हृदय है अथवा कैलाश की कंदरा का सार है। जगमगाते हुए दीपक ऐसे मालूम होते हैं मानो कामदेव की ज्योति जगमगा उठी है ॥२॥

अति सकरत मनिमय सुख देन । चितवन चिहुंटि रहें नैन ॥
स्वेत सुमन मय चौसर बनें । उरमहँ सोहत भुरिजनि घनें ॥३॥

वे मणियुक्त, सुख देन वाले अत्यधिक चमकते हैं, जिनको देखने से नेत्र चकाचौंध हो जाते हैं । चौसर स्वेत पुष्पों से बनाये गये हैं, जो कि हृदय में सुशोभित होते हैं ॥३॥

बिच बिच मनिमय माला स्याम । उपमा दीबी नृपति सकाम ॥
जग जीत्यौ मदन विचारि । धनुषनि तैं गुन धरी स्वारि ॥४॥

बीच बीच में श्यामवर्ण की मालायें हैं, जिनकी राजा ने सकाम उपमा दी है मानो मदन ने अपने अपने गुणों को छोड़कर सारे संसार को जीत लिया है ॥४॥

कंचन कुथ्यौ जरायनि जरी । सोपैं सुखद सुगधनि भरी ॥
फूले फूलनि की अति बन्यौ । उपर चार चँदवा तन्यौ ॥५॥

कंचन और कुथो से जड़ी हुई हैं । उसकी सोपैं सुख देने वाली तथा सुगंधित हैं फूले हुए फूलों का बाना बना हुआ है और उपर सुंदर चंदोवा तना हुआ है ॥५॥

भूमि दुलीचा सोभा सन्यौ । मनौ चितेरे चित्रित बान्यौ ॥
तापर पलिंगु जरायनि जर्यौ । रविमंडल तैं जनु उद्धर्यौ ॥६॥

दुलीचा से भूमि सुशोभित है। मानो चितेरे ने भूमि को चित्रित किया है उसके ऊपर जड़ाऊ पलंग है, जो कि मानों रविमण्डल से उतर करके आया है ॥६॥

सेमर फूल तूल के रए । गरद जात मखमल मढ़ि लए ।
सोभन साभा कैसे दिए । तिनके तर उपरीठा दिए ॥७॥

सेमर के लाल फूलों से युक्त है उसके ऊपर मखमल मढ़ा हुआ है और उसके नीचे उपराठा लगाया है ॥७॥

हाटक पाट सूत सों सच्यौ । मानौं सूर किरणि करि रच्यौ ॥
चकचौंधर्वा चितवति ही दियौं । ताकी पलंग पास लै कियौ ॥८॥

बाजार को सून से रचा है मानो उसे सूर्य की किरणों से रचा गया हो। उस पलग को देखने से हृदय चकाचौंध हो जाता है ॥८॥

परसत दरसत ही पै बनै। बसन बिछाय सौभा सनै ॥
चंपकदल की गति गेंडुवे। मनु रूपक के रूपक दुवे ॥६॥

जिसको देखने और छूने मे ही आनन्द आता है। उसके ऊपर बस्त्र बिछा देने से और भी उसकी शोभा बढ़ जाती है। चद्दई रंग के तकिए हैं मानो वे सौंदर्य की प्रतिमा हों। ॥६॥

कुसुम गुलावन की गल सुई। दीनी सरस कुसुम की छुई ॥
दुइ दिस कै धन भारी धरी। अति सीतल गगाजल भरी ॥१०॥

गुलाबी रङ्ग की गलसुई है जो कि मानो कुसुम की हो। दोनों दिशाओं में घड़े रखे हैं जो कि शीतल जल से भरे हुए हैं ॥१०॥

सोहति तहँ सुदरी सनेह। सदा सुहावनि सुभाई देह ॥१
बैठे नृप सिंहासन जाइ। दान लोभ बहुतेरे सुपाइ ॥११॥

वहा पर स्नेह युक्त सुन्दरी सुशोभित है जिसका शरीर सदैव सुहावना रहता है। राजा जाकर सिंहासन पर बैठ गये और उनके साथ दान और लोभ आदि अन्य लोग भी बैठे ॥११॥

दान लोभ तब सब रस भये। देखन सुखद सालिकनि गये ॥
निपट रंक ज्यौं लालच भये। मेवा की साला मैं गये ॥ १२ ॥

उस समय दान लोभ सभी रसों से परिप्लावित हो गये और सालिकनि को देखने के लिये चले गये। वे एक भिखारी की तरह से ललचा कर मेवा की शाला को गये ॥१२॥

मानिनीनि कैसे मन मेन। गए मान साला मै देव ॥
उलटे ललटि नैन, ज्यौं देषि। सुभ सिंगार साला की पेषि ॥ १३ ॥

वीरसिंहदेव माननियों के भाव से मानशाला को गये। पीछे घूमकर जब देखा तब उन्हें शृङ्गारशाला दिखाई दी ॥१३॥

मत्रिनि स्यौं बैठे सुख पाइ। पलक मत्र साला मैं जाइ ॥
चतुर कुंवर तहँ सोभत भये। धीरज धरि घन साला गये ॥ १४ ॥

फिर पलक मंत्रशाला में जाकर मन्त्रियों के साथ जाकर बैठे। जहाँ पर चतुर कुँवर सुशोभित हो रहा था। उसके बाद वह धैर्य धारण कर धनशाला को गये ॥१४॥

दोहा

तेही समय सुवेस तब सुन्दर सुखद उदार।
बोले चरनायुधनि ज्यौं वंदीजन दरबार ॥ १५ ॥

उसी समय दरबार के अत्यधिक सुन्दर एवं उदार बन्दीगन मुर्गों की भाँति बोले ॥१५॥

चौपाई

सुनि वंदीजन के परबोध। जागि उठ्यौ सिगरो अवरोध
सुक सारो तब जागत भये। नृप नायकहि जगावन गए ॥ १६ ॥

बन्दियों का प्रबोध सुनकर सारा अवरोध जाग उठा। सुक सारी तब जाग उठे और वह राजा को जगाने के लिये गये ॥१६॥

सुक सारिका उवाच ॥

रामचित्र चूड़ामनि वीर। चंद्र गयो अस्ताचल तीर ॥
अब न सोइजै परम उदार। ब्रह्म महूरत की भई बार ॥ १७ ॥

हे वीरसिंह देव! चंद्रमा अस्ताचल की ओर चला गया है। हे उदार! वीरसिंह देव अब सोने का समय नहीं है क्योंकि यह समय ब्रह्ममूहूर्त का है ॥१७॥

जागहु त्रिय गोविंद गुन गयौ। श्रुति पुरान द्विज मध्वनि सुनौ।
सुनौ त्रिविधि तारनि तारनी। श्री हरि की मंगल आरती ॥ १८ ॥

हे वीरसिंह अब जगकर गोविंद के नाम का स्मरण करो और ब्राह्मणों द्वारा श्रुति और पुराण को सुनो। श्री हरि की मङ्गल की आरती का समय हो गया है ॥१८॥

पल पल तम नासत परितंहि। जैसें अन उदिम मैं लच्छि ॥
होत जात त्यौं अमल अकास। जैसे अनुभव ज्ञान प्रकास ॥ १९ ॥

प्रत्यक्ष रूप में पल पल में वह अंधकार को नष्ट करती है और जिसके लिये उसे कोई प्रयास नहीं करना पड़ रहा है। आकाश उसी प्रकार से स्वच्छ होता जा रहा है जिस प्रकार से अनुभवों से व्यक्ति प्रकाशित हो जाता है ॥१६॥

जदपि सनेह दीप मुनि भूप। तदपि देखिजै औरहिं रूप॥ २०॥

यद्यपि स्नेह दीपा को राजा ने सुना, किन्तु उसे रूप और ही दिखाई दिया ॥२०॥

ज्यौं कुजाति जन आपन घात। हितहीं मे अनहित ह्वै जात॥ २१॥

जिस प्रकार कुजातीय स्वयं ही अपना घात कर लेते हैं। हित की सोचते हैं और अनहित हो जाता है ॥२१॥

छन हुं छन तारा गन छटैं। द्विज दोसनि तें ज्यौं कुल छटैं॥
विरले दीसत हैं जग कंत। जैसैं कलियुग मैं कै सत॥ २२॥

क्षण क्षण में तारे कम हो रहे हैं जिस प्रकार द्विजदोष से कुल घटने लगता है। जगकंत उसी प्रकार विदीर्ण रूप में दिखाई देते हैं जैसे कलियुग में सत दिखाई देते हैं ॥२२॥

कमल नितै अलि उड़ि जात ज्यौं सुभ उदय अशुभ कै प्रात॥
अलिकुल अमल कमल तजिगये। गजगडनि अवलंवित भये॥ २३॥

भ्रमण उड़ उड़ कर कमल के पास जाते हैं। अलिकुल ने स्वच्छ कमलों को छोड़कर गज गडनि का सहारा ले लिया ॥२३॥

ज्यौं नहिं पूरण ज्ञानी लजैं। भलै सुरन तजि सुघर भजैं॥
फूले अमल कमल कुल ऐन। पिय आवन सुनि ज्यौं तिय नैन॥२४॥

जिस प्रकार से पूर्ण ज्ञानी लज्जित नहीं होता है भले ही घर छोड़कर सुघर भाग जावे है। कमल उसी प्रकार खिले हुये हैं जिस प्रकार प्रियतम के आगम की बात सुनकर नायिकाओं के नेत्र खिल जाते हैं ॥२४॥

अरुनोदय जग जीवित जगे। अपने अपने मारग लगे॥
जैसे लगन उधमैं धाय। प्रजा शंक राजा कहँ पाय॥ २५॥

अरुणोदय होने पर सभी जीव उसी प्रकार अपने काम में लग गये जिस प्रकार उधम, प्रजा और राजा को सशंकित पाकर लग जाता है। २५॥

जहँ तहँ अरुन सभा सोहियौं। कटि कुल की कविता मोहियौं ॥
अमल फरिक भित्तिन के भाग। मानौ रग अपने अनुराग ॥ २६ ॥

इधर उधर अरुणोदय की लाली कविकुल को मोहित कर रही हैं। स्वच्छ फटिक की दीवालें मानो अनुराग से रजित हो गई हैं। ॥२६॥

आनि ग्रसौं ज्यों क्रोध स्वरूप। चद्रिकानि कौं गुनौ अनूप ॥
सरसि नील वेदिका आनि। अमल कमलनि सी जियजानि ॥ २७॥

अथवा क्रोध ने आकर ग्रस लिया है। स्वच्छ नील वेदिका सुन्दर कमलों की भाति सुशोभित है ॥२७॥

अमल कमल सग्राम तजि हियैं। सुदतन कौं सुखही सुखछियैं॥
झँझँकति नोल झरोखनि देपि। राहु मुखनि कै मानहु लेपि॥ २८॥

अमल कमल अपन हृदय से सग्राम को छोड़कर सुदतों के मुख को सुख देने के लिये ही खिले हैं। मानो राहु के मुख को झरोखों से देखकर झिझक रहा है ॥२८॥

जलजावलि तारा ज्यौं धरैं। विद्रुम परदनि पत्रित करैं ॥
वदीजन बहु करत प्रसस। बोलत डोलत सारस हस ॥ २९ ॥

जिस प्रकार से जलजावालि तारा को धर लेती है और विद्रुम परदनि को पत्रित करता है उसी प्रकार वदीजन प्रशसा कर रहे हैं। सारस और हस बोलते हुये इधर उधर घूमते रहते हैं ॥२९॥

नूपुर ध्वनि सुनियत बहु भाति। कलहसनि की कलध्वनि पाँति ॥
किंकिन कक्न की झंकार। ध्वनि सुनि जत कन एकहिवार॥ ३०॥

नूपुरों की ध्वनि अनेक प्रकार से सुनाई देती है और कलहंसिनियों की कलध्वनि भी सुनाई देती है। ककण और किंकिण की झंकार सुनाई देती है ॥३०॥

बाजत मानों चारिहु ओर। मंदिर मगन नगारे भोर॥
अवसि विलम्ब करौ का ईस। जागहु द्विजवर देहिं असीस॥३०॥

प्रातःकाल मंदिर के चारों ओर नगाड़े बजते हैं। हे राजन! अब उठने में विलम्ब मत करो। ब्राह्मण आशीर्वाद दे रहे हैं॥३०॥

विविध गुनीजन जाचक घने। सुत सोदर मंत्रि आपने॥
बड़ रावड सामंत परधान। सैनापति जन सजन समान॥
देहि केशव जे मध्य के दास। ठीनें सब दरसन की आस॥३१॥

अनेक गुणीजन, याचक, पुत्र सोदर, मंत्री बड़रावड़ सामंत प्रधान, सेनापति तथा जितने भी मध्य श्रेणी के दास हैं, आपके दर्शनों की आशा लगाये खड़े हैं॥३१॥

सहनाई सुनि जनु सुकुमार। रुंज पखावज आवझ गर॥
झालरि झांझ भेरि झंकार। लघु दीरघ दुन्दुभी अपार॥
कैमव सबै एकही बार। बाज उठे आठहु दरबार॥३२॥

सहनाई, रुंज, पखावज, आवझ, झाँझ भेरी, दुंदुभी आठों दरबार में एक ही साथ बज उठी॥३२॥

॥कवित्त॥

विप्र जाचकनि की विविध विधि मंडल की,
नारिनि की नगरी जु नैन निहरति हैं।
गंगा जू के तीर तीर सागर के तीर हूलौं,
जेती जग धर्म पुरी धरनि धरति हैं॥
इन दिन दिन दिन और सब केसवदास,
देस देस अक अक साखियौं करति हैं।
बाजबहा नगर नागरे वीरसिंघ जू के नगर,
नगर डूलि निगर वरति हैं॥३३॥

इति श्रीमन् सकल भूमण्डला खण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री राजा वीरसिंघ देव चरित्रे एकविंशतिः प्रकाशः॥३४॥

विप्र और याचकों की मंडली अपने नेत्रों से नगरी की ओर देखा करते हैं। गङ्गा के किनारे से लेकर सागर के किनारे तक जितनी भी संसार में धर्मपुरी है वह वीरसिंह के अभाव में दिन प्रति दिन क्षीण हुआ करती है। किन्तु नगर मे वीरसिंह के नगाड़ों के बजते ही प्रसन्नता छा जाती है ॥३४॥

॥चौपाई॥

श्रवन सुनत सारो सुक बैन। जागि उठे पङ्कज दल नैन ॥
लै बहु नारायण के नाम। आंगन आए मन अभिराम ॥१॥

सारो सुक की वाणी सुनते ही वीरसिंह के कमलवत नेत्र खुल गये। नारायण का अनेक बार नाम लेकर वे इच्छाओं को पूर्ण करने वाले आंगन में आये ॥१॥

दसननि तैं निकसी सुन्दरी। महाराज के पांयन परी॥
मानों सेवति भांति अनंत। निधिपति की निधि मूरतिवंत ॥२॥

घरों से निकल कर सभी सुन्दरियां महाराज के चरणों पर गिरीं। मानों अनेक प्रकार निधि निधिपति की सेवा कर रही हो ॥२॥

तरुनी तरुन पपारति पाय। पोंछे सुन्छम असन बनाय॥
जल मृत्तिका मिली विधि जानि। सात प्रकार पपारे पानि ॥३॥

तरुणियां पैरों को धोकर स्वच्छ कपड़ों से उन्हें पोंछ रही हैं। जल और मिट्टी से उन्होंने सात प्रकार से हाथ धोये ॥-॥

बहुरि कुंकुमा चंदन धारि। चरण पखारे वारिय चारि॥
कर पद है शुचि श्री नरनाथ। तब दातौन लई निज हाथ ॥४॥

फिर कुंकुम औ चंदन से पैरों को धोया। हाथ और पैरों को अच्छी प्रकार से धोकर वीरसिंह ने अपने हाथ में दतौन ली ॥४॥

लोलरि लोचन उन्नत हियौ। कंचन की झारी भरि दियौ ॥
कमल दलनि के दोना चारु। तिन में धर्यौ घनौ घनसार ॥५॥

सुन्दर चञ्चल नेत्र और उन्नत हृदय है। सोने की झारी में भरकर दिया। सुन्दर कमलों के दोनों में कपूर रख कर दिया ॥५॥

तिन मैं बोरि बोरि कैं कुची। रुचिर दँतधावन रुचि रचि ॥
पुनि गड्डक डोरि तब देत। बहुरि कुची कर औरे लेत ॥६॥
उसी में बार बार दतौन की कूची को डिबोते हैं और गड्डुक को देकर दूसरी दतौन ले लेते हैं ॥६।

बत्तिस कुची भरि जब करै। तब मुदत धावन परिहरै ॥
धावनि करि बदन पखारि। स्वच्छ अगौंछनि पोंछे वारि ॥७॥
बत्तीस बार कूची से जब इस प्रकार दतौन करते हैं तब फिर दांतों को साफ करते हैं। दतौन करके स्वच्छ जल से मुख को धोकर साफ अगौंछे से उसे पोंछते हैं ॥७॥

आछे तँह ब्राह्मननि निहारी। उपमा दीनी दान विचारी॥
दयनि परे अधराधर मित्र। लै गंगा जल करै पवित्र॥८॥
उसके बाद ब्राह्मणों को देखते हैं। दान ने उपमा दी कि ओठों पर मानो सूर्य की किरणें पड़ रही हों और ब्राह्मणों के देखने के बाद गङ्गाजल से स्नान करके अपने शरीर को पवित्र किया ॥८॥

बाहिर आए कासी राज। सफल भयौ सबहीं कौ काज॥
सिंहासन बैठत कासीस। गनक चिकत्सनि दई असीस ॥९॥
इसके बाद काशीराज बाहर आये जिससे सभी के कार्य सफल हो गये। काशीराज के सिंहासन पर बैठते ही सभी चिकित्सकों ने आशीर्वाद दिया ॥९॥

सुभ ग्रह जोगनपत तिथि जानि। सोरन चहु सुनायौ आनि॥
नीरा निरखि मुदित मन भये। रोचक याचक ओमद दये ॥१०॥
ग्रह नक्षत्र तथा तिथि के समय को जानकर चारण ने उसे आकर सुनाया। नीरा को देखकर मन में बहुत ही आनन्दित हुये और याचकों को सुन्दर आमद दिए ॥१०॥

आये प्रोहित प्रथम प्रधान। आयुष धन रक्षक धन धान॥
आये कवि सैनापति धीर। आये मंत्री मित्र वजीर॥ ११॥

प्रथम पुरोहित आये और उसके बाद आयुर धनरक्षक आये। फिर सेनापति, मन्त्री मित्र वजीर भी आये ॥११॥

सुनि नृप सत्रु मित्र की बात। रैयत रजपूतनि की बात ॥
कहि मुनि राज काज ब्योहार। याचक जन को करी सनमान ॥१२॥

राजा ने शत्रुमित्र, प्रजा और राजपूतों की बात सुनकर राज कार्य के व्यवहार को बनाया और याचकों का सम्मान किया ॥१२॥

पसु पछिन के दुख सुख सुने। अतर भाय सबै के गुनै ॥
आए तब मर्दनिया जबै बहुरे सब अधिकारी तबै ॥ १३ ॥

पक्षियों के सुख दुख को भी सुना और सभी के आन्तरिक भावों का समझा। जब राजा मर्दनिया को चले आये तब सभी अधिकारी वापस चले गये ॥१३॥

॥ कवित्त ॥

निपट नवीन रोग हीन बहु छीर लीन पीन पीन तनय हरन है। तामै मढा पीठ लागे रूपे की पुरीनि दीठि स्वर्ण श्रग मही देखी आनंद भरत है॥ तामे की दोहनी स्याम पाट का ललित लाइ, घटनि मो पूजि पूजि पायनि परति है। सोभन सनौढियन बीरसिंह दिन प्रति गो सहस, समन दान दई भावन करत है॥ १४ ॥

रोग से बिल्कुल दूर है। छीर म लीन है। शरीर की पीडा का हर लेता है। उसे ऊपर की पीठ से मढा जाता है और चाँदि सोने की शृङ्ग को देखकर बहुत ही आनन्दित हो जाते है। काँसे की दोहनी है। श्यामपाट की सुन्दर लोई है और घटों से पूज पूज कर पैरो पर पडता है। वीरसिंह देव सहस्र गायें सनाढ्य ब्राह्मणो को देकर भोजन करता है ॥१४॥

॥ दोहा ॥

गंगाजल स्नान करि पूजे परम देव ॥
सुनि पुरान गोदन दै कीनै भोजन भेव ॥ १५ ॥

गङ्गाजल से स्नान करके पूर्णदेव की उपासना की पुराण को सुना और फिर गोदान देकर भोजन किया ॥१५॥

॥ चौपाही ॥

वीरसिंघ भोजन करि गए। रतन रमैं रवनपति ठए ॥
राजा रतन शृंग पर जाइ। देखी बनराजी सुखदायी ॥ १६ ॥

वीरसिंह भोजन करके रतन शृङ्ग पर चले गये और वहाँ पर उन्होंने सुखदायी बनराजी को देखा ॥१६॥

भौंरे आप लिलोस बीर। तरलित कोमल मलय समीर ॥
तनु तन मनौ अतनि का भुजा। कैधौं बनो बसंत की धुजा ॥१७॥

वीरसिंह ने भौंरे को देखा और वहाँ पर मन्द मन्द मलया गिरि की समीर चल रही थी। सम्पूर्ण शरीर मानो अतनि का भुजा हो अथवा वसन्त का ध्वजा हो ॥१७॥

ललित लवंग लता हिंडोल। झूलत मधुप मत्त अरि लोल ॥
बोली कल कोकिला सुरस। मधु रितु के जन कहत सँदेस ॥ १८ ॥

चचल लवंगलता और लवली लतायें फूली हुई हैं। जिन पर चचल मन्द मधुप झूल रहे हैं। कोकिला बोल रही है मानो यह बसन्त ऋतु के सदेश को कह रही हो ॥१८॥

उतर्यौ भवन भूप तब देखि। सुनि सुंदरी समेत बिसाखि ॥
मदन विजय कौं दुंदुभि बजी। मनहीं कामदेव विधि सजी ॥ १९ ॥

तब उसे देखकर राजा सुंदरियों समेत भवन में आया। उसी समय कामदेव की दुँदुभी बजी जिसके कारण सभी ने मन को अनेक प्रकार से सजाया ॥१९॥

घर घर प्रति आनन्दी लोग। प्रगटपै पुर मे मदन प्रयोग ॥
नासा निसि अरुनोदय भयो। राज लोग सब उपवन गयो ॥ २० ॥

घर घर में आनन्द मनाया जाने लगा मानो कामदेव नगर में प्रकट हो गया हो। रात्रि समाप्ति हुई, प्रातःकाल हुआ और सभी लोग उपवन को चले गये ॥२०॥

कामदेव कौ मण्डन आन । पहिरि बसन बहु रङ्ग निधान ॥
चालिबे कौ चित कियौ सुजान ॥ २१ ॥

कामदेव के प्रभाव के कारण से अनेक रगो के कपड़े लोगो ने धारण किये और सभी ने चलने का निश्चय किया ॥२१॥

पीसवान एक रङ्गित जानि । ठाढ़ौ किय वह आगे आनि ॥
निलिष मूल चित कौ मो दूरै । चञ्चल चारु नृत्य सौ करै ॥ २२ ॥

एक रङ्गित जानकर पीसवान ने उसे लाकर आगे खड़ा कर दिया। सुन्दर चञ्चल नृत्य के द्वारा थोड़े समय के लिये वह सभी के हृदयों को आकर्षित कर लेता है ॥२२॥

तरल तेज छिति सुम्मन खनै । चञ्चलता सिखवत जन मनै॥
तिहि चाढ चलत रूप गुण बढ़यौ । जन मन उपर मनमथ चढ़यौ॥२३॥

सुन्दर मना को उसका तरल तेज आकर्षित कर रहा है और मानो वह चञ्चलता सिखा रहा हो। उसके ऊपर चढ़ते ही सौंदर्य और भी अधिक बढ़ गया, मानो मन के ऊपर कामदेव सवार हो गया हो ॥२३॥

प्रफुलित अमल कमल कुल ताल । तँह कोलाहल करत मराल॥ ॥
किसुकमय उपवन मग माल । पथिक रुहिर जनु ह्वै गये लाल २४।

जहा पर सरोवर कमलो से प्रफुल्लित हैं वहा पर हँस कोलाहल कर रहे हैं। मार्ग म किंसुक का उपवन है जो कि पथिकों के रुधिर से मानौ लाल हो गया हो ॥२४॥

त्रिय सग श्रम कन सिंचित भये । पुलकित वकुल रुचिर रुचि रये॥
वरण प्रहारण प्रमुदित भये । सोक असोकनि तें रुचि रये ॥२५ ॥

मार्ग स्त्रियो के श्रमकणों से सिंचित हो गया। उस मार्ग म आनन्दित व कुल सुशोभित हैं। वरण प्रहारण भी आनन्दित हुए। शोक अशोक से रुचिर हो गए ॥२५॥

सीतल अमल कमल उर धरै । मदन अनिल विरही जन जरै ॥
किधों मित मन पकरण काज । हाथ पसारे मनमथ राज ॥ ८६ ॥

कमल शीतलता को हृदय में धारण करता है और विरही जनों को कामदेव जला रहा है। मानो मितमन के काम के लिये कामदेव अपने हाथ फैला रहा हो ॥२६॥

॥ दोहा ॥

जितने नागर नगर नर जहँ तहँ केसव दास।
देखि देखि नरनाथ कौं बरनत बुद्धिविसाल ॥ २७ ॥

जितने भी नगर में नागर हैं वे सभी अपनी बुद्धि के अनुरूप नरनाथ की प्रशंसा कर रहे हैं ॥२७॥

॥ चौपाई ॥

इन शृंगार वृक्ष को मूल। गिरिवर गुनगन कौ अनुकूल ॥
तरुगन चतुरनि कौ मधुमास। जग जन कौ आदरस प्रकास ॥ २८॥

मानो वृक्ष शृङ्गार का मूल हो और गिरिवर गुणों के अनुकूल हो। संसार के लिये आदर्श रूप तरुगण मधुमास लेकर आये हैं ॥२८॥

कीरति लक्ष्मी कैसी गेह। विधा लता कुंज की मेह ॥
सकल सत्य शुचि कैसो सेतु। कै द्विज कैसो धरननि केतु ॥ २९ ॥

लक्ष्मी की कीर्ति के समान घर है। कुञ्ज की लतायें विद्या हैं। सम्पूर्ण सत्य और पवित्रता का सेतु है। अथवा पृथ्वी पर ब्राह्मणों का केतु है ॥२९॥

दिव्य कंज पर मानौ हंस। उदयाचल पर मन रवि अंस ॥
येही समय महा सुखकन्द। प्राची दिशि परगट भौ चन्द ॥ ३० ॥

अथवा दिव्य कञ्ज के ऊपर हंस है अथवा उदयाचल पर सूर्य है। इसी समय सुखकारी चाँद पश्चिम दिशा में प्रकट हुआ ॥३०॥

चन्दबदनी चन्दहिं तिहिं घरी। बरनत विविध भाँति तिहिं भरी ॥
कन्द कुमुम नासहि का मनो। मनिमय मनो मुकुट सोभनो ॥ ३१॥

उस समय नायिकायें चन्द्र का अनेक प्रकार से वर्णन करने लगीं। मानो कन्द कुसुम को नष्ट करने के लिये ही मणियुक्त मुकुट सुशोभित हो रहा है ॥३१॥

नभ श्री कैसो सुभ तायक। मुकुता मनिमय सोभत अंक ॥
बानरपति सौ तारासग। स्वेत छत्र जन धरयो अनग ॥ ३२ ॥

आकाश मे मुक्ता मणियो से युक्त सुशोभित है। बानरों की सेना की भाति उसके साथ में तारे हैं और मानो कामदेव ने स्वय उस पर श्वेत छत्र लगा रखा हो ॥३२॥

गगन गाभिनि गगा नीर। फूल्यो पुण्डरीक सौ धीर ॥
महाकाल अहि कैसो अरड। गगन सिन्धु जनफेन अखण्ड ॥३३

उसी के पास आकाश गङ्गा है जिसके पास पुण्डरीक पुष्प का भाति फूला हुआ है। मानो वह महाकाल के समय का अहि अरड हो अथवा आकाश सिधु का अखण्ड फेन है ॥३३॥

मदन नृपति कौ गगन निकेत। राजत कलस सुदुबौ समेत ॥
सिदुध सुन्दरी को जन धन्यौ। दन्त पत्र सुभ सोभा भान्यौ ॥ ३४॥

अथवा आकाश में कामदेव क रहने का घर है। अथवा सुन्दर कलस विराजमान हैं अथवा सिधु सुन्दरी है जिसके दत पत्रों की शोभा फैली हुई है ॥३४॥

॥ दोहा ॥

चारु चन्द्रिक सिन्धुमय सीतल स्वच्छ सलेज ॥
मनौ सेषमय सोभिजै हरिनाधिष्टित सेज ॥ ३५ ॥

सुन्दर शातल चद्र इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो भगवान विष्णु शेषनाग की शैय्या पर अधिष्ठित हो ॥३५॥

॥ कवित्त ॥

आनि दिवि देव अब पूज्यौ जग जीत सब पूजा जगमग रही केसर निवास में। पकन समीकन मृगक अक अकि तन मृगमद चरचितु मोहत सुवास मैं ॥ कथुकुरसा हिनन्द सोचैही तुम्हारै यह देखियक जम कन्द चन्द चन्दन अकास मैं चन्दन चमक चारु चाँदिनीनि जल विन्दु फूल स्वच्छ अच्छन तारिका प्रकास मैं॥३६॥

दिवि देवों ने आज ससार के जीवों की जो पूजा की है वही निवास में जगमगा रही है। हे मधुकर शाहि के पुत्र सच मुच यश को ही चन्द्र रूप में फैला हुआ आकाश में देखता हूँ। तुम्हारे चन्दन की चमक ही चाद की चाँदनी और तारों के प्रकाश मे है ॥३६॥

॥ चौपाही ॥

सतरयौं भूप सुरन हैं देर्या । सुन्दरीनि सौं मधु रितु लेखि ॥
निसि नामी अरूनोदय भयौ । राजलोक सब उपबन गयौ ॥ ३७॥

राजा घर से बाहर निकले और उन्हाने सुन्दरियों के समान बसन्त ऋतु को देखा। रात समाप्त हुआ और प्रभात बेला आयी। सारा राजलोक उपवन की ओर चला गया ॥३७॥

पमवान नृप आयौ जानि। घोरो ठा मौं कीना आनि ॥
लस रेतुरून शुभ्रनि भनो। सीखत चचलता मन मनो ॥ ३८॥

पार्श्ववान ने राजा को आया हुआ जानकर घोड़े को लाकर खड़ा कर दिया। उसके रनुकन इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं मानो मन चञ्चलता सीख रहा है ॥३८॥

तिहि चढ़ि चलत रूपगुन बढ़यौं। जुनु मन उपर मनमथ चढ़यौं।
मारग कछू विलम्बन न कर्यौं। उपवन दीठि राय की पर्यौं ॥३६॥

उसके ऊपर चढ़ते ही उसका रूप और गुण बढ़ गया और मानो मनमथ मन के ऊपर सवार हो। मार्ग में बिना विलम्ब किये ही उपवन की ओर राजा चल दिया ॥३६॥

दान लोभ सों सोभा सनै। गये बाग मे तीना जनै ॥
सब हैं अपनी देह दुराय। देखी जुवती मण्डली लजाए ॥ ४०॥

दानलोभ से सुशोभित होकर तीना लोग उपवन को गये। सबसे अपने को छिपा कर युवती मण्डल को जाकर देखा ॥४०॥

कोऊ उर सींचति तम मूल कोऊ लोरति फूले फूल ॥
एकै चतुर चुगावति मोर। लीनै सारो सुक चितचोर ॥४१॥

कोई अपने हृदय मूल को सींच रहा था और कोई फूले हुये फूलों को तोड़ रहा था। कोई चतुर मोर को चुगा रहा है और कोई चित्त को चुराने वाले सारोमुक को लिए है।

अमल जलज कर कमलनि लियें। हम चुनावति चुचनि छियें ॥
जब अंकुर कोमल कर धरें। मृगनि चरावति पैं नहि चरें ॥४२॥

हाथ में कमल लिये हुए हंसों को चुगा रही हैं। जब कोमल करों में अंकुर धारण कर लेती हैं तब मृग चराने पर भी उनसे नहीं चरते हैं ॥४२॥

सूक्षम वाणी दीरघ अर्थ। पढ़नि पढ़ावति सुकनि समर्थ ॥
दक्षिण दशा यहावै वाम। गुनगन वलित सुअबला नाम ॥४३॥

थोड़ा बोलती हैं किन्तु उसमें अर्थ अधिक रहता है। पढ़ती हैं और सुकों को भी पढ़ाती हैं। दक्षिण दशा वाम कहलाती है। अनेक गुणों से पूर्ण होने पर भी अबला नाम है ॥४३॥

अचल चित्त चितवनी चलरना। सुन्दर चातुर तन मन घना ॥
उर अन्तर मृदु उरज कठोर। सुद्ध सुभाव भाव चितचोर ॥४४॥

चित्त है और चितवन चञ्चल है और तन मन से बहुत ही चतुर हैं। हृदय बड़ा ही कोमल है, किन्तु उरोज बड़े ही कठोर हैं। स्वभाव शुद्ध है, किन्तु उनके भाव चित्त को चुराने वाले हैं ॥४४॥

विम्बाधर बहु विधनि धरैं। मोहन हारिन के मन हरैं ॥
करत करै करता मतिमन्द। तिनके वदन चन्द सम चन्द ॥४५॥

अनेक प्रकार से विम्बाधर को धारण करती हैं और लोगों के मनों को हर लेती हैं। उनके मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर हैं ॥४५॥

तिन देखत जिय लाजित रहै। जिनके मोर चन्द्र लै करैं ॥
अति चचल नैनानि अनूप। रचे विरचि बनाई सरूप ॥४६॥

उनको देखने से मार तक मन म लज्जित हो जाते हैं। उनके नेत्र बहुत ही चचल हैं और उनके सौंदर्य को ब्रह्मा ने स्वयं रच कर
है ॥४६॥

जानि अमन विधि कियें सुजान। खञ्जन मीन मदन से बान॥
रूप अनूपम रूपक भये। श्री फल अमल सदा फल ठये॥४७॥

जान कर विधि ने सुजान कर दिया। खंजन मीन और मदन के बान सदृश हैं। उनका सौंदर्य स्वयं रूपक है। उसमें श्रीफल के अमल फल लगे रहते हैं॥४७॥

दारिम से सोहत सुभ दंत। करत करे करतार अनंत॥
अति दुति दीन जानि द्विज नाद। राखे मूँदि अनारनि माद॥४८॥

उनके दांत दाड़िम की भांति शोभित हैं। द्विजनाद ने उन्हें अत्यधिक हीन जानकर अनार के बीच में बन्द कर रखा॥४८॥

तिनसों तीन्यौ जन धरि धीर। बरनन लागे सकल सरीर॥
जिनके दीरघ कोमल केश। सूक्ष्म स्यामल सुमिल सुदेश॥४९॥

तीनों ही लोग धैर्य धारण करके उनके उनके शरीर के सौंदर्य का वर्णन करने लगे। उनके बड़े बड़े काले सुन्दर बाल हैं॥४९॥

उज्जल झलकति झलक सुदाम। प्रभु मन होत देखि कै दास॥
तिनके बैनी गुही विचार। रूप भूप कैसी तरवारि॥५०॥

उन बालों की झलक देखकर ही मन उनका दास हो जाता है। उन बालों के बीच में गुथी हुई वेणी ऐसी लगती है मानो राजा की तलवार हो॥५०॥

प्रिया प्रेम की देखनहारि। प्रतिभट कपटनि डाटन हारि॥
किधौं सिंगार सरित सुखकारी। वंचक तानि बहावनि हारि॥५१॥

प्रियतम के प्रेम को देखने वाली हैं। कपट को प्रतिभट डाटने वाली है। सुख देने वाला शृङ्गार किया जो कि वंचकता को बहाने वाला है॥५१॥

किधौं सिंगार लोक कै जानि। कचन पत्र पांति सौं मानि॥
कैधौं प्रेम आगमन काल। रचे पावड़े रूप बिशाल॥५२॥

स दार को जानकर शृङ्गार किया, जो कि कंचन पत्र की पाँति के समान है। अथवा प्रेम के आगमन का काल जानकर विशाल पाँवड़े रचे हों ॥५२॥

पाटिनि चिलक चित्त चोगुनी। मानौं दमकति घन दामिनी॥
सेंदुर माँग भरी अति भली। तापर मोतिन की आवली॥५३॥

पाटिन की चमक अधिक है मानो आकाश में बिजली चमक रही हो। माग में सेंदुर भरा हुआ है, उस पर मोतियों की अवली है॥५३॥

गंग गिरा सी जनु तनु जोरि। निकसी जनु जमुना जल फोरि॥
सीस फूल सिर उरयो उराई। माग फूल सोभियत सुभाई॥५४॥

वह मोती की अवली ऐसी मालूम होती है मानो यमुना के जल को फाड़ कर गङ्गा जी निकली हो। सिर तथा माग पर लगे हुये फूल सुशोभित हैं॥५४॥

वेनी फूलनि की बरमाल। वेंदा मध्य भाल मनि लाल॥
तम नगरी पर तेज निधान। बैठे मनो बारहु भानु॥५५॥

वेणी सुन्दर फूलों से गुथी हुई है। बीच मस्तक पर लाल बेंदा है। मानो अंधकार पूर्ण नगर पर तेज हो अथवा मानो बारहो भानु बैठे हो॥५५॥

भृकुटि कुटिल बहु भाइन भरी। भाल लाल दुति दीसति खरी॥
मृगमद तिलक रेख जुग बनी। तिनकी सोभा सोहत घनी॥५६॥

टेढ़ी भृकुटी अनेक भावों से बनी हुई है। भाल पर लाल कांति बड़ी ही सुन्दर दिखाई देती है। मृगमद का लगा हुआ तिलक ही बड़ा सुन्दर लगता है॥५६॥

जनु जमुना जल लखि सुभगात। परसन पितहि पसारे हात॥
लोचन मनो मैन के जन्त्र। भुज युग ऊपर मोहन मन्त्र॥५७॥

ऐसा मालूम होता है कि जमुना के सुन्दर जल को देखकर पिता (सूर्य) ने उसके स्पर्श करने के लिये हाथ फैलाये हो। उनके नेत्र मानो कामदेव के जंत्र हैं और भुजायें कामदेव के मंत्र हैं॥५७॥

नासा दुति मय जग मोहियै । पहिरै मुक्ताफल मोहियै ॥
भाल तिलक रवि कौं व्रत लियै । रूप प्रकास दियौ सौ दियौ ॥५८॥

नासा की दुति ने सारे संसार को मोह लिया है । मुक्ताफल के कारण नासा और भी सुशोभित हो रही है । भाल में लगा हुए तिलक रवि के समान प्रतीत होता है ५८

लाभ रहति लखि लोचन दवौ । अरुन उदै तारौ सौ उवौ ॥
आनद लतिका कैसौ फूल । सूंघत सोस सुधा कौं मूल ॥५६॥

दोनों नेत्रों को लोभ रहित देखकर अरुनतारों की भांति उदित हुआ आनन्द लतिका के समान फूल है जो कि सूँघने पर अमृत का मूल मालूम होता है ॥५६॥

वलित ललित लावन्य कपोल । गारे गोल अमोल कपोल ॥
तिनमैं परम रुचिर रुचि रई । मृगलोचल मारीचिकामई ॥६०॥

उनके कपोल गोरे सुन्दर, ललित है । उन कपोलों में मरीचिका के समान सुन्दर नेत्र हैं ॥६०॥

श्रुति तारक सहित देखियै । एकचक्र रथ सौ लेखियै ॥
झलकति झुनझुलीन की पांति । मानौ पीत धजा फहराति ॥६१॥

कान तारक सहित ऐसे मालूम हो रहे हैं मानो एक चक्र रथ हो । झुनझुली न की पंक्ति झलक रही है मानो पीत ध्वजा फहरा रहा हो ॥६१॥

मानिकमय खुटिला छवि मढ़े । तिनपर तमकि तपनि जनु चढ़े ॥
द्विजगन अधर अरुन रुचि रये । देखि दाड़िमी लज्जित भये ॥६२॥

खुटिल मानिक से मढे हुये, मानो उन पर तमक कर सूर्य चढ़े हुये हों । द्विजगन के अरुण अधरों को देखकर दाडिम लज्जित हो गये ॥६२॥

किधौं रतन मय सन्ध्यौपासन । किधौं वाग देवी आराधन ॥
तिनके मुख सुवास कौं लियै । उपवन मलय विपिन सौ कियै ॥६३॥

अथवा रव युक्त सव्योरासन है अथवा वागदेवी की आराधना है उनके मुखों की सुवास को लेकर मलय से उपवन को सुवासित कर दिया है ॥६३॥

मृदु मुसुक्यानि तला मन हरै। बोलत वात फूल से भरै ॥
तिनकी वानी मुनी मनहारी। वानी वाना धरी उतारि ॥६४॥

उनकी मृदु मुस्कान मनों को हर लेती है और उनके बोलते ही मानों फूल भर रहे हों। उनकी वाणी मुनियों तक को हरने वाली है। मानो वीणा को हेय कर दिया हो ॥६४॥

लटकै अलक अलक चीकनी। सूतम स्याम चिलक सौं सनी ॥
नक मोती दीपक दुति जानि। पाटी रजनि दियै हित आनि ॥६५॥

सुन्दर चिकने काले बाल लटक रहे हैं। नाक में जो मोती पहने हुए है वह दीपक की भाँति है और वेणी रात्रि रूपी हृदय में मानों सुशोभित है ॥६५॥

जोति बढ़ावत दसा उतारि। मानौं स्यामन सींक पसारि ॥
कवि हित जतु रवि रथ तैं छोरि। स्याम पाटकी डारी डोरि ॥६६॥

मानो श्यामा सींक को फैलाकर दसा को हटा कर ज्योति को बढ़ा रहा हो। श्याम पाटकी को डोरि मानो कवि हित के निमित्त रवि के रथ से छोड़कर डाल दी गई है ॥६६॥

रूपक रूप रुचिर रस भीन। पातुर पुतरी नैन नवीन ॥
नेह नचावत हित नरनाथ। मरकट लकुटि लिये कर हाथ ॥६७॥

मीन की भांति सुन्दर नेत्र की पुतली नायिका नरनाथ के सामने प्रेम के लिये उसी प्रकार नचा रही है जिस प्रकार बन्दर का हाथ में लकुट लेकर नचाया जाता है ॥६७॥

॥दोहा॥

गगन चन्द्र तैं अति बड़ौ वियमुग चन्द्र विचारु ॥
दई ।पचारी विरचि जहँ कला चौगुनी चारु ॥६८॥

आकाश के चन्द्र से तिय के मुख का चन्द्र बहुत बड़ा है क्योंकि वहा पर विरंचि ने विचार करके चन्द्र से चौगुनी कला दे दी है ॥६८॥

॥दण्डक।

दीना ईस दण्डबल दल बल द्विजबल,
तप बल प्रबल समीति कुल बल की।
केसव परमहंस बल बहु कोस बल,
कहा कहाें बड़ाये बड़ाई दुग जलकी॥
सुखद सुवास विधि बल चन्द्रबल श्री की,
बल करत हो मित्र बल रक्षा पल पल की।
मन्त्र बल हीन जानि अबला मुखनि आनि,
नारकेहीं छुड़ाइं लीनी कमला कमल का ॥६६॥

कमल म सब प्रकार के वे ही बल हैं जो एक राजा म होते हैं, किन्तु तुम्हार बल स हीन जान इन अबलाओं के मुखो ने कमल की शोभा बलपूर्वक छीन ली है क्योंकि इन अबलाओं के पद्मधर हैं। राजा में राजदण्ड धारण करने से शक्ति होती है वैसे ही कमल को भी दण्ड कमलनाल से शक्ति मिलती है। राजा क समान कमल का भी दल का बल है जैसे राजा को वीरता का बल रहता है वैसे ही कमल को भी बीज बल है, तप बल और कुलबल भी राजा के समान ही हैं। राजा को जैसे तपस्विया का बल रहता है वैसे ही कमल को सुन्दर हंसो का बल रहता है। राजा की भांति कमल का भी कोष बल प्राप्त है और जैसे राजा का कोट और जलखाई का बल होता है वैसे ही कमल को भी अगाध जलखाई का बल रहता है। राजा को विधि (कानून) बल होता है कमल को ब्रह्मा का बल है। जैसे राजा को चन्द्र, लक्ष्मी और विष्णु का बल रहता है वैसे ही कमल का भी है क्योंकि चन्द्रमा कमल का भाई है लक्ष्मी बहिन और विष्णु बहनोई है। जिस प्रकार राजा को अपने मित्र का बल रहता है वैसे ही कमल को सूर्य का बल रहता है।

किन्तु इतने सब बल होते हुए भी नायिकाओं के मुखों ने कमल को तुम्हारे मुखों से हीन तथा अपने को तुम्हारे बल से बलिष्ट जानकर कमल की सुन्दरता को शक्तिपूर्वक छीन लिया है ॥६६॥

॥दोहा॥

रमनी मुख मण्डल निरखि राकारमन लजाइ।
जलद जलधि सिव सूल मैं रासत बदन छिपाई॥७०॥

इन स्त्रियों के मुख मण्डलों को देखकर पूर्णचन्द्र लज्जित होकर बादल में, समुद्र में, शिव के मस्तक पर और सूर्यमण्डल में जाकर मुह छिपाता फिरता है (चंद्रमा प्रत्येक अमावस्या को सूर्य मण्डल में होता है।) ॥७०॥

॥चौपाई॥

ग्रीवनि ग्रीवनि इक बहु भांति। अरुन पीत सित असित प्रभाति॥
बगसि रागमाला सी आनि। सिखन सकल राग मलानि॥७१॥

उनके गलों में लाल काले, पीले सफेद अनेक प्रकार के आभूषण शोभित हैं। ऐसा मालूम होता है कि मानों रागों के अनेक पुत्र रागिनी सीखने के लिये आ गये हैं॥७१॥

कोमल सब्द निबन्द। सुष्टा अलङ्कार मय मोहन॥
काव्य पद्धतिहिं सोभा गहै। तिन सौं बाहु कास कवि कहौ चित्त॥७२॥

जैसे किसी कवि की कविता कोमल शब्दों वाली सुन्दर छंद वाली अलकार युक्त और काव्य प्रेमियों का मन आकर्षित करने वाली होती है वैसे के अनुसार इनकी भुजायें हैं क्योंकि उनकी बाहु भूषण से शब्द होता है। अतः इनकी बाहुवश काव्य पद्धति की शोभा धारण किये हुए हैं ॥७२॥

नवरग नव आसोक के पत्र। तिन मैं रासति राज कलत्र॥
देखु दान दीनन के नाथ। हरवि कुसुम के हारिंह हाथ॥७३॥

हे देव! देखिये तो जो हाथ फूल तोड़ने में थक जाते हैं जिनकी उंगलियाँ नवीन अशोक पल्लव की भाँति कोमल हैं ऐसे ही नाजुक हाथों में ये दासिया राजरानी को रखती हैं ॥७३॥

सुन्दर अँगुरिन सुन्दर बनी। मनिमय मुंदरन सोहति घनी॥
राज लोक के मनु रुचि रये। कामिनीन जनु कर गहि लये ॥७४॥

सुन्दर उँगलियों में रत्नजटित सोने की अगूठियाँ पहने हैं। वे ऐसी दिखाई पड़ती हैं मानो इन स्त्रियों ने राजघराने के लोगों के सुन्दर मन अपने हाथों में कर लिये हैं ॥७४॥

अति सुन्दर उदार उर जात। सोभा सर मैं जनु जलजात॥
काम कुवर अभिषेक निमित्त। कलस रचे जनु जोवन चित्त ॥७५॥

उन पर सुन्दर कुच हैं मानो शोभा के सरोवर के कमल खिले हैं अथवा कामयुवराज के अभिषेक के लिये यौवन मित्र ने सोने के कलश बनाये हैं ॥७५॥

॥दोहा॥

रोम राजि शृङ्गार की ललित लता सी लोभ।
ताहि फले कुच रूप फल लै जनु जग की सोभ ॥७६॥

रोमावली मानो शृङ्गार की सुन्दर लता है उसी में ये दोनों कुच समस्त संसार की शोभा का समूह लेकर मानों दो फल फले हैं ॥७६॥

॥चौपाई॥

अति सूक्षम रोमालि सुवेस। उपमा दास दई सब संस॥
उर मैं मनौं मैन रचि रेख। ताकी दीपति,दिपति असेषु ॥७७॥

सुन्दर बारीक रोमावली है। दास ने विशेष प्रवीणता से उसकी उपमा यों दी कि मानो इन दासियों के हृदयों में काम की रेखा है ॥७७॥

बामन बाँधि एक बलि लोभ। तीनि लोक की लीनी सोभ॥
बाँधि त्रिबलि त्रिय त्रगुणित भयी। नव नव खंडन की छबि लई ॥७८॥

बामन ने एक बलि को बाध कर तीन लोकों की शोभा ली। राज को बाँध कर त्रियों व गुण त्रिगुणित हो गये और उनमें नवो खण्डों की शोभा विराजमान हो गई ।।७८।।

कटि कौं तत्व न जान्यौ जाई। ज्यों जग सतन असत कइ जाई।।
इहि तैं और तिन्ध गुरु भयो। करिके विभव लूटि सब लये।।७६।।

हे प्रभु! इस जगत में पुण्य और पाप सुनते तो हैं लेकिन ठीक समझ नहीं आता कि क्या पुन्य है और क्या पाप है वैसे ही इनकी कमर है इसके बारे में समझ में नहीं आता कि वह है या नहीं और इससे भी बढ़कर उनके नितम्ब हैं जिन्होंने संसार की शोभा को लूट लिया है।।७६।।

सिसुता अति वारुनि नियम सुजान। उर मैंलोम लोम मतिमान।।
अति जंघा सुन्दर युग जानि। उज्जल प्रबल अलोग बखानि।।८०।।

सिसुता पूर्ण सुन्दर वारुनि हृदय में लोम उत्पन्न करती है। दोनों ही जघायें बहुत ही सुन्दर हैं जो कि उज्ज्वल और प्रबल हैं।।८०।

छवा छविने छवि के हियें। नैननि पैनें जाहि न छियें।।
चरण महावर चर्चित चारु। तिनकौं बरनत दान उदार।।८१।।

ऐसी इतनी स्वच्छ और सुन्दर है कि उन्हें नेत्रों से भी छुआ नहीं जा सकता है। उनके चरणों में जो महावर लगा है दान उसका वर्णन करता है।।८१।।

कटि जानु जनु उपवन थरी। मानिक तरुता तरवनि धरी।।
नव दुति वरनत कवि कुल थकै। पियमन की मानी बैठकै।।८२।।

कटि ऐसी मालूम होती है कि मानो उपवन की थरी हो। मणियुक्त जूती उसने अपने पैरों में पहन रखी है। कवि कुल उसको नव दुति का वर्णन करते-करते थक जाता है मानौ वह प्रियतम के मन बैठ गई है।।८२।।

नूपुर मनिमय पाइनि बनै। मानौ रुचिर विजय बाजनै।।
पग जुग जेहरी रूप निधान। रतिमह कैसे सुभ सोपान।।८३।।

पैरों में मणियुक्त नूपुर है, मानो वे सुन्दर विजय के बाजने हैं। दोनों ही पैर रूप के निधान हैं, वे रतिगृह तक पहुँचने के लिये सोपान हैं। कमर में सुन्दर करधनी ऐसी सुशोभित है मानो अनेक चन्द्र हों। शरीर पर अनेक रंग की अंगिया को धारण किये हुए हैं। चलने पर चित्त को हर लेती हैं ॥८३॥

छुद्रघंटिका कटि सुभ वेष। ससि अनन्त कैसे परवेष॥
वरन वरन अँगिया उर धरै। चौकी चलत चित्त मनु हरै॥८४॥

कमर में घंटिका ऐसी सुशोभित होती है मानों अनेक चन्द्र हों। अनेक रंगों की अंगिया पहने हुए हैं उनकी चौकी चलने पर मन को हरती है ॥८४॥

मनिमय अमित हरि उर बसै। किरन चलत युगमुज रवि लसै॥
अंचल अति चचल रुचि रचै। लोचन चल जिनके सँग नचै॥८५॥

मणियुक्त माला गले में ऐसा सुशोभित हो रहा है जैसे सूर्य की किरणों से युगमुज सुशोभित होता है। चंचल नेत्र उन्हीं के साथ नाचा करते हैं॥८५॥

॥मूर्तिवर्तन॥

मोहनि मंत्र निसी लेखियै। मकरध्वज ध्वज सी देखियै॥
बसीकरण औषधि सी मनी। मन्त्र सिद्धि सी मन कर्षनि॥८६॥

मोहनिशक्ति को निशि में देखिये मकरध्वज ध्वज के समान दिखाई देता है, वह वश में करने की मानो औषधि हो और मंत्र के समान मन का कर्षन करने वाली है ॥८६॥

ससि की कला एक लै ईस। रुचि कै राखि अपनै सीस॥
इन अनिमनि जनु कियौ अपार। मृदु मुख हास चन्द्र अवतार॥८७॥

शशि की एक कला को लेकर ईश ने अपने शिर पर रख लिया है। मानो इन्होंने बहुत अधिक अनिखनि किया हो और उनके मृदुल मुख का हास चन्द्र का अवतार हो ॥८७॥

एकै मदन हतो जग माह। ताकौ तनु जारयौ जग नाह ॥
यातै निज प्रभु के उर मार। उपजावति प्रति दिवस अपार ॥८७॥

संसार में एक ही मदन था उसके शरीर को शङ्कर भगवान ने बला दिया। *इसलिए अब वह काम स्वामी के हृदय में अत्यधिक काम उत्पन्न कर रहा है* ॥८७॥

कराटक श्रटक फरी फरी जात। उडि-२ जात बसन बस जात ॥
तऊ न तिनके तन लखि परै। मनि गन अग अग कन घरै ॥८८॥

कण्टकों के कारण उनके वस्त्र फट जाते हैं और वायु के झकोरा से वस्त्र फट भी जाते हैं। इतना होने पर भी उनके शरीर दिखाई नहीं देते क्योंकि अग अग पर मणियाँ जटित हैं ॥८८॥

॥दोहा॥

उपमागन उपजाए कै बगराये संसार ॥
इनकौ उपमा परसपर रचि राखि करतार ॥८९॥

ब्रह्मा ने अन्य स्त्रियों के लिये तो उपमानों के ढेर के ढेर पैदा करके सारे संसार में फैला रखे हैं पर इन दासियों के उपमान नहीं मिलते हैं इनको ब्रह्मा ने परस्परोपमा ही रचा है अर्थात एक दासी दूसरी की उपमान है और दूसरी पहली की।

॥ चौपाई ॥

नृपति अनेक दान बहु दियो। सबही के मन भायौ कियौ।
देखत सबके लोचन चले। अवन पाई जन सरसिज हले ॥ १ ॥

राजा ने दान देकर सभी की इच्छाओं को पूर्ण किया। जिस प्रकार से रात्रि को पाकर सरसिज खिल उठता है, उसी प्रकार से सभी के नेत्र हर्षित हो गये ॥१॥

सीसलाज अलजित तन भई। उपमा नैसी जाई न दई।
तब तरुनी कह्यौ सुरस पाडे। उपवन हम देखन सब जाई ॥ २ ॥

शीश लज्जा अलज्जित हो गई जिसकी कि उपमा नहीं दी जा सकती है। उन सभी तरुणियों ने उपवन देखने की बात कही ॥२॥

सोभै तब देखत आराम । मानौ वर बसन्त कौ ग्राम ।
बोलत मोर बारही बार । गुदरत हैं मानौ प्रतिहार ॥ ३ ॥

उपवन की शोभा क' देखने से ऐसा लगा कि मानों वह श्रेष्ठ वसन्त का ग्राम है। मोर बार बार बोलते हैं मानो वह प्रतिहार में निवेदन कर रहे हैं ॥३॥

बोलत कल कोकिला सुदेस । उपमा दीनी ताहि नरेस ।
जनु बसन्त की मर्जान सुवेस । मनौं हरषि मन मदन प्रवेस ॥ ४ ॥

कोकिल बोल रहा है उसका राजा ने उपमा दी है कि मानो वह वसन्त की मजनी है, जिसमें हर्षित होकर मदन ने प्रवेश किया है ॥४॥

देख सकल तरनि तब जाई । सम साखा मूलनि सुखदाई ।
आलवाल अवली जलभरी । मनौं मनोहर हट जरभरी ॥ ५ ॥

तरुणियों ने सभी वृक्षों को जाकर देखा, उनकी शाखायें तथा जड़ें सुखदाई थीं। क्यारियों की पक्तियां जल से भरी हुई हैं ॥५॥

फूले फूल द्रुमन तें झरै । आनद आंसू भरि ज्यु ढरै ।
मधुवन देखि देखि जनि श्रक । रितु जुवतनि के जनु ताटङ्क ॥ ६ ॥

फूले हुये द्रुमों से पुष्प इस प्रकार झड़ रहे हैं मानो आनन्द के आंसू गिर रहे हों। मधुवन का जनि अंक देखने से ऐसा लगता है, मानो ऋतु की युवतियों के कर्णफूल सुशोभित हो ॥६॥

फूले जनु खूभिन के फूल । प्रति फूलनि पर अलि अनुकूल ।
जनु उरगन कौं उडपति जानि । दीनौ बांधि कलङ्क समान ॥ ७ ॥

मानो खूभनि के फूल फूले हुये हैं और प्रत्येक पुष्प पर भ्रमर चक्कर लगा रहे हैं मानो उरगन को चन्द्र समझकर व सभी का समान रूप में कलङ्क बाँट दिया है ॥७॥

दाड़िम कलिका सोहनि खरी । कनककुपी जनु चन्दन भरी ।
उज्जल फूल बेल के लसैं । रहि सुतारा जनु भुव बसैं ॥ ८ ॥

अनार की कलियां सुशोभित हैं। वे ऐसी मालूम होती हैं मानो सोने की कुप्पी चन्दन से भरी हुई हो। बेल के सुन्दर स्वच्छ फूल सुशोभित हो रहे हैं ॥८॥

सुमन कनेरे सुकली समान। सोभन भनौ मदन के बान।
फूली फैलि केतुकी कली। सोहति तिनपर अलि आवली॥ ९॥

कनेर की कलियां इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानो वे कामदेव के बाण हों। केतकी की कलियां खिल हुई हैं, उन पर भौरों के झुण्ड सुशोभित हैं॥९॥

तिनहीं न महादेव रुचि करैं। यह अपजस जिनि मथै धरै।
बिन पातन फूले पलास। सोभत स्यामल अरुन प्रकास॥ १०॥

इसीलिये महादेव उन फूलों की इच्छा नहीं करते हैं। इस अपयश को अपने शिर पर मत रखो। बिना पत्तों के ही श्याम और लाल रङ्ग के पलाश फूले हुये हैं॥१०॥

वर वसन्त की वैहरि लगै। मनहु काम कोयला जगमगै।
फूली चंपक कलिका लसै। तिनके केस माझ अलि रमै॥ ११॥

सुन्दर वसन्त सा लग रहा है जिसमें मानो काम जगमगा रहा हो। अनेक चम्पा की कलियां फूली हुई हैं। उनकी कलियों पर भँवर सुशोभित हो रहे हैं॥११॥

उपमा देती देखि सुन्दरी। कनक कुप्पी जनु सौंधे भरी।
कुसुम अगस्त सावरा कन्द। राहु मनौ उगिलत है चन्द॥ १२॥

उसे देखकर सुन्दरियां उपमा देती हैं कि मानो सोने की कुप्पी सुगंध से भरी हुई हो। अगस्त सावरे वर्ण का है जिसे देखने में ऐसा लगता है कि राहु चन्द्रमा को उगल रहा है॥१२॥

अलि उडि घटत मञ्जरीलाल। देखि लाज साजति सब बाल।
तरु तजि मधुप लतनि परजात। मनहु कहत मिलब की बात॥१३।

भ्रमर उड़कर मञ्जरी का आलिंगन करते हैं, जिसे देखकर स्त्रियां लज्जित हो जाती हैं। उससे उड़कर वे लताओं का आलिंगन करते हैं। इस प्रकार वे मानो मिलने की बात कह रहे हो॥१३॥

अलि अलिनी कों देखत पाई। भेटत चपल चमेली जाई।
अद्भुत गति सुन्दरी विलोकी। हसती सौं घूँघट पट रोकि॥ १४॥

कुछ भ्रमर मौरनी के सामने ही दौड़कर चमेली का आलिङ्गन करती हैं सुन्दरियां इस अद्‌भुत अवस्था देखकर घूंघट निकालकर हँसती हैं ॥१४॥

गिरत सदा फल श्रीफल वोज। जनु धस देत देखि वोज।
सुदतिनि के जनु दसन निहारी। उदरे उरनि दाड़िमी-फारि॥ १५॥

शरीफे तथा वेल के फल टपकते हैं मानो वे उन स्त्रियों के वक्षोज को देख कर गिर रहे हैं। स्त्रियों के दाँतों को देखकर बड़े बड़े अनारों के हृदय विदीर्ण होकर फट गये हैं ॥१५॥

निरखे नालकेलि फर फरे। कुच सोभा अभिलाखनि भरे।
अति तप करन अधोमुख ऐन। मनौं मीन ह्वै मूँदे नैन॥ १६॥

नारियल के फल फले हुए हैं मानो वे कुच की शोभा की अभिलाषाओं से भरे हुए हैं। अत्यधिक तपस्या करने के लिये अपने मुख को नीचा करके मछली की तरह से नेत्र मूद लिये हों ॥१६॥

सोहत वजुल कुञ्जल कुञ्ज। जनु लिपटे गुञ्जनि के पुञ्ज।
काम अन्ध मगधन कै नैन। एक ठोर जनु राखे मैन॥ १७॥

अति सुन्दर अशोक की कुञ्जें हैं जिन पर भौंरों के झुण्ड सुशोभित हैं। ये अशोक वृक्ष पर बैठे हुए भ्रमर ऐसे मालूम होते हैं मानों पुष्पित वृक्षों को देखकर जो मनुष्य अन्धे हो गये हैं (मदमस्त) उन्हीं के एकत्र हुए लोचन हों ॥१७॥

सीतल तत्र जहां द्वै वोक। मानौं सोम सूर के लोक।
जहाँ तहाँ जल जन्त प्रकास। धरतें धारा चली अकास॥ १८॥

कहीं पर ठंडे और कहीं पर गर्म स्थान बने हुये हैं उन्हें देखने से ऐसा लगता है मानो सूर्य और चन्द्र के लोक हों। यत्र तत्र जल के फव्वारे हैं जिनकी धारा पृथ्वी की ओर से आकाश की ओर चली जा रही है ॥१८॥

जनु जमुना कौं सूक्षम वेस। चाहत रविपुर कियौ प्रवेस।
थल जल कमल प्रफुल्लित प्रभा। मनौं पुरन्दर कैसी सभा॥ १६॥

मानों यमुना सूक्ष्म रूप धारण करके रवि लोक में विहार करना चाहती हैं। मिले हुए कमलों की प्रभा इस प्रकार है मानो वह पुरन्दर की सभा हो ॥२६॥

देख्यौ सब आनन्दे बाग। मनौ सुभमण्डल कौ भाग।
नरुवर लता तहाँ बहु भाँति। कहाँ कहाँ लगी तिनकी जाति॥२०॥

सभी लोगों ने आनन्दित होकर बाग को देखा। वहां पर अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लतायें हैं, उनकी जातियों का वर्णन कहा तक किया जाय ॥२०॥

तिनकी विविध विसद वाटिका। बरनत सुभ नाटक नाटिका।
रसना हीन बढ़ै रस तंत्र। मोहन वसी करन के मंत्र ॥ २१ ॥

अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताओं से सुशोभित विशद वाटिका है, जिसके सम्बन्ध में सुनकर नाटक तथा नाटिका वर्णन करते हैं। मोहन के वशीकरण मंत्र के कारण जो रसना हीन हैं उनमें भी रस का संचार होता है ॥२१॥

मन स्वच्छ पर थिर लोगियैं। जदपि थिरा चचल देखियैं।
चञ्चल तरु तपोधन मानि। तप सिला पै ग्रहस्थनि जानि॥२२॥

स्वच्छ पर सभी वस्तुएं स्थिर दिखाई देती हैं, यद्यपि थिरा चञ्चल दिखाई देती है। यदि और कुछ चञ्चल है तो वह केवल तपोधन है जो कि तप शिला पर स्थिति है ॥२२॥

गृहतिथि दिगम्बरा सोहियैं। देखत मुनि मनसा लोभियैं।
दिगम्बर पैसे कुसुम सुमित्र। पुहुपावति पर परम पवित्र ॥ २३ ॥

गृह तिथि दिगम्बर रूप में शोभित है, जिसे देखते ही मुनि के मन लुभा जाते हैं ॥२३॥

है पवित्र पै गर्भ सयोग। होत गर्भ सुरतनि के योग।
सुरति योग पै भाव विहीन। भावहीन जग जन के लीन ॥ २४ ॥

पवित्र है किन्तु गर्भवती है। गर्भ सुरतनि के योग से होता है। सुरति योग भाव हीन है। भाव हीन जग लोगों में लीन है ॥२४॥

जगत लीन जन गत जानियैं। पति के प्रानिनि सन मानियैं।
ज्यौं ज्यौं पति सौं वढ़े सुहाग। त्यौं त्यौं सौतिन सौं अनुराग ॥२५॥

संसार लोगों में उसी प्रकार लीन है जिस प्रकार पत्नी अपने पति को प्राणों के समान मानती है। पत्नी का पति के प्रति ज्यों अनुराग बढ़ता है त्यों त्यों पति का सौतिनों के साथ अनुराग होता जाता है ॥२५॥

इहि विधि तिनकी अद्भुत भांति। रसना एक सुक्यों कहि जाति
ब्रह्म घोष घोषनि अति घनि। मनौ गिरा के रूप की बही ॥ २६ ॥

इस प्रकार से उनके अनेक प्रकार हैं, यह अकेली रसना कैसे वर्णन कर सकती है। वहां वेद पाठ का शब्द सुन पड़ता है मानो वह सरस्वती के तपस्या करने की बाटिका है ॥२६॥

करुनामय मन कामनि फरी। कमला कसै वरस्थरी।
नाचत नील कण्ठ रस घूमि। मानौं उमा की क्रीड़ा भूमि ॥ २७॥

वाटिका करुणायुक्त है मन की कामनाओं का मन पूर्ण करने वाली जैसे कमला के वास स्थान पर सभी की कामनायें पूर्ण होती हैं। नीलकण्ठ उस में क्रीड़ा कर रहे है मानो वह उमा की क्रीड़ा भूमि हो ॥२७॥

सोभै रम्भा सोभा सनी। किधौं सची की आनन्द कनी।
मनौ मलय की चन्दन वनी। लोपामुद्रा को तप लनी॥ २८॥

अथवा वहां सुन्दर रम्भा (कदली वृक्ष) की शोभा है अथवा इन्द्राणी के आनन्द की केलि बाटिका है अथवा मलयागिरि के चन्दन का वन हो अथवा लोपमुद्रा क तप का वन हो ॥२८॥

मद वसन्त छ रितु की पुरी। मनौं वसति वसुधा मैंडारी।
विच विच ललित लता आगार। केरिनि की परदा प्रविचार ॥२२॥

अथवा मद बसन्त है जो षट ऋतुओं में प्रमुख है। मानों वह हरकर अब पृथ्वी पर निवास करता है। बीच बीच में सुन्दर लतायें हैं और उनके बीच में क्यारियां है ॥२६॥

खारि कदारयौ दाख खजूरि। नारि बेल पूंगी फल भूरि।
एला लपटी ललित लवंग। नाग वेलि दल दलित विरंग॥ ३० ॥

खारि, कदार, दाख, खजूर, नारियल सुपाड़ी के फल हैं एला, ललित लवंग तथा नागबेलि की लतायें हैं ॥३०॥

मृगमद कुंकम चन्दन बास। बन लक्ष्मी कैसो आवास।
चन्दन तरु उज्जल तन धरै। लपटी नाग लता मन हरै॥ ३१॥

उसमें मृगमद, कुंकुम और चदन का वास है। मानो उसमें वन लक्ष्मी का निवास है। चन्दन के वृक्ष उज्ज्वल शरीर धारण किये हुये हैं उसमें नाग की ऐसी लम्बी लतायें लिपटी हैं ॥३१॥

देखि दिगम्बर वदित भूप। मानों महादेव के रूप॥
कहू पढ़त सुनियत सुकज्ञान। मनौं परिचित के दीवान ॥३२॥

महादेव के श्याम वर्ण के रूप तथा दिगम्बर देखकर राजा उसकी वदना करता है। कहीं कहीं पर शुक इस प्रकार पढ़ रहे हैं मानो परीक्षित के दीवान हों ॥३२॥

एक कहति फूलहि को लोक। एक कहति फलहि को ओक॥
किधौं सुगन्धनिद्रा को गाम। कै सब सोभा हीं को धाम ॥३३॥

कोई कहता है कि फूलों का घर है और कोई कहता है फलों का घर है अथवा सुगध का ग्राम है अथवा शोभा का धाम है ॥३३॥

बरन्यौ जाए न ताको नेमु। मानौं अद्भुत सम कौ देसु॥
उज्जलता अब रातनि लसै। कुल पिकनि के मुह मे बसै ॥३४॥

उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता मानो वह विचित्र चद्रलोक का देश हो। सभी समय वहा पर उज्ज्वलता रहती है और कोयला के मुख की 'कुहू' सदैव लसती रहती है ॥३४॥

रजनी विदित अनँद नन्दिनी। सुख चन्दन की जहँ चादनी॥
जहाँ सकल जीवनि कहँ सुख। केवल विरही जनकी दुःख ॥३५॥

चद की चादनी केवल रात्रि में सुखदायी होती है, किन्तु सुख चदों की चादनी रात दिन आनन्द देती है। इस बाग में सब जीवों को सुख

मिलता है। यदि किसी का दुख है तो केवल विरही जना को है ॥३५॥

सीतल मँद सुगन्ध सुवास। तिनमें आवत ही है जाव ॥
आगम पवनहिं को जानियैं। हानि असोभा को मानियैं ॥३६॥

शीतल, मद, सुगध सुवास उनमें प्रवेश करते ही हो जाती है। वहाँ पर आगमन केवल पवन का होना है और हानि केवल अशोभा की ही है ॥३६॥

तृष्णा चातक ही के चित्त। संभ्रम भौरनि ही के मित्र ॥
सुक सारी को विधाया बाद। गर्ज्जन सुद यहै विसाद ॥३७॥

प्यास केवल चातक के चित्त ही में है और सभ्रम केवल भ्रमरों का ही मित्र है। सुक:सारी में केवल वाद विवाद है और गर्जन को यही ही विषाद है ॥३७॥

तरणि तापन ही के गात। दल फूल फूलनि ही अवदात ॥३८॥

तापन केवल सूर्य की गर्मी का ही है और पतन केवल फल फूलों का ही है ॥३८॥

इति श्री मतसकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा वीरसिंह चरित्रे वनवाटिका वर्नन नाम त्रयोविंसवि प्रकाशः-२३ ॥

॥ चौपाई ॥

तिनमैं क्रीड़ा पर्वत रच्यौ। मृग पच्छिन की सोभा सच्यौ।
कृत्रिम सिखर सिला सोभियैं। तरुरलता चित्त मोहियैं ॥१॥

उनमें एक क्रीड़ा करने का पर्वत है जो कि पशु पक्षियों की शोभा से पूर्ण है। उसके ऊपर शिला की कृत्रिम चोटी है, वृक्ष और लताएँ चित्त को आनन्दित करती हैं ॥१॥

सुवरनमय सुमेरु सौ बनौ। सहज सुगन्ध मलय मौमनौ।
सीतल हिमगिरि सौ परिसियै। उदयाचल सौ सुभ दरसियै ॥२॥

स्वर्ण युक्त सुमेरु पर्वत की भाँति है और उसमें स्वाभाविक रीति से

हा मलयागिरि की भाँति सुगंध है। हिमालय की भाँति शीतल है। उदयाचल की भाति सुन्दर है ॥२॥

सोभा के सागर में वसै। वर मैनाक सेल सो लसै।
अयनजूथ कहूँ; जगमगै। रिष्यमूक पर्वत सो लगै ॥३॥

जिस प्रकार से मैनाक पर्वत सुन्दर सागर में सुशोभित होता है, उसी प्रकार से सुशोभित हो रहा है। कहीं-कहीं पर अयनजूथ की भाति जगमगा रहा है और ऋष्यमूक पर्वत की भाँति दिखाई देता है ॥३॥

आनदमय हृदि कैलो ओक। हँसनियुत ब्रज कैसो लोक।
वृषभ सिंह क्रीड़हि अहि मोर।|सिविगिरि सो सोहत चहुँ ओर ॥४॥

विष्णु के घर की भाति आनन्दमय है, माना हँसयुक्त ब्रह्म लोक हो। बैल, सिंह मोर, सर्प क्रीड़ा कर रहे हैं। कैलाश पर्वत की भाति चारों ओर सुशोभित है ॥४॥

गूढ़ गुफा हू दीरघ दरी। त्रिय मनु सिद्धन की सुन्दरी।
कहूँ तापर धरधारा धाम। सुभ्रक लोक बलाका वाम ॥५॥

गहन गुफाये हैं और बड़ी दरी (पर्वत के नीचे जहा नदी गिरती है) है। उसके ऊपर कहा धारा गिर रही है। बलाका वामाओं का में सुन्दर स्थान है ॥५॥

बरसति सी दरसति जल धार। चपला सी चमकति बहु बार।
सक्र सरासन चातिक मोर। सुनिजुत बिच-२ धन की घार ॥६॥

जलधार वर्षा के समान प्रतीत होती है। अनेक बार चपला की भाति चमकती है। घन घोर बादलों के बीच में कभी-कभी इन्द्र धनुष दिखाई देता है और चातक तथा मोर की बोली सुनाई देती है ॥६॥

तीनें प्रकटी नदीक तीनि। सरितान का लानी छवि छीनि।
एक कुंकुमा के जल वहै। ताकी साभा को कवि कहै ॥७॥

उसमें तीन नदियाँ प्रकट हुई हैं जिन्होने सरिताओं के रूप को छीन लिया है। एक का कुंकुम के वर्ण का जल है उसकी शोभा का कोई भी कवि वर्णन नहीं कर सकता है ॥७॥

सुखद सुगन्ध स्वेत जल बहै। गंगा सी त्रिभुवन पवि लहै।
सुर गज मारग सोभा भर्यो। मनौ गगन तैं भुव गिरि पर्यो ॥८॥

वह सरिता सुखदायी है और सुगंधित जल से प्रवाहित हो रही है। गंगा के समान त्रिभुवन पति को प्राप्त कर रही है। मानो आकाश से गंगा भूमि पर आ गई है ॥८॥

सोभत जाकी सोभा लियें। जम्बूदीप तिलक सौ कियें।
उपवन सोभा कहँ लौगनौ। तिनकी सकुल सत्व गुन मनौं ॥६॥

उसकी शोभा को लिये हुए सुशोभित है, जिससे यह जम्बूद्वीप तिलक सा दिये सुशोभित है। उपवन की शोभा का कहा तक वर्णन किया जाय ॥६॥

तीजी मृगमय के जल बहै। ज्यौं जमुना त्यौं जग कहै।
सो सिंगार रस रैसी धार। नील नलिन कैसी महिमार ॥१०॥

तीसरी मृगमद के वर्ण के जल से प्रवाहित हो रही है। जिस प्रकार से लोग यमुना की प्रशंसा करते हैं। उसकी धारा श्रृङ्गार रस सी है। नीले कमल की भांति उसकी महिमा है ॥१०॥

सोभति सुख कैसी तरवारि। अशुभ खलनि की खण्डन डारि॥११

शोभा की तलवार की भाँति सुशोभित होती है और दुष्टों के अशुभ गुणों का खण्डन करने वाली है ॥११॥

गिरि दिग्गज क्रीड़ा सी लगे। ताकी साँकर सी जगमगै।
तजि क्रीड़ा गिरि दिग्गज दरी। तम कैसी अवली नि. सरी ॥१२॥

गिरि रूपी हाथी को बाँधने की जंजीर हैं। अथवा पर्वत रूपी दिग्गज को छोड़ कर अंधकार की अवली चली हो ॥१२॥

मागध सूत पढ़ति इह भाट। मनौ प्रताप अनल की बाट।
जितनी उपवन तम्गन बसै। तिनकी मनौ तमोगुन नसै ॥१३॥

मागध, सूत, भाट, बन्दी सभी बन्दना कर रहे हैं मानों वह प्रतापानल की बाट हो। जितने भी वृक्ष उपवन में निवास करते हैं मानो उनके तमोगुण का विनाश करती है ॥१३॥

और नदी कुकुम जल दुती। मानौ मन मोहै मरतुती।
वरनहि दुति कवि कोविद जर्मा। वीरसिंघ के उपवन वर्मा ॥१४॥
केशर वर्ण की सरिता सरस्वती के मन को भी आकर्षित कर रही है। वीरसिंह के उपवन में बसी हुई सरिता का कवि वर्णन कर रहे हैं ॥१४॥

जम्बूदीप इन्द्रा बसै। तासों चरनोदक सौं लसै।
जल देविनि कैसो श्रम वारि। किधौं देह दुति सी सुखकारि ॥१५॥
जम्बूद्वीप में इन्द्रावास करती है उसके चरणोदक की भाँति सुशोभित होता है अथवा जलदेवियों के श्रमकण हों अथवा देह की कान्ति हो ॥१५॥

ब्रह्मसूत सौं हित लेखियै। भरत खण्ड सौ द्विज देखियै।
कसी कसौटी मैं अती नीक। केसर कञ्चन कैसी लीक ॥१६॥
ब्रह्म सूत की भाँति हित देखिए और भरत खण्ड के समान द्विज को देखिये। मानो कसौटी पर कसी हुई कंचन की रेखा हो ॥१६॥

राजत जितनै राज समाज। तिनकी मनौ रजोगुन राज।
कुसुम पराग के रस सनै। पावन पुलिन दुहूँ दिसि वनै ॥१७॥
जितने भी राज्य हैं उन सभी का मानो रजोगुण हो। कुसुमों के पराग में सिक्त दोनों ओर पवित्र किनारे हैं ॥१७॥

येलाक्न वालुका सावस। सेविति ललित लवँग प्रकास।
कदलि कुसुम केतकि कल कञ्ज। तिनके बीरन दल मल रञ्ज ॥१८॥
येलाकन, वालुका, लवंग, कदली, कुसम के अनेक दल हैं, जो मन का रंजन करते हैं ॥१८॥

तिनकी सोभा सोभति खरी। सहज सुगन्ध के धन भरी।
वार पार श्रम मध्य प्रवाह। खेवत मधुकर मत्त मलाह ॥१९॥
उनकी शोभा से शोभित सुगंध से भरी हुई है। किनारे और बीच में मस्त भ्रमर मल्लाह मानो नौका चला रहे हों ॥१९॥

तीन जोति जब एकति होय। वैही काल त्रिवेणी होय ॥२०॥

तीनो सरिताओं की जब ज्योति मिल जाती है तभी त्रिवेणी बन जाती है ॥२०॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर श्री वीरसिंह देव-चरित्रे क्रीड़ा गिरि वर्नन चतुर्विशति प्रकाश॥२४॥

॥ चौपाई ॥

भ्रम आश्रम राम के संग । श्रीमति भई रामा अँग अँग ।
कुसुम वार कवरी छुटी गई । लोचन वचन सिथिल गति भई ॥१॥

भ्रमर रूपी राम के साथ विश्राम करने के कारण लक्ष्मी का अंग प्रत्यंग भ्रमित हो गया । कुसुमवार कवरी के छूटने से उसके नेत्र एवं वचन शिथिल हो गये ॥१॥

छूटी मुक्तालर मिमोल । लपटी लट लटिके अति लोल ।
मुखविछु सँग तजिबे रस दुहूँ । जनु भेटि पुरनिमा कुहू ॥२॥

मुक्तालर टूट गई । टूटी लट लटकती हुई बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है । चद्रमा रूपी मुख का रस छूटने के भय से मानो वह उसमें लटकी हुई है जैसे पुरनिमा कुहू को भेंट लेती है ॥२॥

आनन पर श्रमसीकर घने । वसन सरीर सुगन्धित सने ।
पाइनि तैं चौंचा गिरि गये । भूषण तैं फिरि दूषण भये ॥३॥

मुख पर श्रम सीकर हैं और सदा शरीर सुगंधित है । पैरों से चौंचा आभूषण गिर गया । जो कभी आभूषण थे वही अब दूषण हो गये ॥३॥

बैठ रहे इक तरु के मूल । नै लगि बावति एकनि फूल ।
पिये पर एक चढ़ावति भौंह । उठि चलिबे की द्यावति सौंह ॥४॥

कोई किसी वृक्ष की जड़ के पास खड़ी हो गई और कोई फूलों प्रियतम को लेकर इधर-उधर बिखेरती है और कोई उठकर चलने का संकेत करती है ॥४॥

जानि भया श्रम सबनि अपार । चल्यो जलासय राजकुमार ।
जहाँ जहाँ,द्रुम बिगरे फूल । रवि रुचि होति तहा अनुकूल ॥५॥

राजकुमार सभी को थका हुआ जान कर जलाशय की ओर चल पड़ा। वहाँ जहाँ पर द्रुमों के फूल फैले हुए हैं वहाँ वहाँ पर सूर्य के प्रकाश का अनुभव होता है ॥५॥

ताहि निवारति बारहि बार। सोभि सब सुन्दर सुकुमार।
एक वे देत लोचन कर बोल। चम्पक दल दल जनु अति लोल॥६॥

उसको (फूलों) बार-बार दूर करती हुई सभी कुमारियां सुशोभित होती हैं। एक अपने नेत्रों के इशारे से ही बोलती है उसे देखने से ऐसा लगता है मानो चम्पक दल अत्यधिक चचल हैं॥६॥

एक चलि अति श्रम कै हिये। सखी चौर की छाया किये।
जनु उर करि करुना के धाम। बसे हँस सारस के काम॥७॥

एक चलने से अत्यधिक थक गई है उस पर एक सखी छाया किए हुए है मानों हृदय में करुणा धारण कर के हस सारस के काम के लिए आकर बस गये हों॥७॥

चली जाति इक रस आपनैं। सखिन महित पट उपर तनैं।
बदन विराजत आनद कन्द। ज्यौं छवि मण्डल मैं वर चन्द॥८॥

कोई सखियों के साथ वस्त्र का ऊपर उठाये हुए अपने रग में मस्त चली आ रही है। उसके मुख पर आनद की आभा है जैसे आकाश में चदमा सुशोभित होता है।८।

बेठी युवति जु सबही माहिं। चलि सुसेत छत्र की छाहिं।
मनौ सोम सीतल के लियौ। सोम लग पर छाया कियौ॥९॥

सभी युवतियों में जो युवती जेठी है, वह छतुरी की छाया में चलती है। मानो चन्द्रमा शीतलता को लिए हुए उस पर छाया किए हुए है॥९॥

घाम न ताहि लगे तन माँह। जापर पिये पलकन की छाह।
कैहूँ कैहूँ इहि रुचि रई। जुवति जलासयन मैं गई॥१०॥

उस पर धूप न लगे। इसलिए प्रियतम उस पर अपनी पलकों की

छाया किए हुए है। सभी युवतियां इस प्रकार से जलाशय को गई ॥१०॥

भये विगत श्रम सकल सरीर। लागे सीत सुगन्ध सरीर।
आये अमल वास सुख दैन। मुख वासनि आगे है लैन ॥११॥

सभी का श्रम दूर हो गया और शरीर अत्यधिक शीतल तथा सुगंधित हो गया। सुगंधित सुखदायी वास देने के लिए मुख के आगे होकर लेने आये ॥११॥

देख्यौ जाई जलासय चारु। सीतल सुखद सुगन्ध अपार।
अमल कपोल अमोल सुगारि। चातक चारु चहूधा पारि ॥१२॥

सुन्दर जलाशय को जाकर देखा जो कि शीतल, सुखद एवं सुगंधित है। उनके कपोल अत्यधिक सुन्दर हैं ॥१२॥

प्रति मूरति :युवति सुख देत। जल देवी जनु दरसन देति।
राजश्री की दर्पन मनी। किधौं गगन अब तारयौ गनी ॥१३॥

प्रत्येक युवती का स्वरूप सुखद है। मानो जलदेवी दर्शन दे रही हो। अथवा राजश्री का दर्पण हो अथवा आकाश मण्डल से तारे उतर आये हों ॥१३॥

हिमगिरि बरदव सौं परसियौ। चन्द्रा तप तन सी दरसियौ।
किधौं सरद रितु कौ आवस। मुनिजन मन कौ मनी बिलास ॥१४॥

अथवा हिमालय को सूर्य की किरणों ने स्पर्श किया हो। उनका शरीर चद्रमा की भाँति दिखाई दिया अथवा शरद ऋतु का आगमन हो अथवा मुनियों का विशाल अन्तःकरण हो ॥१४॥

विरहीजन ऐसे देखियैं। बिसर्जलतानिवलित लेखियैं।
सूछम दीरघ :नीर तरग। प्रतिबिम्बित दल दुति बहु रग ॥१५॥

विरह दग्ध लोग ऐसे दिखाई देते हैं मानो लतायें हों अर्थात् लताओं की भाँति दुर्बल हो गये हैं। जल अत्यधिक स्वच्छ है और उसमें पुष्पों के अनेक रग दिखाई देते हैं ॥१५॥

सूर कीरण करि जल परसियै। मानौ इन्द्रचाप दरसियैं।
प्रतिबिम्बित जहँ थिरचर जन्तु। मानौ हरि को उदर सनन्त ॥१६॥

सूर्य की किरणें जब जल में पड़ती हैं तब ऐसा लगता है कि इन्द्र धनुष खिला हो। उसमें घूमने वाले जन्तु प्रतिबिम्बित होने हुए ऐसे मालूम होते हैं मानो भगवान का अनन्त उदर हो ॥१६॥

परमहंस सेवत देखियैं। मानसरोवर सो लेखियैं।
विषमय पय सब सुख कौ धाम। सँवररूप बढ़ायौ काम ॥१७॥

इस मानसरोवर की सेवा करते हुए दिखाई देते हैं। जल युक्त दूध सब सुखों का घर है ॥१७॥

बन्धुनजुत अति सोभावन्त। मानौ वलि राजत जसवन्त।
कमलनि मध्य मधुप सुख देत। सन्त हृदय मनु हरिहि समेत ॥१८॥

अपने बंधुओं सहित इस प्रकार सुशोभित है मानो जसवन्त बलिराज हो। कमला के बीच सुखद भ्रमर हैं जो कि सन्त हृदय को अपनी ओर खींचते हैं ॥१८॥

बीच बीच फूले जलजात। तिनमें अलिकुल उड़ि-२ जात।
सन्त हियनि तैं मानौं भाजि। चञ्चल चली अशुभ की राजि ॥१६॥

बीच में कमल खिले हुए हैं जिन पर उड़ उड़ कर भ्रमर जाते हैं। मानो अशुभ सन्त हृदयों को छोड़ कर भागे जा रहे हैं ॥१६॥

॥ दोहा ॥

क्रीड़ा सरवर मैं नृपति कै जल विधि बहु केलि।
निकसे तरुनि समेत ज्यों सूरज किरण सकेलि ॥२ ॥

अनेक प्रकार से सरोवर में क्रीड़ा करके तरुणियों सहित राजा बाहर इस प्रकार आए जिस प्रकार सूर्य निकलता है ॥२०॥

॥ चौपाई ॥

तब तिहि समय विराजी बाल। विनहू भूषण भूषित ताल।
मिटे कपोलनि चन्दन चित्र। लागे कैसरि तहा विचित्र ॥२१॥

उस समय सभी बालायें आभूषणों के बिना भी सुशोभित हो रही थीं। कपोलों पर जो चंदन के चिन्ह थे वे मिट गये और उनके स्थान पर विचित्र केशरि दिखाई देने लगी ॥२१॥

जल कज्जल विन कीनै नैन। निज छवि रोधक जानै ऐन।
मोतिन की सव छूटी छूटैं। आनि उरोजनि लपटि लटैं ॥२२॥

आँखों में लगे हुए काजल को पानी ने इसलिए मिटा दिया कि व नेत्रों की शोभा के रोधक थे। मोतियों की सभी लटैं छूटकर उरोजों से आकर लिपट गयीं ॥२२॥

मनौं सिंगार दास वल्लरी। कल्पलतनि भेटति सुन्दरी।
सोहत जलकन केसनि अग्र। जनु तन उगलित नखत समग्र ॥२३॥

मानो वल्लरियाँ हास और शृंगार के लिए कल्पताओं का आलिंगन कर रही हों। केशों के ऊपर जलकण इस प्रकार शोभा दे रहे हैं मानों आकाश नक्षत्रों को उगल रहा हो ॥२३॥

भीजे वस्त्रनि सौं तिहि काल। तिनमैं छूटत जलकन जाल।
पल पल मिलि कीनै बहु भोग। मनन करत जनु वियोग ॥२४॥

भीगे हुए वस्त्रों से जलकण छूट रहे हैं। ऐसा लग रहा है कि अनेक प्रकार से भोग करके अब वे वियोग को जानकर रुदन कर रहे हैं ॥२४॥

नव नव अम्बर पहिरैं जाति। दीपति झलमलाति फहराति।
जल मैं रहे ते भूषन जाल। लियैति वागवान की वात ॥२५॥

अनेक प्रकार के नवीन वस्त्र धारण किए हैं जो दीप्त होकर झलमलाते हुए फहरा रहे हैं। जो आभूषण जल में रह गये उन्हें बागवान ने ले लिया ॥२५॥

भूषण वसन लियैं सव साजि। उठी दुदुभी तवही बाजि।
इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर राजाधिराज राजा वीरसिंह चरित्रे जलकेलि वर्नन नाम पंचविंशति ॥२६॥

जब आभूषण और वस्त्रों को सजा लिया तब दुंदुभी बज उठी ॥२६॥

॥चोपाई॥

तहँ अशोक फलि फूल्यौ फल्यौ। भूतल सरल दुलीचनि भल्यौ।
मानिक कनकनि के फल फरे। बहु रंग विविध सुगन्धिन भरे॥१॥

वहाँ पर अशोक फूला फला है। सारा भूतल दुलीचों से सुशोभित है। फल माणिक और स्वर्ण के सदृश हैं। फल अनेक रंगों के हैं और सुगन्धित हैं॥१॥

तरुवर जूत ज्वान अरु नये। मरगमल जरबाफनि मढि लये॥२॥

वृक्ष नये और युवा हैं जिन्हें जरबाफनि ने मढ लिया है॥२॥

सोभन कनक सिंघासन धन्यौ। जल जनि सहित जटाघनि जन्यौ॥
तापर बैठे भूप भुआल। मित्र कलपतरु सत्रु नमान॥३॥

सुन्दर सोने का सिंहासन बना हुआ है मानो जटाघनि ने उसे कमलों सहित जन्म दिया हो। ऐसे सिंहासन पर आकर राजा बैठे, जो कि मित्रों के लिए कल्पतरु है और शत्रु का विनाश करने वाला है॥३॥

कनक कलस गंगाजल भरे। विविध फूल फलतिन महधरे॥४॥

सोने के घड़े गंगा जल से भरे हुए हैं। उनमें अनेक प्रकार के फल फूल रखे हुए हैं॥४॥

सजि सिंगार आई सुन्दरी। नवल रूप नव जीवन भरी।
गोर प्रभानि प्रभासित अंग। चन्दन चर्चित चारु तरंग॥५॥

नव यौवन से परिपूर्ण सुन्दरियाँ नवल रूप में शृंगार करके आई। गौर वर्ण अंग प्रत्यंग से दीप्त हो रहा है और सम्पूर्ण शरीर चन्दन से चर्चित है॥५॥

राहु ग्रसन भय उर मैं माडि। आये चन्द्र मण्डली छाडि।
नृपति सरन सोभन्त अनन्त। मानौ चन्द्रिका मूरतिवन्त॥६॥

ऐसा मालूम होता है कि राहु के ग्रसने के भय से चन्द्र तारा की मण्डली छोड़ कर चला आया है। मानो साक्षात मूर्तिवन्त राजा की शरण में अनेक (सुन्दरियां) सुशोभित है॥६॥

अम्व अपद्य प्रभा मद्गिनी। देह धरे मानों पद्मिनी॥
मुक्तहार विहरत उर। फूलनि के भाजन करि लये॥७॥

अम्व अपद्य की प्रभा का धारण किये हुए मानों पद्मनी हो। उसके हृदय पर मुक्ताहार विहार करता है। फूलों का भाजन कर लिया है॥७॥

लक्ष्मी छीर-समुद्र की मनों। छीट छीट छाजत तनु घनों।
अवनत लोचन लोचन हरै। मनों ललित अरुन रन धरै॥८॥

अथवा क्षार समुद्र की लक्ष्मी हो जिसके अंग प्रत्यग से क्षीर वर्ण सुशोभित हो रहा है। झुके हुए नत्र दूसरों का आकर्षित करते हैं। मानो शरीर पर वह सुन्दर वस्त्र का धारण किए हुए हो॥८॥

अम्बर अरुन जोति जगमगै। पावक युत स्वाहा सो लगै।
सहज सुगन्ध सहित तनु लता। मलयाचल कैसी देवता॥६॥

आकाश के समान उसके वस्त्र की ज्योति जगमगाती है। वह पावक युक्त स्वाहा के समान लगती है। उसका शरीर स्वाभाविक रूप से ही सुगंधित है। वह मलयाचल के देवी के समान प्रतीत होती है॥९॥

सिर सोभित अति सौरभ मौर। हितु करि धरं नृपति सिरमौर॥१०॥

शिर के ऊपर सुन्दर मौर सुशोभित होता है जिसे हित कर के राजा ने रखा है॥१०॥

॥ दोहा ॥

अति रति सौं अति अरति सौं पति पूजा अति रूप।
रतिही मूरति आपनी मनो रची बहु रूप॥११॥

वह अपने पति की पूजा अनेक प्रकार (रति और अरति) से करती है। ऐसा लगता है कि रति ने स्वयं अपनी मूर्ति के अनेक रूपों की रचना की है॥११॥

॥ चौपाई ॥

आसन बैठे नृप सिर मोर। सिर पर लसत श्राम की मोर॥
धरनी सब सुगन्धमय भई। थिर चर जाजन की सुखमई॥१२॥

राजा आसन के ऊपर बैठे हैं। उनके शिर पर मुकुट और आम का मौर सुशोभित है। सारी पृथ्वी सगंध युक्त हो गयी। थल जल के जीवन को सुखमय सिद्ध हुई ॥१२॥

नृप कर फूलनि को धनु लियौ। फूलनि फूलसर संयुत कियौ ॥
अपनें परि पहिनौति अनूप। कनां कामदेव कौ रूप ॥१३॥

राजा ने फूलों का धनुष लिया और उस पर फूलों का ही बाण रखा। अपनी पत्नियों के लिये उसने कामदेव का रूप धारण किया है ॥१३॥

कीनी पूजा परम अनूप। पारवती रानी रति रूप ॥१४॥

अत्यधिक सुन्दर पूजा की। पारवती रानी रति का साक्षात स्वरूप है ॥१४॥

साचन सौं मन रोचन कियौ। मोतिन की सिर अक्षित डियौ ॥
प्रगट भये जनु दोई भाल। जस अनुराग एकही काल ॥१५॥

दुखी मनों को आनंदित किया और शिर पर अक्षत लगाये, मानो दो भालयश और अनुराग—एक ही काल में प्रकट हुए हों ॥१५॥

पूजे बहुत धनुष अरु बान। बहुविधि पूज्यौ अग्र कृपान ॥
पूज्यो छत्र ध्वजा सुन्दरी। पूजि चरण अरु पायन परी ॥१६॥

धनुष और बाण की पूजा की और कृपाण की अनेक प्रकार से पूजा की। ध्वजा और छत्र की पूजा करके पारवती ने चरणों का स्पर्श किया ॥१६॥

पूजा करि पद पद्मिनी परी। पदमनि की माला उर धरी ॥
जवतिनि की जनु हृदयावली। पहिराई पिये के उर भली ॥१७॥

पूजा करके पद्मनी के चरणों पर पड़ी और उसकी माला को उर पर धारण किया। उसने युवतियों की मानों हृदयावली को प्रियतम के गले में पहनाया हो ॥१७॥

कोऊ कुमकुमा छिरकै गात। कोऊ सौंधौ उर अवदात ॥
काहू चन्दन वन्दन धूरि। मृग मद चन्दन को करि चूरि ॥१८॥

कुमकुमा, मृगमद, चंदन का चूर अनेक सुन्दरियां छिरक रही हैं ॥१८॥

मिलै गुलाबरु-कुमकुमा वारि। कीनी छिरकी सूर उनहारि॥
अब अनग पूजा करि लई। चहूँ ओर दुन्दभि ध्वनि भई॥१६॥

गुलाबरु और कुमकुमा को छिरक करके जब उन्होंने काम की पूजा कर ली तब चारों ओर दुदुभी की ध्वनि हुई ॥१६॥

बिच बिच भेरिन के भरार। झांझ झालरि संख अपार॥
तेही समय दुवी सुखकरि। दान लोभ बरनत नरवारि॥२०॥

बीच बीच भेरी, झरझ, और शख की ध्वनि होती है। उसी समय सुखद दान लोभ तनवार का वर्णन करने लगे ॥२०॥

दान उवाच-कवित्त

देखत ही लागि जाति बैरिन कै बहु भाति,
कालिमा कमलमुख सब जग जानि जू।
जद्‌पि जनम भरि जतन अनेक किये,
धोवत हीं छूटत न केसव बखानि जू॥
निज दल आगें जोति चल चल दूनी होति,
अचला चलनि यह अकथ कहानी जू।
पूरण प्रताप दीप अञ्जन की राजि राजि,
राजति है बीरसिंघ पानि मैं कृपानी जू॥२१॥

सारा संसार जानता है कि देखते ही बैरियों के कमल सदृश मुखों में कालिमा लग जाती है। यद्यपि वे जन्म भर उसे धोने का प्रयत्न करते हैं फिर भी वह कालिमा छुड़ाये नहीं छूटती है। अपनी सेना के सामने उसकी ज्योति चपला की भांति चमकती रहती है। वीरसिंह की कृपाण में पानी और पूर्ण प्रताप विराजमान रहता है ॥२१॥

लोभ उवाच

देखत ही मोहित है मोहत महीप मति,
सुधि बुधि दीन अति देह की दसा करी।

गज घट घोटक विकट प्रति भट ठट,
निपटि निकट कन्ठ कटिबे कों सन्दरी।।
सोई सोई चैठे पाकसासन के आसननि,
जिन्हें ढारें चौर मे सुकेसी ऐसी सुन्दरी।
बीरसिंघ नरनाथ हाथ तरिवारि सोहै,
हौं कहौं अपूरव विषम विषधारी।।-३१।।

जिसे देखते ही नाहन मही्प मुग्ध हो गया और उसे अपने शरीर की दशा का भी ध्यान नहा रहा है। हाथी घोटक तथा बीरों के कठ को काटने के लिए उसकी कृपाण चलती है। सभी लोग धराशायी हो जाते हैं जिनके ऊपर कभी सुन्दरियां चोर ढारा करती थीं। वीरसिंह के हाथ में शोभित होने वाली तलवार जल स भरी हुई है।।३१।।

।। दोहा ।।

वीरसिंघ कर धनु कुसुम सुमनन हो के वान ।।
देखि देखि सुकसारिक बरनत सुनौ सुजान ।।३२।।

वीरसिंह के हाथ म कुसुम का धनुष और कुसुम का ही बाण है। उसे देख करके सुक सारिक वर्णन करते हैं, उसे सुनो ।।३२।।

सुक उवाच-कवित्त

दान का तरंगिनि के तरल तरंगिनि में,
बौरि बोरि मारे रोर कहत प्रबीने है।
अकबरसाहि के अनेक मान जीति जीति,
केसवदास राजन अभय पद दीनै हैं।।
सोधि सोधि रघुसिंह कीन्हें बनसिंह,
नरसिंह ग्राम गहि गहि ग्रामसिंह कीनैं है।
चिरु चिरु राज करो राजा वीरसिंह,
काम काम क धनुष बान कौन काम लीनैं हैं।।३४।।

सभा प्रवीण लोग कहते हैं कि दान की तरल तरंगों में डिबो कर सभी रोगा का मार,दिया है। अकबर क अनेक सानों को जीत कर

राजाओं को अभय पद दे दिया है। शत्रुओं को ढूंढ ढूंढ कर बन भेज दिया है और नरसिंह ग्राम को पकड़ पकड़ कर मार्गसिंह बना दिया है। हे वीरसिंह देव। तुम सदैव राज करो। काम के बाणों को किस कान के लिए धारण किया है ॥२४॥

॥ सारिका उवाच ॥

खग जल पूर खल देखि देखि कोटि कोटि,
वीर वीरि मारे एक वीर रस भीने हैं।
दारि दारि असि दण्ड लीने बहु दण्ड,
दण्ड एकनि कौं दण्डधारि दूनै दण्ड दीने हैं॥
केसौदास एकनि सुछोरि नाम ग्राम ग्राम,
धाम धाम वाम वेष नारिन के कीने हैं।
राजन के राजा महाराजा वीरसिंह सुनौ,
काम के धनुष बान इनकर लीने हैं ॥२५॥

अनेक खलों और करोड़ो वीरों को अकेले ही वीरसिंह ने मारा है। तलवार छोड़कर अनेक दण्ड धारण किये फिर भी वीरसिंह ने एक ही दण्ड में दुगुना दण्ड दिया। कुछ ने तो अपना नाम, ग्राम, धाम, स्त्री सब छोड़कर स्त्री का वेष धारण कर लिया है। राजाओं के भी राजा वीरसिंह ने काम के धनुषबाण को धारण किया है ॥२५॥

॥ दोहा ॥

गूँगे कुवजे बावरे बहिरे बावन वृद्ध।
जान लयैं जन आइवौ खोटे खरड प्रसिद्ध ॥२६॥

गूँगे, बहिरे लूले लगड़े बावन, वृद्ध, दुष्ट सभी अपनी अपनी सवारी लेकर आये ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

सुखद सुखासन बहु पालकी। फिर वाहिनी सुखंचाल की।
एकनि जाते दय:सोहिये। वृषभ कुरंगनि मन मोहिये ॥२७॥

सखद और सुन्दर आसन वाली अनेक पालकी हैं और उनकी चाल बड़ी सुन्दर है। कुछ ने उसमें सुन्दर घोड़े जोत रखे हैं जोकि बैलों और हिरणों के मन को आकर्षित करते हैं ।।२७।।

तिहि चढ़ि राज लोक सब चल्यौ। सकल नगर सोभा फल फल्यौ।
मनिमय कनक जाल लखिनी। मुक्तिनि के मौरनि मौवनी ।।२८।।

उन पर चढ़कर सारा राजलोक चला। इससे सम्पूर्ण नगर सुशोभित हो गया मुक्ताओं और मणियों की झालरों से युक्त स्वर्णिम लखिनी जाल है ।।२८।।

धरारा बाजत चहुं दिसि भले। बीरसिंह तिहि गज चढ़ि चले।
हंस गामिन युत कुन गूढ। मनौ मेघ मघवा आरुढ़ ।।२६।।

जब बीरसिंह हाथी पर सवार हुए उस समय चारों ओर धरारे बजने लगे। ऐसा मालूम हुआ कि हसों की भांति चलने वाला इन्द्र हाथी पर बैठा हुआ हो ।।२६।।

चहु ओर उपवन दरबार। दीजत दीरघ दान अपार।
तहँ दारिद दुख भीनें हियें। पढ़त गीत द्विज वेदहि क्रियें ।।३०

चारों ओर उपवन हैं। वहा पर बड़े बड़े दान दे रहा है। वहा पर दारिद्रय और दुख भरने पड़ गये और ब्राह्मण अनेक वेदों म अध्ययन कर रहे हैं और गा रहे हैं ।।३०।।

।। सवैया ।।

भूतल कै नृग कै बलिके सिव कै भयभात तें हीं निकस्यौ हौं।
मारत मारत श्री वर वीर पै जानें कौ के सब क्यो उबलौ हौ ।।
दुख दियो हरिचन्द दधीच तुतो अजहूँ कर माह अन्यों हो।
या जग में हमकों दुख कौ अमरेस कहा अमरेस धन्यौं हौ ।।३१।।

इस ससार में राजा नृग बलि और सिव के बल से आया हूँ। इतनी मार पड़ने के बाद भी इस संसार में कैसे उबर सका हूँ। हरिश्चन्द्र और दधीच का जो दुख दिया है वह आज तक सबको पता है। इस ससार में हमको दुख अमरेस ने दिया है ।।३१।।

॥ चौपाई ॥

दारिद पढ़त हतौ दुख मन्यौ । सब्द आइ नृप श्रवनिनि पन्यौ।
या कहि उठयौ नृपति जब भीत । बोलहु ताहि यह गीत ॥३२॥

दुखित होकर,दारिद्रय का पाठ पढ़ रहा था । वे शब्द राजा के कानों में आकर पड़ गये राजा ने उसी समय कहा कि इस दुखद गीत वाले को बुलाओ ।।३२।।

लै आये जहँ विप्र बुलाए। आमिष राजहि दीनों आए।
कह्यौ राज सुनि विप्र अभीत । पढ़त हतौ सुपढ़हु धौं गीत ॥३३॥

ब्राह्मण वहाँ ले आया गया उसने राजा को आशीर्वाद दिया। राजा ने ब्राह्मण से कहा कि जिस गीत का अभी पाठ कर रहे थे, उसी गीत का पाठ अब निर्भय होकर करो ॥३३॥

पढयौ सवै सो राजा सुनौ । कहि विप्र तूँ किहिँ दुख धुन्यौ ।
मेरे राजन विप्र डराइ । तोहि देइ दुख मारौं ताहि ॥३४॥

जिस गीत का पाठ ब्राह्मण कर रहे थे उसी गीत का पाठ उन्होंने फिर किया। इस पर राजा ने पूछा कि तुम्हें कौन सा दुख है। हे मेरे राज्य में ब्राह्मण डरे।ब्राह्मण को जो दे उस मार मैंडालू ॥३४॥

तब तिहिं पढ़यौ सवैया और । लाग्यौ सुनन नृपति सिरमौर ॥३५॥

उसके बाद उसने एक सवैया और पढ़ा जिसे राजा सुनने लगा ॥३५॥

॥ कवित्त ॥

हाथिन सौं हरखि सदाइत केसौदास हय
खुर खुरनि खुदाय डारियत हैं ।
पटनि सौं बाधि बोरि सौंधे के समुद्र
माझ, सोने के सुमेरु हैं गिरत्य पारियत हैं।
छीर खांड़ धृतन के वीजे नक रानी दिन,
होम की हुतासन कौ ज्वाल जारियत है।

वीरसिंह महाराज ऐसी हैं तुम्हारे राज,
जहां वहां कहौ कौन दोष मारियत हैं ॥३६॥
हाथियों की विनय (गर्जन) आप नहीं सुनते हैं और घोड़े के खुरों को हमेशा कटाया करते हैं । वस्त्रों में बांधकर उसे सुगंधित करके समुद्र के बीच में सुमेरु की भांति गिराकर उसे पार कर रहे हैं । खीर खांड और घृत को होम के बहाने आप नित्य उसे अग्नि में जलाया करते हैं । हे वीरसिंह ! इस प्रकार का तुम्हारा राज्य है, जिसमें कहो कि तुम कौन दोष मारते हो ॥३६॥

॥ चौपाई ॥

जान्यो नृप सो विप्र न होई । यह दारिद्र जानत नहिं कोई ।
वोही मारन की विधि रच्यो । विप्र वेस आयौ तिहि बच्यौ ॥३७॥
राजा ने समझ लिया कि यह ब्राह्मण नहीं वरन् दारिद्र है । उसको मारने की इच्छा हुई किन्तु विप्र वेष में आया था, इसलिये नहीं मारा ॥३७॥

अभयदान दाजे नृपति कीजे ठौर नरेस ।
बैरी साहि सलैम के जाइ बसौ तिहि देस ॥३८॥
दारिद्र ने कहा कि मुझे अभयदान देकर रहने के लिये स्थान दीजिये। इस पर वीरसिंह ने कहा कि सलीम शाह मेरा शत्रु है उसी के पास जाकर रहो ॥३८॥

॥ चौपाई ॥

बाजे नगर निसान अपार । चहुँ गये नृपति भीर के भार ।
आनि जुरे राजनि के राज । कौन गनै रजपूत समाज ॥३९॥
नगर में बाजे बजे । राजा के पास भीड़ इकट्ठा हो गई । अनेक राजा आकर जुट गये और राजपूतों की तो गिनती ही नहीं की जा सकती है ३९

घर घर प्रति आनन्दे लोग । बाजे सुभ सोभा सयोग ।
जब ही जब निकसै नरदेव । तब ही तहां पूजा के भेव ॥४०॥

प्रत्येक घर में सभी लोग अनन्दित शोभा के साज सजने लगे। जिस समय भी राजा निकलता है उस समय पूजा की सामग्री उपस्थित रहती है ॥४०॥

द्वार द्वार साजै आरती । गावति तरुणी मनु भारती ।
जग पर नृप सोहैं बहु भाति । आस पास राजनि की पाँति ॥४१॥

अनेक तरुणियाँ दरवाजे पर आरती सजाये हुए इस प्रकार गान करती हैं मानो सरस्वती गा रही हो। राजा अनेक प्रकार से सुशोभित है और उसके पास राजाओं की पंक्ति है ४१

जनु कलिन्द पर चन्द अनूप। सब सिंगार पर जैसे रूप ।
लोभ बसीकृत मानहु दान । बन्दी कृत तनु मानव मान ॥४०॥

मानो कालिन्द के ऊपर सुन्दर चन्द्र हो अथवा सभी शृङ्गारों के ऊपर रूप हो अथवा दान के वश में लोभ हो अथवा मानु का बन्दी शरीर हो ॥४२॥

देखन को नृप तेही घरी । प्रति मन्दिरन चढ़ी सुन्दरी ।
बरसा रितु युत मनौ बसन्त । जनु प्रलम्ब पर तन बलवन्त ॥४३॥

राजा को देखने के लिये उसी समय सुन्दरियां अपने अपने घरों पर चढ़ । ऐसा लगा कि बसन्त ऋतु वर्षा ऋतु से युक्त है अथवा प्रलम्ब पर तन बलवन्त हो ४३

यों सोभित सोभा सौं सनी । मोहन गिरि अगनि मोहनी ।
जनु कैलास सैल पर चढ़ी । सिद्धनि की कन्या दुति मढ़ि ॥४४॥

शोभा से युक्त इस प्रकार सुशोभित है मानो मोहन गिरि पर अगनि मोहनी हो। अथवा कैलाश पर्वत पर चढ़ी हुई सिद्धों की कन्यायें हों ॥४४॥

देवि देवि सी सुख सद्मिनी । पद्मिनो पर मानौ पद्मिनी ।
सुभ कवित्त उक्तै सी धरै । मुक्ति तरक सबकी मन हरै ॥४५॥

देवियों के समान सुख का घर है। अथवा पद्मिनी के ऊपर पद्मिनी हो। वे सभी के मन की युक्तियों तथा तर्कों को हर लेती है ॥४५॥

मनौ छजनि पर कीरति लसै। रूपनि पर दीपत्ति मो बसै।
गृह गृह प्रति गृह जनु देवता। जनु सुमेरु सोन की लता ॥४६॥

मानो छज्जों के ऊपर कीर्ति विराजमान हो। और सौंदर्य के ऊपर दीप्ति के समान विराजमान हो मानो घर घर गृह देवता हो। अथवा सुमेरु पर्वत पर सोने की लता हो ॥४६॥

एकनि कर दर्पन नहि हरै। मना चान्द्र सा चन्द्रहि धरै।
एक अरुन अम्बर मस भिना। जन अनुराग रगी रागिनी ॥४७॥

एक अपने हाथ से दर्पन को नहीं हटाता है माना चंद्रिका चन्द्र को पकड़ रही हो। एक अरुण रंग-वर्ण का है माना अनुराग के रङ्ग में रङ्गी हुई हो ॥४७॥

एकै वर्षासित पुष्प असेष। मनौ पुष्पलता सुर वेष।
एकै सब कपूर की धूरि। डारति चन्दन वन्दन भूरि ॥४८॥

एक सभा पुष्पों की वर्षा कर रहा है माना पुष्प लता है। एक शुभ कपूर चन्दन एव वदन को छोड़ रही है ॥४८॥

बरन बरन बहु फूलनि हारि। एक कुकुमा कुकुम वारि।
बरषत मृगमद बुन्द विचारि। मना जमुना जल की धारि ॥४९॥

अनेक वर्ण के फूलों के हार हैं। कुकुमा, कुकुम और मृगमद की वर्षा करती हैं। उसे देखने से ऐसा लगता है कि जमुना की माना धारा हो ॥४९॥

मनौ त्रिबेनी जल अभिषेक। करति देव त्रिय करै विवेक।
इहि विधि गये राज दरबार। बन्दीजन जस पढ़त अपार ॥५०॥

मानो त्रिवेनी का अभिषेक करने के लिए देवों की स्त्रियाँ पूजा कर रही हैं। इस प्रकार नारसिंह अपने दरबार को गये और साथ बन्दीजन यश का पाठ पढ़ रहे थे ॥५०॥

सवैया

भूषति देह विभूषति दिगम्बर नाहिन अम्बर अगनबीनै ॥
दूरि कै सुन्दर सुन्दरि केसव दौरि दरीनि मैं आमान कीनै ॥

देसिये मण्डित दण्डन सौं भुजदण्ड दुवै असि दण्ड विहीनै।
राजनि वीर नरप्पति के उर कुमण्डल छाड़ि कमण्डल लीनै ॥४१॥

सुन्दर विभूषित देहों पर वस्त्र नहीं हैं। उन सभी ने दौड़ करके दर्शन में अपना आसन जमा लिया था। सभी दण्डन से मण्डित हैं राजा तथा वीरों ने कुमण्डल को छोड़कर कमण्डल को धारण कर लिया है ॥४१॥

॥ दोहा ॥

कमल कुलिन में जात ज्यौं भौंर भरयो रस भेव।
राजलोक मैं त्यों गए राजा वीरसिंह देव ॥४२॥

कमल के फूलों में जिस प्रकार से भ्रमर जाता है उसी प्रकार से राजलोक में वीर सिंह गया ॥४२॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे मदन मनोत्सव वर्नन नाम षड्विंशति ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

इहि विधि दान लोभ रुचि रये। बहुत देस पुर देखत गये।
वासर एक तीसर जाम। देखन चले राज के धाम ॥१॥

इस प्रकार से दानलोभ ग्राम व अनेक देशों को देखने हुये चले। एक दिन तीसरे याम के बाद राजधाम को देखने के लिये चले ॥ ॥

देख्यो जाइ राज दरबार। आठौं रस केसौ आगार।
आवत जात राज रनधीर। दुपद चतुपद की बहु भीर ॥२॥

उन्होंने राज दरबार को जाकर देखा जो कि आठों रसों का आगार था। अनेक राजे दरबार में आते जाते हैं और द्विपद और चतुष्पद की भीर है ॥२॥

घाटत घटित जटित मनि जाल। बिच-बिच मुक्ता माल विसाल।
ऐसे प्रजा प्रजनि समेत। जामिनि करनी करनि समेत ॥३॥

बाजार मणियों के जाल से सुशोभित है। बीच बीच में मुक्ताओं की मालायें हैं। इस प्रकार की प्रजा के साथ राजा सभी कर्म करता है ॥३॥

सकल सुगन्ध सुगन्धित अंग। सुमन लसैं फूले बहुरङ्ग।
सुभग चन्द्रमय सी लेखियैं। जामैं विविध विबुधि पेखिये ॥१०॥

अनेक रंगों के सुगंधित पुष्प सुशोभित हैं। सुभग चन्द्रमा के समान दिखाई देता है जिससे अनेक विबुध दिखाई देते हैं ॥१०॥

उत्तम मध्यम अधम सयोग; मनो विविध व्याकरण प्रयोग ॥११॥

उत्तम, मध्यम अधम का सयोग इस प्रकार दिखाई देता है मानों व्याकरण के प्रयोग हों ॥११॥

जद्यपि ब्रह्म भव्य जग रहै। ब्रह्मपुत्र की निन्दा करै।
अद्भुत वार्तनि की करतार। अमल अमृत मडल कौ सार ॥१२॥

यद्यपि ससार ब्रह्म की भव्यता के लिए परेशान रहता है फिर भी ब्रह्मपुत्र की निंदा किया करता है। अद्भुत बातों का वह करतार है और अमृत मण्डल का सार है ॥१२॥

अघ कौ गङ्गा कैसी धार। गुनगन कौ आदर्श अपार।
सरनागत कों मनो समुद्र। दुष्ट जननि की अद्भुति रुद्र ॥१३॥

पाप के लिये वह गगा की धारा है। गुणो के लिये अपार आदर्श है। शरणागत के लिये समुद्र के समान है और दुष्टो के लिए रुद्र के समान है ॥१३॥

सत्यलग कौं ताल तमाल। छमा दया का मनौ दयाल।
जाचक चातक कों धन रूप। दीन मीन जलजाल सरूप ॥१४॥

सत्यलता के लिये मानो ताल और तमाल हो। क्षमा और दया का मानो घर हो। याचक रूपी चातक के लिये धन के रूप मे हैं। मछली की भांति दीनो के लिये जल के रूप मे है ॥१४॥

॥ दोहा ॥

केसव दारिद दुरद कौं केहरि नख उनहारि।
वीरसिंह नरनाथ के हाथ लसति तरवारि ॥१५॥

दरिद्रता और पाप के लिये केहरि के नख के रूप में है। वीरसिंह के हाथ मे सुशोभित तलवार है ॥१५॥

॥ सवैया ॥

जूझ अजूझ अध्यारिनि सी तिह काल लसी है ।
पाप कला पयवारिनि के सबको पिकुनाथन साथ ग्रसी है ॥
तेई है वीर नरध्यति कै कल करति सागर पास अरी है ।
वैरिन की सब श्री जिनकी तरवारि तरंगनि माझ वही है ॥१६॥

जूझ अजूझ उस समय अंधकार की भांति सुशोभित हुए हैं। पाप के समूहों को पिकुनाथ के साथ ही ग्रस लिया है। उन्हीं वीर नृपति की कीर्ति सागर के पास आकर रुकी है। वैरियों की कीर्ति वीरसिंह की तलवार की धार में बह गई है ॥१६॥

॥ चौपाई ॥

कबहूँ कुँवर वेष सी लसै। सोभा के सागर में बसै।
जिनकी कृपा दृष्टीअनुहारि। कामधेनु कैसी सुखकारि ॥१७॥

शोभा के सागर में बसा हुआ कभी कुँवर वेष में सुशोभित होता है। उनकी कृपा दृष्टि वैसी ही है जैसी की कामधेनु का पा जाना है ॥१७॥

कहूँ कुबेर की सोभा धरैं। राज राज सब सेवा करैं।
जाकी प्रीति माझ सब कहैं। सबही कौसी भव निधि कहैं॥१८॥

कहीं कुबेर की शोभा को धारण करके राज्य की सेवा में लगा हुआ है। उसकी प्रीति को सभी लोग भवनिधि कहते हैं ॥१८॥

कबहूँ कुधर्म राज के वेष। राजनीति जहँ बसैं असेष।
सब दिन धर्म कथा सँचरै। धरमातमा जहाँ पग धरै ॥१६॥

कभी कुधर्म का वेष धारण करके सारी राजनीति वहाँ पर वास करती है। सभी समय धर्म की कथा होती है और वहाँ पर केवल धरमात्मा पग रखते हैं ॥१६॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्म आदि दै कीट लौं सुनिजै दान प्रभाव।
सबही के सिर पर बसै देउ नीति की भाव ॥२०॥

ब्रह्म से लेकर वीर तक दान का प्रभाव सुन लें कि वहा पर सभी के लिए देवनीति का ही भाव रहता है ॥२०॥

॥ चौपाई ॥

कबहुक वीरसिंह देउ तिहि सभा । सूरज कैसी सोभित प्रभा ।
जगत जीविका जाके हाथ । बसति रची उर कमलानाथ ॥२१॥

कभी वीरसिंह उस सभा में सूर्य की प्रभा के समान सुशोभित होता है । ससार की जीविका जिसके हाथ में है, वही कमला उसके हाथ में निवास करती है ॥२१॥

उदै उदौ सबही को होय । वहै जगे सोवे सब कोय ।
सोई काल दिग है ठठयो । सदा काल सबको प्रभु भयो ॥२२॥

उदय होने पर ही सबका उदय होता है । एक वही जगता है और सब सोते हैं । जो काल सभी का स्वामी बना रहता है वही उसके पास टिक गया है ॥२२॥

कबहुक सुरनायक सो लगै । धरै बज्र कर श्रति जगमगै ।
ठाढ़े कवि सैनापति धीर । कलित कलानिधि गुन गभीर ॥२३॥

कभी बज्र को धारण करने पर इन्द्र के समान लगता है । सुन्दर सभी कलाओं से पूर्ण कवि और सेनापति खड़े हुये हैं ॥२३॥

गुणी गिरापति विद्याधारी । इष्टि अनुग्रह निग्रह भारी ।
कहूँ मन महादेव ज्यों हरै । अंग विभूतिनि भूषित करै ॥२४॥

सभी विद्वान गुणी और गिरापति हैं और उनमें निग्रह अधिक है । शरीर का जब वह विभूति से विभूषित कर लेता है तब महादेव के समान मन को हर लेता है ॥२४॥

सक्ति धरै सोभियत कुमार । गुन गनपति गनपति दरबार ॥२५॥

शक्ति धारण किये हुये कुमार इस प्रकार सुशोभित होता है जिस प्रकार गणपति दरबार में सुशोभित होते हैं ॥२५॥

॥ दोहा ॥

गङ्गाजल जस भाल ससि महित सुभगती नित्त।
मोहति उरसि अनुक्त ज् महादेव से मित्त ॥२६॥

जिस प्रकार से गंगा जी और चंद्र महादेव जी के पास नित्य शुभ गति को देने वाले सुशोभित हैं उसी प्रकार वीरसिंह के हृदय में अनुक्त महादेव के मित्र के समान वास करती है ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

पुरुषारथ प्रभु सौं सोहियौ। नल सौं दानि जगत मोहियौ।
हरिश्चन्द्र सौ सत्यावन्त। दिन दधीच सो धीरजवन्त ॥२७॥

पुरुषार्थ की शोभा प्रभु के कारण ही है। नल के समान दानी होकर उसने संसार को मोहित कर लिया है। हरिशचन्द्र के समान सत्यवान है और दधीच की भांति धैर्यशाली है ॥२७॥

श्रीपति रामचन्द्र सौं साधु। भृगुपति ज्यौं न छमैं अपराधु।
जान भोज हनुमत सौं जसी। विक्रम विक्रम सो साहसी ॥२८॥

रामचन्द्र की भांति साधु स्वभाव है और भृगुपति के समान वह भी अपराधी को क्षमा नहीं करता है। राजा भोज और हनुमान की भांति जशी है और *विक्रमादित्य की भांति विक्रमी है ॥२८॥*

॥ कवित्त ॥

दाननि में बलि से बिराजमान जिहि पहँ मांगिवे को ह्वै गये,
त्रिविक्रम सुनल से। पूजत जगत प्रभु द्विजनि की मडली मैं,
कैसोंदास देखियत सोनक सनक से ॥ जो धन मैं भरत भगीरथ
दसरथ प्रथु पारथ से विक्रम सुग्रानक वनक से। मधुकुर साहि सुत
महाराजा वीरसिंह केसोदास राजनि मैं राजत जनक से ॥२६॥

दानियों में बालि के समान है जिसके पास मांगने के लिये त्रिविक्रम और सुनल के समान हो गये। सौनक और सनक की भांति त्यागी ब्राह्मण मण्डली उसको पूजा करती है। योद्धा के रूप में भरथ, भागीरथ दशरथ

पृथु और अर्जुन की भांति है। मधुकर शाहि का पुत्र वीरसिंह राजाओं में जनक की भांति सुशोभित है ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

यह सुनिकै तन मन रीझियौ। हाटक जटित ताहि गज दियौ।
केसव सौं यह बोल्यौ बोल। राज धर्म सबही कौ तोल ॥३०॥

यह सुनकर मन प्रसन्न हो गया और उसे सोने से जटित हाथी दिया। केशव ने कहा कि राजधर्म सभी का सार है ॥३०॥

परमानन्द पापीन कौ मूल दुःख कौ फल अपजस कौ मूल।
नेकहि मोहि न नीकैा लगै। सोई मनौ जु पारै लगै ॥३१॥

परमानन्द पापियों का मूल, दुख का फल और शूल है। मुझे थोड़ा भी अच्छा नहीं लगता है। कोई ऐसी बात कहो जिससे पार लगा जा सके ॥३१॥

कह राजा ऐसोई राज। तुमकौं उलटो बचन समाज।
उदासी क्यौं हूजे चित्त। तुमकौं बल करू सौंप्यौ मित्त ॥३२॥

हे राजन्! मैंने ऐसे ही राज्य का वर्णन किया किन्तु आपकी समझ ही उल्टी है और आप अपने चित्त में उदास क्यों होते हैं। आपको तो बल सौंप दिया है ॥३२॥

॥ दोहा ॥

दान लोभ देखे नृपति देखी सभा उदार।
मूरति धरि ठाढे भये जाए राज दरबार ॥३३॥

दान लोभ ने राजा और उसकी उदार सभा को देखा। मूर्तिमान राज दरबार में आकर खड़े हो गये ॥३३॥

इतिश्रीमन्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे वरनन नाम सप्तविंशति प्रकाश ॥२७॥

॥ चौपाई ॥

जिन्है देखि नृप सौं प्रति हार। गुदरण आयौ बुद्धि उदार।
महाराज द्वै विप्र अपार। अद्भुत दुति ठाढ़े दरबार ॥१॥

उन्हें देखकर द्वारपाल राजा से कहने आया कि हे राजन ! ब्राह्मण दरबार में खड़े हैं जिनकी काति अद्भुत है ॥१॥

पीत धोवती पहिरैं गात। ऊपर उपरैना अवदात।
मोहत उर उपवीत सुदेस। गौर स्याम वपु तरुन सुवेस ॥२॥

पीली स्वच्छ धोती पहने हैं, उनके ऊपर शुद्ध उपरैना है। हृदय पर सुन्दर यज्ञोपवीत सुशोभित है। गौर स्याम वर्ण के शरीर हैं॥२॥

कुंमकुम तिलक अलक सब रङ्ग। सहज सुगंध सुगन्धित अंग।
हिमगिरि विन्ध्य धरै ध्वज रूप। किधौं प्रकट रस विरस सरूप॥३॥

कुंकुम और तिलक लगाए हुए हैं। सुन्दर बाल हैं। स्वाभाविक रूप से ही शरीर सुगंधित है। ऐसा लगता कि हिमालय ने विंध्याचल का ध्वज के रूप में धारण कर लिया है अथवा रस विरस रूप में प्रकट हुआ है ॥३॥

दुख सुख दुनै कि प्रेम वियोग। पुन्य पाप अग्यान प्रबोध।
सत्य झूठ कै हाँस सिंगार। कैधौं अनाचार अचार ॥४॥

अथवा सुदुख, प्रेम वियोग, पुण्य पाप, अज्ञान ज्ञान सत्य झूठ, अनाचार आचार हों ॥४॥

साधु असाधु कि मानामान कैधौं। जोग वियोग प्रमाण।
कृतयुग कलियुग अपजस सोभ। विष विद्वेष कै लोभ लोभ ॥५॥

अथवा साधु, असाधु, मान अपमान, योग वियोग हों, अथवा कृत युग और कलियुग में अपयश के समान हों, अथवा विष विदूष, लोभ और अलोभ हों ॥५॥

शुक्ल शुक्ल पक्ष अनुमान। गङ्गा यमुना रूप प्रमान।
कै जै अजय अर्थबन स्याम। रूप रूप मानो ससिकाम ॥६॥

अथवा शुक्ल और कृष्णपक्ष हों या गंगा यमुना हों या जय और पराजय हों अथवा अनेक रूप में शशि काम हो ॥६॥

कैधौं वर्षा सरद प्रभाउ। कैधौं भागाभाग सुभाउ।
किधौं अविद्या विद्या रूप। पुंडरीक इन्दीवर भूप ॥७॥

अथवा वर्षा और शरद ऋतु के प्रभाव हैं अथवा भाग्य अभाग्य के रूप हैं अथवा विद्या और अविद्या के रूप हों या पुण्डरीक और इन्दीवर हों ॥७॥

किधौं अनुग्रह साप प्रकार। शुक्र सनीचर के अवतार।
सत्व तमोगुन नारद व्यास। बासुकि काली रूप प्रकास ॥८॥

अथवा अनुग्रह के शाप के फल है शुक्र और शनिश्चर के अवतार हैं अथवा सत्व और तमोगुण या नारद और व्यास या वासुकि और काली के रूप हों ॥८॥

किधौं राम लछिमन द्वै साग। मन क्रम बचन किधौं अनुराग।
देखि प्रणाम कियो नर नाथ। लै गये सभा मध्य सुर नाथ ॥६॥

अथवा राम लक्ष्मण दो भाई हों अथवा मन कर्म वचन के अनुराग हों। उन्हें (दान लाभ) देखकर राजा ने प्रणाम किया और सभा के बीच में गये ॥६॥

युग सिंहासन तुल मगाई। बठारे दोऊ सुरराई।
निजकर कमल पसारे पाई। कीनो पूजा बिबिधि बनाई ॥१०॥

दो सिंहासन मगाकर दोनों को बैठाया। अपने कमलवत् हाथों से पैर धोये और अनेक प्रकार से पूजा की ॥१०॥

॥ दोहा ॥

भूपण पट पहिराय तन अङ्ग सुगन्धि चढ़ाई।
बारा धरि आगे नृपति बिनती करी बनाई ॥११॥

शरीर को आभूषण और वस्त्र पहनाकर सुगंधित वस्तुओं से उन्हें सुगंधित किया। पान आगे रखकर राजा ने विनती की ॥११॥

॥ चौपाई ॥

परम अनुग्रह मोपर कर्यो। चारु चरण यह अङ्गन धर्यो।
मेरे घर सब सोभा भरे। पुन्य पुरातन उरवर करे।
जो कछु आये चित्त बिचार। कहौ कृपा केसव सुखकारि ॥१२॥

आपने बड़ी कृपा की कि मेरे घर आने का कष्ट किया। मेरे घर सभी शोभा के साज उपस्थित हैं। आपकी जो इच्छा हो उसे कहें ॥१२॥

॥ दोहा ॥

दान लोभ नृप वचन सुनि तन मन अति सुख पाई।
पढ़े गीत तब द्वै दुहुनि वदन वदन कमल मुस्क्याई ॥१३॥

दान लोभ राजा के वचनों को सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। कमलवत् मुख से मुसकराते हुए दोनों ने दो गीत पढ़े ॥१३॥

॥ दान उवाच ॥ कवित्त ॥

बाड़व अनल ज्वाल साजि लाज जारी,
जिन जोर जल जाल की कराल सूग वीची है।
केसौदास पर्वत कराल अहिकालहू नैं,
कीनी दसि जाकी सदा निजआँख नीची है।
सब सर्व मद गो अखव गर्व गञ्जनिनि
वज्रहू की धारा धीर रीझ रस सीचो है।
नाचै इभ कुम्भनि में तेरी तरवारि रन,
देखि कै तमासो ताको मीच आँख मीचा है ॥१४॥

वड़वाग्नि की प्रज्वलित लपटें भी तेरी तलवार के सम्मुख लज्जित हो गई हैं। कराल पर्वत अहिकाल ने भी तुझे देखकर अपनी आँखें नीची कर ली हैं। सभी लोगों के गर्व और अहंकार को चूर करने वाली वज्र की धारा भी तुझे देखकर रस का सञ्चार करने लगती है। कुम्भनि में तेरी तलवार का तमाशा देखकर मृत्यु ने भी अपनी आखें मींचली हैं ॥१४॥

॥ लोभ उवाच ॥

रज्यों जिह केसौदास टूटति अरुननाम,
प्रीत भट अङ्गनि तैं अङ्ग परसत हैं।
सैना सुन्दरीन के विलोकि सुख मृगनीनि,
विलकी किसकी जहाँ ताही को धरत हैं।

गाढ़े गढ़ खेलहीं खिलौननि ज्यों तारि डारे,

जग जए जस चारु चन्द को अरत है।

बीरसिंह साहिब जू अगनि विसाल रन,

तेरी करवाल बाललीला सा करत हैं ॥१४॥

टूटना हुई यवनराज का जिसने रंजित कर दिया। योद्धाओं के अगों का ही सदैव स्पर्श किया करता है। सुन्दरियों की सेना के मुख और आभूषणों को देखकर आनन्दित होकर जिस तिसका आलिंगन करता है। संसार के यश को तूने खेल में ही खिलौनों की भाँति तोड़ डाला है। हे वीरसिंह! तू महाबली है और युद्ध में तेरी तलवार बाल लीला सी कर रही है ॥१४॥

चौपाई

दानलोभ अपनो वपु गह्यो। आदि अन्त को ब्यौरो कह्यो।
देव देवि की सासन पाई। तुम पर हम आये सुखदाई ॥१६॥

दान लोभ ने अपना शरीर धारण किया और आदि से अन्त तक की सारी कथा कही। देवी की आज्ञा पाकर हे देव! मैं तुम्हारे पास आया था ॥१६॥

जेही भाँति होय निरधार। कीजे सोई चित्त विचार।
यह सुनि वीरसिंह सुख पाई। वचन कह्यौ़सिव सभै सुनाई ॥१७॥

जिस प्रकार से भी उद्धार हो वही अब विचार कीजिए। इन वचनों से मुग्ध होकर वीरसिंह ने अपनी सभा को सुनाकर कहा ॥१७॥

दोहा

विविध मित्र मन्त्रि सुनो राजराज कविराज।
कौन भाँति पूरन करौं दानलोभ के काज ॥१८॥

राज्य के मित्र, मंत्री कविराज सुनो और बताओ कि मैं दान लोभ का काम किस प्रकार पूर्ण करूँ ॥१८॥

देवी सातों दीप की सौंप्यों सबै सयान।
दान लोभ पये यहा सुनिजै करयों प्रमान ॥१६॥

सातों द्वीपों की देवी ने सभी प्रकार से विचार करके दान लोभ की बात कही ॥१९॥

चौपाई

दान लोभ के एकै धर्म। तातैं सुनौ दान के कर्म।
तीन प्रकार कहावत दान। सत्व रजोगुन तमो निधान ॥२०॥

दान और लोभ का धर्म एक ही है। इसलिए दान के कर्म को सुनो। दान तीन प्रकार का होता है सात्विक, राजसिक और तामसिक ॥२०॥

पाई सुविप्रहि दाज दान। देस काल सो सात्विक जान ॥२१॥

ब्राह्मण को दिया दान देश काल के अनुसार सात्विक दान होता है ॥२१॥

अनाचार साचार अगाधु। मूरख पढ्या कि साधु असाधु।
विप्र होत जग जुग अनुरूप। तातैं विप्र अतिथि कौ रूप ॥२२॥

अनाचारी आचारी असाधु साधु, में से कुछ भी ब्राह्मण हो, किन्तु फिर भी वह अतिथि होता है क्योंकि वह रूप संसार में विष्णु का रूप होता है ॥२२॥

श्लोक

साचारो वा निराचार साधुर्वासाधुरेव च।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्रह्मणो माम की तनुः ॥२३॥

ब्राह्मण साचार हो अथवा आचार रहित, साधु हो अथवा असाधु शिक्षित हो अथवा अशिक्षित फिर भी पूज्य है ॥२३॥

चौपाई

आपु न देय देय जुग दान। तासौं कहियैं राज सुजान।
बिन श्रद्धा अरु वेद निधान। दान दहि ते तामस दान ॥२४॥

स्वय दान न देकर युगदान दे तो उसे राजस दान कहते है और जब दान बिना श्रद्धा और वेद के विधान के दिया जाता है तो वह दान तामस दान कहलता है ।।२४।।

तीन्यौं तानि तीनि अनुसार। उत्तम मध्यम अधम विचार।
उत्तम द्विजवर दीजै जाई। मध्यम निज घर देई बुलाई।
मागे दीजै अधम सुदान। मेधा को सब निरफल जान ।।२५।

तीनो ही दान उत्तम मध्यम अधम के विचारानुसार हैं। उत्तम दान तो यह है कि ब्राह्मण के घर जाकर दान दिया जाय और मध्यम दान यह है कि ब्राह्मण को घर बुलाकर दिया जाय और अधम दान वह होता है जो कि माँगने पर दिया जाता है। इस दान का कोई फल नहीं होता है ।।२५।।

श्लोक

अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव च मध्यमम्।
अधमं याचमानं च सेवादानं च निष्फलम् ।।२६।।

- दान चार प्रकार के होते है—(१) उत्तम, स्वय जाकर देवे (२) मध्यम में बुलाकर दिया जाय (३) अधम माँग कर दिया जाय (४), निष्फल दान ।।२६।।

श्रेष्ठ उत्तम दान वह होता है जिसे ब्राह्मण के घर पर जा कर दिया जाता है और जो दान ब्राह्मण को बुलाकर दिया जाता है मध्यम दान होता है और मागने पर जो दान दिया जाता है अधम होता है और उसका कोई फल भी नहीं होता है ।।२६।।

चौपाई

सुपनि नित्य नैमित्तिक दान। नित्य जु दीजै नित्यहि दान।
नैमित्तिक सुनिजै सुखपाई। दीजे दान सुकालहि पाई। ।।
पहिलि निमित्य नजीकहि देउ। वहुरै नगर वासिकन देउ ।।२७।।

नेम सहित जो नित्य दान दिया जाता है उसे नित्यदान कहते हैं। जो दान किसी समय विशेष (पर्व आदि) पर दिया जाता है उसे नैमित्तिक दान कहते हैं ॥२७॥

बहुरे अपने वसे जु देस। बचे जु ताकहँ देउ बिदेस।
सो सकाम जानें निःकाम। बहुरि सुजानों दच्छिण वाम॥२८॥

दान का धन पहले निज आश्रित जनों को दो, फिर नगर निवासियों को, फिर देश वासियों को। दच्छिण-वाम दान का विचार करो ॥२८॥

सफलहि छियें स्ख्यो सकाम। हरि हित दीजे सो निरकाम।
धर्म निमित्त सुदच्छिण जान। तिनमें एक सुदास कुदान॥२९॥

सफलता की इच्छा से जो दान दिया जाता है वह सकाम दान होता है और ईश्वर इच्छा से दिया जाने वाला दान निःष्काम होता है। धर्म के लिये जो दान दिया जाता है वह दाच्छणी दान होता है। एक कुदान भी है ॥२९॥

धर्म विनासो अधम बखान। विप्रनि दीनैं द्वै विधि दान।
देहु दान जिनसों बहु सुख। दै कुदान जनि देख्यो मुख्य॥३०॥

धर्म विनाश के लिये जो धन दिया जाता है वह अधम है। ब्राह्मणों को दो प्रकार का दान दिया जाता है। दान वही देना चाहिये जिससे सबका सुख हो और कुदान देने वाले का मुख भी नहीं देखना चाहिये ॥३०॥

श्लोक

तप पर कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥३१॥

तप की महत्ता सतयुग में तप और त्रेता में ज्ञान और द्वापर में यज्ञ कलियुग में दान श्रेष्ठ होता है ॥३१॥

चौपाई

दान लोभ :मय जग के काज। यहै जानि मानै सुरराज॥३२॥

ससार के कामो के लिये ही गुरराज ने दान लोभ को बनाया है ॥३२॥

छप्पै

जान लोभ कछु लहि दान कौ दान कहावैं।
लिये दिये बिन लोग कहाँ क्यों सुख दुख पावैं॥
दान लोभ में बसत लाभ पुनि बसत दान बन।
भव्य दियो भगवन्तहि दिये लिये बिनि क्यों बन॥
निज कारण सब ससार कहैं दान लाभ दोऊ जनै॥३३॥

जो कुछ भी लोभवश लिया जाता है वह सभी दान कहलाता है। यदि लेन देन समाप्त हो जाय तो लोग सुख दुख किस प्रकार पावें। दान का वास लोभ में है और लोभ दान में वास करता है। बिना लिए दिए कुछ भी होना सम्भव हो नहीं है। निज कारण ही ससार में दान लोभ है ॥३३॥

॥ पुन. ॥

जे सुख कछू अनस्य नइ लीजे।
जिहि हैं उपजे पाप न दीजे ताहि न लीजै॥
दावेही कहं दानलोभ लीवे कहँ कीने।
दाहिन लेहि ते वेद कहैं सबही हैं हीने॥
सन्तति सदा समान तुम दुहँ लेहु हरि देर जग।
तुम दानलोभ दोऊ जनै देव देव लागे सुमग॥३४॥

जिससे सुख हो उस वस्तु को ले लेना चाहिये किन्तु जिस वस्तु से पाप की उत्पत्ति होती हो उसे न तो लेना चाहिये और न देना ही चाहिये। लेने देने के लिये ही दान लाभ हैं। सभी सन्तति समान हैं उन्हें ससार में लेना देना चाहिये ॥३४॥

॥ चौपाई ॥

ऐसो वचन कहन जग मित्त। हरषि उठे सबही के चित्त॥३५॥

जगमित्त ने जब इस प्रकार के वचन कहे तब सभी हार्षित हो उठे ॥२५॥

इति श्रीमत्सकल भूमराडालाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्र दानलोभ समान तनेन नाम अष्टविंशति ॥२८

॥ चौपाई ॥

वीरसेन सुनी मति धीर। देखहु तुइनौं सुचित सरीर।
जो कुछ होये तुम्हारे चित्त। कि कहिनै होय गै कहिजै मित्त ॥१॥

हे मतिधीर वीरसिंह ! तुम भी सुन्दर शरीर को देखो। जो कुछ तुम्हारे मन में हो उसे कहो ॥१॥

॥ महाराज उवाच ॥

राज्य रच्यो रच्यौ विधि कौ मूल। अनुकूलनि कौ है प्रतिकूल।
जाहि दैन लीजत है सुख। सोई देत हमैं फिरि दुख ॥२॥

ब्रह्मा ने राज्य को दुख का मूल बनाया है। जिसे सुख देने की इच्छा करता हूँ वही मुझे उसके बदले में दुख देता है ॥२॥

बहुत भांति हम हित हित भरी। रामदेव सौं विनती करी।
आपनु सुख मैं कीजै राज। हम करिहैं सब सेवा साज ॥३॥

अनेक प्रकार से हित का विचार करके मैंने रामदेव से विनती की। मैंने उनसे कहा कि वे सुखपूर्वक राज्य करें और मैं उनकी सेवा करूंगा ॥३॥

जाई हम उनिकौ हित करै। सोई वे उलटी जब कहै।
सोई सोई किनौ काज। जेहीं जेहीं भयौ अकाज ॥४॥

जितना ही मैं उनके हित की बात करता हूँ उतना ही वे उलटी बात करते हैं। उन्होंने वही काम किये जिनसे सदैव अकाज ही होता रहा ॥४॥

जौ हम रानी राखन लई। वाहित भागि कह्यौ कहि गई।
लरिका जानि राउ भूपाल। तिनकौ करत लयौ प्रतिपाल ॥५॥

जिस रानी को हमने रखने का विचार किया वह उसके लिए वहाँ से भाग गई। नूरालराय का पुत्र जानकर उसका प्रतिपाल करने का निश्चय किया।।५।।

हम उनके सिर छाड़ौ धाम। उनि कीनों सब उलटौ काम।
सुनि जु हूँहै मिगरी आपु। जैसें बुरे राउ भूपाल ।।६।।

मैंने उनके सिर पर सारा काम छोड़ा और उन्होंने सारा काम उल्टा ही किया। आपने भी सुना होगा कि नूरालराव कितने बुरे है ।।६।।

॥ दोहा ॥

जासों कीजत पुन्य अति ताके जित मैं पाप।
सबके लियें जिय की बात तुम सब समुझत हौ आप ।।७।।

जिसके लिए इतना पुण्य करते है उसी के हृदय में पाप है। सभी के हृदयों की बात आप स्वयं समझते हैं ।।७।।

॥ दान उवाच ॥

महाराज मुनि वीरसिंह देव। तुम सों कहौं राज के भेव।
इकहीं यह नृप कर्म कराल। दूजें वर्त्तत है कलिकाल ।।८।।

हे वीरसिंह! मैं तुमसे राज्य का भेद कहता हूँ। एक तो राजा का कर्म कठिन है और दूसरे कलिकाल है ।।८।।

जमै वर्त्ति जु जानै लाय। ताकौ दुहूँ लोक सुख होय।
सोदर सुत अरु मन्त्रि मित्र। इनकै हम प सुनौ चरित्र ।।९।।

जिसमें लोभ रहता है उसे दोनों लोकों में सुख होता है। भाई, पुत्र, मन्त्री और मित्र के चरित्र मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।।९।।

इनही लग्यौ राज रौ काज। इनहीं तैं सब होत अकाज।
राज भार नल मैं यह दियौ। छल बल छीनि सबै उन लियौ ।।१०।।

इन्हीं से राज्य का काम होता है और इन्हीं से सब काम खराब भी होते हैं। राज्य का भार नल राजा को दिया फिर भी छलबल से उन्होंने छीन लिया ।।१०।।

तब उन आपनो राज विचारि। नल दमयन्ति दये निकारि।
उग्रसेन सुत के हित रये। तिनके पहिरत सोवत भये ॥११॥
तब उन्होंने सोचा कि यह मेरा राज्य है और इसलिये उन्होंने नल दमयन्ती को निकाल दिया। उग्रसेन के पुत्र के लिये सारे पहुरवे सो गये ॥११॥

जनपद जन सब अपने भये। राजबन्दि खानै दये।
राजा सुरथ राज की गाथ। सौंपौ सब मन्त्रिन के हाथ ॥१२॥
जनपद के सभी लोग अपने हो गये। राजा सुरथराज की कथा प्रसिद्ध है कि उन्होंने राज्य को मन्त्रियों को सौंप दिया था ॥१२॥

सन्तति मृगया रसिक विचारि। मन्त्रिन राज दये निकारि।
दिल्ली को नृप पृथ्वी राज तार्के सबही बल को साज ॥१३॥
मन्त्रियों ने राजा को मृगया का रसिक जानकर निकाल दिया। दिल्ली के राजा पृथ्वी राज में सभी प्रकार की शक्ति था ॥१३॥

तिहि नृप मित्र कर्‌यौ कैलास। सौप्यो राज काज रनिवास।
तिहि पापिष्टन कर्‌यौ विचार। राजलोक के रच्यौ विगार ॥१४॥
उसने कैलाश को अपना मित्र बनाया और राज्यकर्म तथा रनिवास का सारा कार्य उसी पर छोड़ दिया। उस पापी ने राज्य के विनाश का विचार किया ॥१४॥

और भले सब राज चरित्र। मूरख भले न मन्त्रि मित्र ॥१५॥
राज्य की और सभी बातें अच्छी हैं। मन्त्री और मित्रों से मूर्ख भले हैं, लेकिन ये नहीं ॥१५॥

॥ दोहा ॥

सोदर मन्त्रि मित्र सुत ये नरपति के सग।
राज करै न इनहीं लिये राखै सब दिन सग १६

सोदर मन्त्री मित्र सुत राजा साथ रहे तो सब दिन राज्य करे ॥१६॥

॥चौपाई॥

राजश्री अति चचल गत । ताहू को सब सुनिजै बात।
धन सम्पत्ति अरु जोवन गर्व । आनि मिलै अविवेक अरर्व ।
राजसिरी सो होव प्रसग कौन न भ्रष्ट होय यह सग॥१७॥

हे तात ! राज्य श्री अत्यधिक चचल है । अब उसकी भी बात सुन लीजिये । धन सम्पत्ति, अहकार और यौवन के कारण अविवेक उत्पन्न होता है । राज्य श्री का सग होने पर कौन भ्रष्ट नहीं होता है अर्थात् सभी होते हैं ॥१७॥

॥श्लोक॥

यौवन धनसम्पत्ति । प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥१८॥

यौवन, धन, सम्पत्ति दासत्व और अविवेकता विनाशकारी अलग अलग तो हैं ही, और यदि चारों मिल जावे तो विनाश निश्चित है ॥१८॥

॥चौपाई॥

सास्त्र सुजल धोवत हूँ जात मालित हेतु सब ताके गात ।
जदपि अति उज्जल है दृष्टि तैऊ सृजति राज की सृष्टि ॥१६॥

शास्त्र रूपी जल से धोते हुये उस राज्य श्री के अङ्ग मलीन ही होते जाते हैं । यद्यपि राज्य श्री की दृष्टि अति उज्ज्वल है फिर भी प्रेम विषयों का सृजन करती है ॥१६॥

पुरुष प्रकृति की जाकी प्रीति हरति सुवचन चित्त की रीति ।
विषय मरिचीका नीकी जोति इन्द्रिय हरिन हारिनी होति ॥२०॥

जैसे तेज हवा वृक्षादि को तोड़ती है वैसे ही यह राज्य श्री ईश्वरी प्रीति को तोड़ती है और यह राज्य श्री इन्द्री रूप मृगों को विषय मृग-तृष्णा की ज्योति की ओर खींच जाती है ॥२०॥

गुरु के वचन अमल अनुकूल सुनत होत श्रवननि कौ मूल ।
मैन वलति तन वसन सुवेस भिदत नहीं जल ज्यौं उपदेस ॥२१॥

गुरु के विवेक युक्त और यथार्थ वचनो का सुनकर कानो को कष्ट होता है और गुरु का उपदेश चित्त में नहीं समाता जैसे मोम म डुबाये हुए सुन्दर और नवीन वस्त्रों पर पानी नहीं भिदता है ॥२१॥

मन्त्रिन के उपदेस न लेत प्रति सबदक ज्यो उत्तमन देत।
पहिले सुनति न जोर सुनन्ति मातौ करनी ज्यों गनन्ति ॥२२॥

राज्य श्री मित्रा का भी मत नहीं मानती है और प्रति शब्दक की भाति तुरन्त ही उत्तर देती है। पहले तो राजा किसी की सुनते ही नही और शोर करने पर सुनते भी है तो वे वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा मत्तहथिनी अपने पीलवान द्वारा सकेत की हुई हित की बात की ओर ध्यान नहीं देती ॥२२॥

॥दोहा॥

धर्म धीरता बिनयता सत्य सील आचार।
राजासिरी नगनै कछू वेद पुरान बिचार ॥२३॥

राज्यश्री धर्म, वीरता, नम्रता, सत्यशील आचार, वेद तथा पुराणों के विचारा का बिल्कुल ध्यान नहीं रखती ॥२३॥

॥चोपाई॥

सागर मे बहुकाल जु रही सीत बक्रुता ससि हैं लही।
सुर तरग चरननि हैं तात सीखी चचलता की बात ॥२४॥

चूँकि यह बहुत काल तक सागर मे रही अत: सगति क कारण सर्दी और चन्द्रमा से वक्रता ग्रहण करली। और उच्चैःश्रवा के चरणों से चञ्चलता सीखी है ॥२४॥

कालकूट हैं मोहन रीति मनिगन हैं अति निष्ठुर नीति।
मदिरा हैं मादकता लई मन्दर उपर भय भ्रम भई ॥२५॥

मोहनरीति समुद्र में रहने के कारण (बेसुध करने का ढग) को कालकूट से सीखा, मणिगण से प्रीति में भी निष्ठुरता का भाव सीखा, मदिरा

ने मादकता का गुण लिया और समुद्र के ऊपर में मदराचलको घूमतेदेख उसमें भ्रम निमग्नता सीखी ॥२५॥

॥दोहा॥

सन दई बहु जिह्वता बहुलोचनता चारु।
अपसरानि तें सीखियौं अपर पुरुष सचारु ॥२६॥

शेष नागें ने बाते बनाने के लिए अनेक जीभें और सभी ओर देखन की नेत्रों में शक्ति दी। इसने अप्सराओं से अन्य पुरुषों के पास जाने का दुर्गुण, सीखा ॥ ६॥

॥चौपाई॥

दृढ़ गुन बाधै हू बहु भांति का जानै कितहि भांति विलाइ।
गज घोटक भर कोटिन अरै खगलता खजन हूँ परै ॥२७॥

अनेक प्रकार से मजबूत रस्सी से बाधने नो कौन जाने यह किस ओर विलीन हो जाती है। चाहे करो हाथी घोड़े उसे रोकें और तलवार रूपी लता से चारों ओर पिंजड़ा बना दिया जाय ॥२७॥

अपनाइवि कीनें बहु भाति का जानै कित ह्वै भजि जाति
धर्म कोप पडित सुभ देस तजत और ज्यों कमल नरेस २८

और बहुत तरह है उससे प्रीति की जाय तो भी वह न जाने कहाँ होकर भाग जाती है। राज्य धर्म में पण्डित धन सम्पन्न और सुन्दर राजा को यह वैसे ही त्याग जाती है जैसे कमल, सुन्दर, करहाटक युक्त और सुन्दर स्थान में उत्पन्न कमल को भौंरे त्याग जाती है ॥२८॥

यद्यपि होय सुद्ध तरु सत्त। करै पिसाची ज्यौं उनमत्त॥
गुनवन्तनि आलिंगित नहीं। अपवित्रनि ज्यौं छाड़ति तहीं ॥२६॥

प्राणी पहले चाहे शुद्धमति वाला हो, लेकिन राज्य लक्ष्मी पाने पर वह उन्मत्त पिशाचिनी सा हो जाता है। वह गुणवानों से अपना सम्बध नहीं रखती, उन्हें इस प्रकार त्यागती है जिस प्रकार अपवित्र वस्तु त्यागी जाती है ॥२६॥

अहि ज्यौं नापति सूरति देखि । कराश्क ज्यौं बहु साधुनि लेखि ।
साधुनि सोदर जदपि आप । सबही हैं अति कटकु प्रताप ॥३०॥

जिस तरह कोई पुरुष मार्ग में पड़े हुए सर्प पर पैर न रखकर नाप जाता है उसी प्रकार से साधु पुरुषों का अपने मार्ग कण्टक के रूप में देखती है। यद्यपि स्वय साधुओं की बहिन है तो भी सब से अधिक इसका कटु प्रताप है ॥३०॥

यदपि पुरुषोत्तम की नारि । तदपि खलनि की तन मनहारि ॥
हितकारिनि की अति द्वेषनी । अहित जननि की अन्वेषिनी ॥३१॥

यद्यपि लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नी है तो भी इसका स्वाभाव खलों का है। हित करने वालो से शत्रुता करती है और अहित करने वालों को ढूंढ कर मिलती है ॥ ३१॥

मन मृग की सुवधिक की गीत । त्रिष बल्लिन की वारिद रीति ॥
मदपिसाचिका कैसी अली । मोह नींद की सज्जा भली ॥३२॥

मन रूपी मृग का मोहित करने के लिये राज्यलक्ष्मी बधिक की रागिनी है, विषय रूपी बेलि को बढ़ाने के लिये बादल के समान है। मदन रूपी पिशाचिका का सहायिका के रूप मे है और मोह रूपी निद्रा के लिये सुन्दर सेज है ॥३२॥

आसी विष दोषनि की दरी । गुन सत पुरुषनि कारन छुरी ॥
कलहसनि की मेघावली । कपट नृत्य साला सी भली ॥३३॥

दोषरूपी सर्पों के रहने के लिये राज्यश्री गुफा है। गुणरूपी सतपुरुषों के लिये दण्डरूपी साटी है। आराम रूपी हंसा के लिये मेघमाला है और कटक नट की नाट्यशाला है ॥३३॥

॥दोहा॥

काम बाम कर की किधौं कोमल कदलि सुवेष ।
धर्मधीर द्विजराज की मनो राहु की रेष ॥३४॥

किधौं यह राजलक्ष्मी कुटिलरूपा हाथी के सुन्दर कोमल कदली वृक्ष है या धीरज और धर्म रूपी चन्द्र को ग्रसने के लिए राहु की कला है ॥३४॥

॥ चौपाही ॥

मुखरोगनि ज्यों गौने रहैं । बार बहूय्य एक द्वै कहैं ॥
बन्धुवर्ग पहिचानति नहीं । मानौं सन्यपात है गही ॥३५॥

राजलक्ष्मी से प्रभावित राजा गूंगों की भांति सदा मौन रहता है। यदि किसी से कुछ कहने का अवसर आ गया तो एक दो बात मुँह से निकाल देता है और अपने बन्धुवर्ग को भी नहीं पहचानता है मानो उसे सन्निपात ने धर लिया हो ॥३५॥

महामन्त्र हू है तुन बोध । उमी काल अहि उर कर क्रोध ॥
खान विलास उदधि आतुरी । परदारा गमनै चातुरी ॥३६॥

महामंत्र से भी उनको चैतन्यता नहीं आती मानो कालसर्प के क्रोध ने डस लिया हो। खाने और विलास आतुर उचित के साक्षात उदाव हैं। पर स्त्री गमन को ही वे अपनी चतुरता समझते हैं ॥३६।

मृगया महँ सूरता बड़ी । बन्दी मुखानि चाई मौं चाढ़ि ॥
ज्यौं क्यौंहू चितवैं यह दया । बात कहैं तौ बरिनै मया ॥३७॥

शिकार को ही अपनी शूरता समझते हैं, जिसका प्रशंसा बदाजनों के मुख से चाव पूर्वक सुनते हैं। यदि किसी की ओर देख दें तो यही उसकी सबसे बड़ी दया है। यदि किसी से बात करलीं तो उस पर बड़ा भारी ममता करती है ॥३७॥

दरशन दीनौंई अति दान । हँसि हेरेंलौं बड़ौ सनमान ॥३८॥

राजा लोग यदि किसी को दर्शन दे दें तो यही बहुत बड़ा दान है और यदि किसी से हँसकर बोल दें तो उसका यही बहुत बड़ा सन्मान हो गया ॥३८॥

॥ दोहा ॥

जोई जन हित की कहै सोई परम अमित्र ॥

सुखवकुई मानियैं संतति मन्त्री मित्र ॥३६॥

राजा के हित की जो बात कहता है वही उसका शत्रु हो जाता है। चापलूस लोग ही सदा मंत्री और मित्र माने जाते हैं ॥३६॥

॥ चौपाई ॥

कहौं कहा लागि ताकी सेव। तुम सब जानत वीरसिंह देव ॥
जैसी सिव मूरति मानियै। तैसी राजसिरी जानियै ॥४०॥

हे वीर सिंह! तुम सब कुछ जानते हो। मैं राज्यलक्ष्मी के प्रभाव को कहा तक कहूँ। राज्यश्री की मूर्ति ठीक शिव के समान है॥४०॥

सावधान ह्वै सेवै जाहि। साचौ देहि परम पद ताहि ॥
जितनै नृप याके बस भये। स्वर्ग लोक पेलि पग नर्कहि गये ॥४१॥

सावधान हो जो लोग इस राज्यश्री की सेवा करते हैं, यह शंकर की भांति उन्हें परम पद देती है और जितने राजा असावधानता वश इसके वश में हो गये वे सभी स्वर्ग को छोड़कर नर्क को चले गए ॥४१॥

जैसे कैसे यह बस होय। मन क्रम वचन करौ नृप सोय ॥४२॥

हे राजन! यह जिस प्रकार से भी वश में हो, उसे ही मन क्रम वचन पूर्वक करिये ॥४२॥

इतिश्रीमत्सकल भूमण्डलखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे राजश्री वर्नन नाम नवविंशति प्रकाश ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

ऐसौ भूप जु भूतल कोय। ताकै यह कबहु न बस होय ॥
मन्त्री मित्र दोष उर धरै। मन्त्री मित्र जु मूरख करै ॥ १ ॥

इस प्रकार का यदि कोई राजा है तो यह उसके वश में कभी भी नहीं रहेगी। मंत्री और मित्रों के दोषों को हृदय में रखता हो। मंत्री और मित्र को मूर्ख समझाता हो ॥१॥

मन्त्री मित्र सभासद सुनौ। प्रोहित वैध जोतिषी गुनौ ॥
लेखक दूत स्वार प्रतिहार। सौंपै सुकृत जाहि भण्डार ॥ २ ॥

मन्त्री मित्र, सभासद, पुरोहित, वैद्य ज्योतिषी, लेखक दूत, प्रतिहार और भण्डारी ॥२॥

इतने लोगनि मूरख करै। सो राजा चिरु राज न करै॥
जाको मतो दुरयो नहिं रहै। खल प्रिय सुरापान सग्रहै॥ ३॥

यदि उपरोक्त लोगों को राजा मूर्ख समझता है जिसका विचार छिपा न रहता है अर्थात प्रकट हो जाता हो। दुष्ट और सुरा प्रियो का संग्रह करते हो तो वह बहुत समयतक राज्य नहीं कर सकता है ॥३॥

॥ कवित्त ॥

कामी वामी मूढ कोढ़ी क्रोधी कुल दोषा,
खलु कातर कृतघ्न मित्रद्रोही द्विजद्रोहियें।
कुपुरुष कि—पुरुष कलही काहली कूर,
कुबुधी कुमन्त्री कुल हीन कैसे रोहियें॥
पापी लोभी झूठा अध बावरो बधिर गुंग,
बौर अविवेकी हठो छली निरमोहियें।
सूम सर्वभक्षी देववादी जु कुवादी जर,
अपजसी ऐसों भूमि न सोहियें॥ ४॥

कामी, वामी, मूर्ख, कोढ़ी, क्रोधी, कुल द्वेषी, कातर कृतघ्नी, मित्र द्रोही, कलही, कुबुद्धी, कुमन्त्री, पापी लोभी झूठा, अन्धा, बहिरा, गूंगा, बौरा, अविवेकी छली सूम, सर्वभक्षी, देववादी, अपजसी भूमि पर शोभित नहीं होते हैं।

॥ श्लोक ॥

सारासार परीक्षक स्वामी भृत्यस्य दुर्लभ ।
अनुकूलशुचिर्दक्ष प्रभोर्भृत्योपि दुर्लभ ॥ ५ ॥

ऐसे राजा जो सार और असार दोनों चीजों का ज्ञाता हो, अपने भृत्यों के लिये दुर्लभ है, लेकिन ऐसा राजा स्वामी अनुकूल पवित्र और चतुर हो वह अभृत्य रहने पर भी दुर्लभ है ॥५॥

श्री राजोवाच चौपाई

कहिजै दान कृपाकरि चित्त। राजधर्म मोसौं जगमित्त ॥ ६ ॥

हे दान कृपा करके मुझे बताइये कि ससार मे राज्यधर्म क्या है ॥६॥

दानउवाच

सुनिये महाराज नृप धर्म। वाढ़े जिहि सम्पत्ति अरु शर्म ॥
राज चाहियै सांचौ सूर। सत्य सुसफल धर्म कौं मूर ॥ ७ ॥

हे धर्म राज ! सुनिये। जिससे सम्पत्ति और लज्जा बढ़े, राज्य सत्य और वीरता के ऊपर आधारित हो सब प्रकार के सत्य और धर्म का मूल हो ॥७॥

जौं सूरौं तौ सबें डराइ। साचै कौं सब जग पतियाइ ॥
साचौ सूरौ दाता होय। जग मैं सुजस जपै सब कोय ॥ ८ ॥

वीर को सभी डरते हैं और सत्यवान पर सभी विश्वास करते हैं। सत्यवान और वीर दाता भी होता है और ससार उसके सुयश का जाप करता है ॥८॥

सतति करै प्रजा प्रतिपाल। यहै धर्म नृप कौ सब काल ॥
जोई जन अधर्महिकरै। तबही नृपति दण्ड सचरै ॥ ९ ॥

सन्तान के समान प्रजा का पालन करे। सभी कालों में राजा का यही धर्म है। यदि कोई अधर्म करता है तो राजा उसे उसी समय दण्ड दे ॥९॥

सबकौ राज्य निग्रह करै। मातु पिता विप्रनि परिहरै ॥
जौं परिजा को दण्डहि करै। तौ वहु पाप राजसिर परै ॥१०॥

राजा सभी वस्तुओं का निग्रह करे, किन्तु माता पिता ब्राह्मणों का पालन करे। जो राजा प्रजा को दण्ड देता है उसके शिर पाप लगता है ॥१०॥

यथापराध दण्ड वौ देई। लै धन वस विदा करि देई ॥११॥

जिसका जैसा अपराध हो उसको उसीके अनुरूप दण्ड दे। और धन लेकर वश के लोगों को विदा करदे ॥११॥

श्लोक

स्वदत्ता परदत्ता वा ब्रह्मवृति हरेच्च यः।
षष्टि वर्ष सहस्त्राणि विष्टाया जायते कृमि. ॥१२॥

ब्रह्मवृत्ति जो ब्राह्मण को दी गयी हो या किसी ने स्वयं हो उसका हरण करने वाला मनुष्य हजारों वर्षों तक विष्ठ के कीडे:के रूप में भुगतता है ॥१२॥

॥चोपाई॥

कृतयुग दता ज्ञान यह धर्म। त्रेता इतो तपामम कर्म ॥
द्वापर पूजैं मुरपुर लेई। केवल कलि भू'दानाइ देई ॥१३॥

सतयुग में ज्ञानपूर्ण धर्म था। त्रेता में तपोमय कर्म था। द्वापर में पूजन द्वारा स्वर्ग मिलता था और कलियुग में केवल भूमिदान है ॥१३॥

दोई दान वड़े जग जान। अभै दान के पृथ्वीराज दान ॥
जाहा धर्म हीं राजा करै। यहीं धर्म मही अनुसरैं ॥१४॥

ससार मे दो ही दान सबसे बड़े है। एक तो अभयदान है और दूसरा पृथ्वी का दान है। जिस धर्म को राजा धारण करता है उसी धर्म का प्रजा अनुसरण करती है ॥१४॥

सुत मोदरहु न छाड़ै राज। ये जो सन्त करैं अरकाज ॥
जो जियजानौ अतिहित साज। औरहु जावे पोयें राज ॥१५॥

राज्य को पुत्र और भाई भी नहीं छोड़ते हैं, ये सभी अकाज करते हैं। अपने हृदय में सदैव हितका ही विचार करना चाहिये, जिससे सभी का पालन हो ॥१५॥

मन्त्री मित्र जोतिषी राज। कर्हैं विहूनति विनसे काज ॥१६॥

मन्त्री मित्र और ज्योतिषी कार्य का विनाश करने वाले होते हैं ॥१६॥

॥श्लोक॥

सुलभा पुरुषाः राजन् सततं प्रियवादिन ॥
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ताश्रोता च दुर्लभ. ॥१७॥

हे राजन्! सदैव प्रिय कहने वाले लोग सर्वत्र मिल जाते हैं किन्तु ऐसे वक्ता और श्रोता कठिनाई से मिलते हैं जो अप्रिय बात को सुन सके ॥१७॥

॥दोहा॥

राजा पत्नि त्रिय मन्त्रि सुत मित्र मुख्य करि होय।
राजा के सम देखिजें तो सन्तति सुख जोय ॥१८॥

राजा की पत्नी, मंत्री सुत मित्र और मुख्य लोगों को यदि राजा के समान समझे तो सन्तान के समान सुख वा अनुभव व्यक्ति कर सकता है ॥१८॥

॥चोपाई॥

राजधर्म अति परम प्रमान। स्वर्ग नर्कमय राजा जान॥
सावधान ह्वै कीजे राज। लहियै सुख ही स्वर्ग समाज॥१६॥

राज्यधर्म के आधार पर ही राजा स्वर्ग और नर्क का भागी होता है। सावधान होकर जो इसकी सेवा करता है वह स्वर्गिक समाज के आनन्द का अनुभव करता है॥१६॥

जो जग राज विकल ह्वै करै। जीवत मरत नर्कहि परै॥२०॥

यदि व्याकुल होकर ससार म कोई राज्य करता है तो वह जीवित नर्कगामी हो जाता है॥२०॥

॥दोहा॥

राजधर्म उपदेश में जो नृप होय अजान।
आदिराज तुम राज को जानत सबै निधान॥२१॥

राज्य धर्म के इन उपदेशों के सभी विधानो के आदि अन्त को आप जानते हैं॥२१॥

इतिश्रीमतसकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ समान वर्नन नाम दशविंशति प्रकाशः॥३०॥

॥अथ राजकर्म—चौपाई॥

उपजावै धन धर्म प्रकार। ताकी रच्छा करै अपार।
धन बहु भांति बढ़ावै राज। धन वाढ़ै सबरी की काज।
ताको खरचै धर्मनिमित्त। प्रतिदिन दीजै विप्र निमित्त ॥ १॥

अनेक प्रकार के जो धन धर्म को बढ़ाता है उसकी अनेक प्रकार से रक्षा करना है। राज्य में बढ़ा हुआ धन सभी के काम के लिये होता है। उस धन को धर्म के लिए खर्च करना चाहिये तथा ब्राह्मणों को प्रतिदिन देना चाहिये ॥ ॥

॥श्लोक॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं धर्मेण पालयेत्।
पालितं वर्द्धयेन्नित्यं वृद्धं पात्रे विनिर्क्षिपेत् ॥ २ ॥

नीति का वचन है कि जो अप्राप्त वस्तु है उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न किया जाय, यत्न से प्राप्त हुयी वस्तु की ठीक प्रकार से रक्षा की जाय तथा उसको अधिकाधिक बढ़ाया जाय और जब वह आवश्यकता से अधिक हो जाय तब किसी सुपात्र को दे दी जाय ॥२॥

अथ लेखक चौपाई

परम साधु कायथ जानिये। निरलोभी साचो मानिये।
जानै धर्माधर्म विचार। जानै अगनित नृप व्यौहार ॥३॥

कायस्थ को साधु समझना चाहिये और उसे सच्चा निर्लोभी मानना चाहिये। वह धर्म अधर्म तथा अगणित राजा के व्यवहारों को जानता है ॥३॥

सम मित्रहु जाके सम चित्त। साची कहै सुलेख कुमित्त ॥४॥

जिसके चित्त में सभी मित्र बराबर हैं। बुरे मित्रों की भी सच्ची बात ही कहता है ॥४॥

पसु पच्छि धन जन मागनौ। अतिक पाहुनौ जोधा धनौ।
देस नगर पुर घर जौ होय। लैहि सुआगम निर्गम दोय ॥५॥

पशु, पक्षी, धन, जन अतिथि, पाहुन, योद्धा आदि जो भी देश, नगर पुर घर म आते हैं उन सभी का आगमन निर्गम रूप मे लेता है । ५॥

पट पर लिखै कितामै पत्र । इतनी बात लिखै एकत्र ।
दुहुँ ओर के कुल के धर्म । अपनै देवा लेवा कर्म ।
अपनौ मात पिता कौ नाम । जिहि सम्बन्ध जहा कौ धाम ॥६॥

पट पर इतनी बात एक ही साथ लिखता है । दोनों ओर के कुलों के धर्म और लेने देने के कर्मों को लिखना है अपने माता पिता का नाम और वर का जहाँ जहाँ सम्बन्ध होता है ६

मोल दोगुनौ वर्न विधान । क्रय विक्रय ताकै परिवाण ।
नृपमुद्रा कै मुद्रित करै । सभासदन की भूडा धरै ॥७॥

दोनों वर्णों का विधान लिखता है । क्रय विक्रय तथा राजा जितनी भुजायें मुद्रित करता है उसे लिखता है । सभासदन की कार्यवाही लिखता है ॥७॥

॥ श्लोक ॥

यद्देवतानृपद्देवा स्वामिन परिचिन्हितान् ।
अभिलेख्यात्मनौ वश्यानात्मान च महीपते ॥८॥

॥ चौपाई ॥

सावकास जहँ सोरैं लोग । जह जो जैसो पावे योग ।
राजलोक रक्षा को काम । सुभ वाटिका जलासय धाम ॥९॥

जहाँ पर जैसा योग होता है वहा अवकाश पाकर सभी लोग बैठते हैं । राज्य का कर्म रक्षा करना है ॥९॥

॥ श्लोक ॥

रम्यं प्रशास्यभाजीन्य जांगल्यं देशाभाविपेत् ।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकानात्मगुप्तये ॥१०॥

॥चौपाई ॥

शस्त्र सस्त्र बहु जन्त्र विधान । अन्नपान रस पट तन त्रान ।
कन्दमूल दल औपद जाल । सहित दान तृशा बांधो ताल ॥११॥

अस्त्र शस्त्र अनेक यन्त्रों का विधान, अन्न पान, वस्त्र कन्दमूल औषधि के सहित दान की ताल बाधी ॥११॥

ठौर ठौर अधिकारी लोग । राखै नरपति जाके लोग ।
सूरे सुचि अरु होय अनन्य । प्रभु की भक्ति गहै मन मन्य ॥१२॥

राजा ने स्थान स्थान पर अधिकारियों की नियुक्ति कर रखी है, जो कि वीर है तथा स्वामी का भक्ति का मन में धारण कर रखा है ॥१२॥

॥ श्लोक ॥

प्राज्ञात्वमुपधासुद्धिरप्रमादोभियुक्तता ।
कार्य्यव्यसनताव प्रस्वामी भक्तश्च योग्यता ॥१३॥

स्वामि भक्त ऐसा होना चाहिये जो बुद्धिमान हो पवित्र हो, अप्रमादी और कार्यपटु हो ॥ १३ ॥

॥ चौपाई ॥

वहाँ बैठि वहु साधै देस । जीति करै सब विविध :नरेस ।
देस देस राजनि की जीति । हय गय धन लै आवहि कीर्ति ॥१४॥

वहाँ पर बैठकर राजा साधना करता है और अनेक नरेशों को जीतता है । देश देश के राजाओं को जीतकर घोड़े हाथी तथा उनकी कीर्ति को ले आता है ॥१४॥

कीरति पठवै सागर पार । धन मतोपै विप्र अपार ।
विप्रनि दै उबरै जो नित्त । मोदर सुत पावे अरु मित्त ॥१५॥

कीर्ति का सागर के पार भेज देता है और धनदार ब्राह्मण को सन्तुष्ट करता है। ब्राह्मणों को धन देने से जो बचता है उसे भाई और पुत्रों को दिया जाता है ॥१५॥

॥ श्लोक ॥

नातः परतरो धर्मो नृपाना यद्रणार्जितम् ।
विप्रेभ्यो दीयते द्रव्य दीनेभ्यश्चभयन्तथा ॥१६॥

राजा के लिये इससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं कि विजय से सम्पत्ति प्राप्त करे, ब्राह्मण को द्रव्य दान दे और दीनों को अभयदान दे ॥१६॥

॥ चौपाई ॥

जे भट जूझत है रनरुद्र । पार होत ससार समुद्र ।
मरत आपने शस्त्रनि छेदि । जात ते सूरज मण्डल भेदि ॥१७॥

जो योद्धा युद्ध में मरते हैं, वे ससार रूपी समुद्र को पार कर जाते हैं। जो अपने अस्त्रों द्वारा छेदन करके मरते हैं वे सूर्य मण्डल को भेदकर स्वर्ग को जाते हैं ॥१७॥

जे जूझत रनभट सुख पाइ । अपनै राजा की पहुँचाई ।
पद पद यग्यनि की फल होय । लोक सुद्ध सुनि तिनके दोय ॥१८॥

जो लोग स्वेच्छा से युद्ध में राजा की रक्षा करते हुए मरते हैं, उन्हें यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है और उनके गुणों को सुनने से ससार भी पवित्र हो जाता है ॥१८॥

॥ श्लोक ॥

यत्र निकृन्तु तल्यानि भग्नेष्वपिनिवर्तिनी ।
राजसु कृतुमादन्ते इवाना त्रिचयैपिता ॥१९॥
या सल्यरोप्यकूपान वाहकस्य दयस्य च ।
तानद्वर्ष वसेत्स्वर्गे गृहपृष्टे दता नर. ॥२०॥

घर में कोई मनुष्य धन सम्मान नौकर और घोड़े आदि के कारण जितना सुखपूर्वक रहता है वही मनुष्य मर जाने पर स्वर्ग प्राप्ति के बाद उतना ही हर्ष प्राप्त करता है ॥२०॥

॥ चौपाई॥

भजे जा तिनकी नहिं हनै। डारि तन्यार जे हाहा भनै।
छूटे बार जे कांपत गात। पाइ पयादे तृननि चबात ॥२१॥

भगे हुए लोगों को, हथियार डाल देने वाले लोगों को नहीं मारते हैं बार छूटने पर शरीर काँपने लगता है। पैदल मिलने पर तृण चबाते हैं ॥२१॥

॥ श्लोक ॥

तथाह् चादिना क्लार निरहेव प्रसद्धवम् ।
नहन्याद्धिनिवर्त्तं च युद्धप्रेक्षकादिकं ॥२२॥

सर्वस्व गया देने वाला, अविवादी, कवि, निर्मोही, युद्ध का देखने वाले मनुष्यों को न मारना चाहिये ॥२२॥

अवध्या ब्राह्मण बालः स्त्री तपस्वी च रोगिण ।
दूत इत्व तु नरवेपु मा निशोत्साचितैः सह ॥२३॥

ब्राह्मण, [illegible] स्त्री, तपस्वी, रोगी अवध्य है। दूत को मारनेवाले का सीधा नर्क होता है और मंत्रियों के साथ मैत्रा का व्यवहार नहीं होना चाहिए ॥२३॥

॥ चौपाई ॥

चारि दूत पठवै दस दिसा। आवे दूतनि पूछै निसा।
चार गूढ़ है गहु रुप। दूत मुहीनि भाँति के भूप ॥२४॥

दूतों को [illegible] न भेजना चाहिये और उनके [illegible] आने पर कुशल पूछनी चाहिये। दूतों की अवस्था बड़ी हो गूढ़ हैं दूत तीन प्रकार के हैं ॥२४

॥ दोहा ॥

स्वानिष्टित एकै नहें पर निष्टिन हैं और।
सदिग्दार्थ है तीसरे सुनौ राज सिरमौर ॥२५॥

हे राजन्! स्वनिष्टि, परनिष्टि तथा सदिग्धार्थ, ये तीन प्रकार के दूत होते हैं ॥२५॥

॥ चौपाई ॥

राउनि पै जे आवत जात । दूत प्रगट कहिवे की बात ।
पत्री कर पटु परम प्रशस्त । तिनसौ कहि जतु शासन अस्त ॥२६॥

राजाओं के पास जो आते रहते हैं उन दूतों से बात कहनी चाहिये । हाथ में पत्रों के लेने म चतुर हैं, उनसे शासन की बात कहनी चाहिये ॥२६॥

राज काज अरु जनपद काज । छटी बढी जिनकौ सब लाज ।
देस काल कौ उचित जु होय । तैसी कहै ते निरले कोय ॥२७॥

राज्य और जनपद के कार्यों का घटी बढ़ी की जिनको लाज है । देश काल के अनुसार बात कहने वाले कम ही होते हैं ॥२७॥

हारत हरत न सका गहैं । निष्ठितार्थ सब तिन सों कहैं ।
केवल बात जु कोई कहै । सदष्टार्थ सो पद लहै ॥२८॥

हारने पर भी जो शकित नहीं होते हैं उन्हें सभी निष्ठार्थ कहते हैं । केवल जो साधारण बात कहते हैं, उन्हें सदष्टार्थ कहते हैं ॥२८॥

॥ दोहा ॥

राजा तिनकी बात सब सुनौ अकलौ जाय ।
आपु हथ्यारी निरहथौ एकै दूत बुलाय ॥२६॥

राजा उनकी बात को अकेले जाकर सुनता है । स्वय अस्त्र धारण किये रहता है और दूतों को नि शस्त्र बुलाता है ॥२६।

॥ श्लोक ॥

सर्वैः व्याल्यन श्रवण मन्त्रैर्रेशमनि शस्त्रभृत् ।
रहस्यख्यापन चैव प्रणाधीना वेष्ठितम् ॥३०॥

॥ चौपाई ॥

थोडी बडी बात जौ होय देखे बिन नृप करे न सोय ।
उपज नकवहु पावै व्याधि । कलि गुननित बाँधै आसाधि ॥३१॥

छुटी बड़ी चाहे जैसी बात हो, उसे बिना राजा को देखे हुए नहीं करता है। ऐसी अवस्था मे कोई व्याधि उत्पन्न नहीं होने पाती है कलिकाल में भी अस धि को अपने गुणों से बाँध लेती है ॥३१॥

ऐसे वैद्य जोतिषीराज। राखहु निकट आपनै काज।
हितकारिन की कपट न करै। अरिकुल प्रति जु क्रोध सचरै ॥३२॥

ऐसे वैद्य और ज्योतिषियों को अपने पास रखा। हित करने वालों से कपट नहीं करता है और शत्रुओं के प्रति क्रोध को नहीं जगाता है॥३२॥

भली बुरी विप्रनि की सहै। पुर ज्यौं प्रजा पालि सुख लहै ॥३३॥

ब्राह्मणों की भली बुरी सभी बातों का सहन करता है और प्रजा का पालन परिवार की तरह करता है ॥३३॥

॥ श्लोक ॥

ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिह्म क्रोधनोऽरिषु।
स्याद्राजा भृत्यवर्गे वै प्रजासु च पिता यथा ॥३४॥

राजा को ब्राम्हणों में क्षमा, परिजनों में स्नेह, क्रोधियों के साथ मंदी और प्रजा के साथ पिता के समान व्यवहार करने वाला होना चाहिए।३४।

॥ चौपाई ॥

साहसीनि: त रक्षा करै। चोर यार वटपारनि हरै।
अन्याई ठग निवट निवारि। सब तै राखहिं प्रजा विचारी॥३५॥

आमीर जनों की रक्षा करता है और चोर तथा बदमाशों को नष्ट करता है। अन्यायी तथा ठगों को दूर करता है। सभी प्रकार से प्रजा की रक्षा करता है ॥३५॥

॥ श्लोक ॥

चारतस्कर दुर्वृत्तैस्तथैव सचिवादिभि।
पीड्यमाना. प्रजा रक्षेत् न्यायस्थैश्च विशेषत. ॥३६॥

चोर, तस्कर, दुर्वृत्त और सचिवों से पीडित प्रजा की रक्षा करनी चाहिये और कायस्थों की विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिये ॥३६॥

॥चौपाई॥

जो न प्रजा की रक्षा होय। हो जनपद में बसै न कोय।
उजर भये काप घटि जाई। बाढ़ै पाप धर्म मिटि जाई ॥३७॥

यदि जनपद म प्रजा की रक्षा न होगी तो वहाँ पर कोई भी न रहेगा। जनपद उजड़ने पर कोष मे कमी आ जायेगी। अधर्म बढ़ाने पर धर्म नष्ट हो जावेगा ॥३७॥

॥ श्लोक ॥

अरक्षमाणः कुर्वन्ति यत्किञ्चित् किल्बिषं प्रजा।
तस्मान्नृपतयोऽधर्मं सम्प्रगृह्णन्ति सत्वरम् ॥३८॥

अरक्षित प्रजा जो कुछ भी पाप करती है उसका जो अधर्म है उसको राजा तत्काल ही अधर्म प्राप्त करता है ॥३८॥

॥चौपाई॥

अपने अधिकारिनि को राज। चारण है समुझै सब काज।
साधु होय तो पदवी देई। जानि असाधु दण्ड को देई ॥३९॥

अपने अधिकारियों के राज्य को चारण के समान समझना चाहिये साधुओं को पदवी से विभूषित करना चाहिये और असाधुओं को दण्ड देना चाहिये ॥३९॥

॥ श्लोक ॥

चारैर्ज्ञात्वा विचोऽठत्व साधून्सम्मानयोद्भुः।
सज्जनान् रक्षयित्वा वै विपरीतांश्च यातयेत् ॥४०॥

राजा को चाहिये कि वह चोरों का निग्रह कराये, साधुओं को सम्मानित कराये, सज्जनों की रक्षा करे, असज्जन तथा साधुओं का दमन करे ॥४०॥

प्रजा पाप तैं राजा जाए। राज जाए तो प्रजा नसाय।
दुहूँ बात राजहि घटि परै। तातैं धर्मदण्ड को धरै ॥४१॥

प्रजा के पाप से राजा का विनाश हो जाता है। दोनो ही अवस्थाओं में राजा को हानि होती है। इसीलिए वह धर्मदण्ड को धारण करता है ॥४१॥

॥ श्लोक ॥

प्रजापीडनसन्तापसमुद्भूतो हुताशनः।
राज्यं श्रियं कुलं प्राणानदग्ध्वा न निवर्तते ॥४२॥

प्रजा के पीडन और सताप से उठी हुई जो अग्नि होती है वह राजा के राज्य, लक्ष्मी कुल और स्वयं उस के प्राणों का विनष्ट करके ही शान्त होती है ॥४२॥

॥ चौपाई ॥

तातैं राजा धर्महि करै। बिन डर प्रजा धर्म नहिं धरै।
जो राजा अति साचौ होय। ताके वस्य होय सब कोय ॥४३॥

इसीलिए राजा धर्म को धारण करता है और प्रजा बिना भय धर्म को नहीं धारण करती। यदि राजा सच्चा है तो सभी उसके वश हो जाते हैं ॥४३॥

जिहि पुर नगर देस ब्यौहार। राखै तहँ तेही आचार।
परजोधा परजन परदेस। होय वस्य बिन किये कलेस ॥४४॥

जिस ग्राम नगर, देश में व्यवहार होता है वहाँ पर आचार रखता है, ऐसे राजा के वश में दूसरों का योद्धा, दूसरों के लोग तथा दूसरे देश भी बिना कष्ट के ही वश में हो जाते है ॥४४॥

॥ श्लोक ॥

यस्मिन् देशे य आचारो व्यवहारो कुलास्थितः।
तथैव परिपाल्योऽसौ राज्ञा। स्वहितमिच्छता ॥४५॥

जिस देश का जैसा आचार व्यवहार और कुलशील है अपना कल्याण चाहने वाले राजा को उसी प्रकार पालन करना चाहिये ॥४५॥

॥ चौपाई ॥

मन्त्र मूल कहिजै नरनाथ। जैसी है राजनि की गाथ।
मन्त्रहि राखै रहै अभेद। कर्म फलोदय होय अखेद ॥४६॥

हे नरनाथ ! उस मूल मन्त्र को कहिये जो राजाओं के साथ अनुरूप है। मन्त्र की रक्षा करे और अभेद रहे, ऐसे कर्म का फल सुन्दर होता है ॥४६॥

॥ श्लोक ॥

मन्त्रमूलो मतो राजा तन्त्रों मन्त्र सुरक्षित ।
कुर्य्याधलेन तार्द्वद्वन् कर्मनामाघलोदयात ॥४७॥

राजा यदि विज्ञ मन्त्रियों से सुरक्षित है, तभी तक उसकी गुप्त मन्त्रणायें सुरक्षित हैं। इसलिए कर्मनाम और फल की परीक्षा करने अच्छे विद्वानों को नियुक्त करना चाहिये ॥४७॥

॥चौपाई॥

जाके दल बल बहुत प्रकार। दुर्ग कोस बल धर्म अपार।
मित्र मन्त्र मन्त्री बल होय। बाहु दण्ड बल राजा सोय ॥४८॥

जिसके पास अत्यधिक सेना, दुर्ग, कोष धर्म और बलशाली मित्र मन्त्री हो, वह राजा बाहु बली होता है ॥४८॥

॥ श्लोक ॥

वाम्यमात्यौ जनो दुर्ग कोसो दण्डस्तथैवच ।
मित्रादार्येता प्रकृतयां राज्य सप्तागमुच्यतै ॥४६॥

स्वामी, अमात्य, दुर्ग कोप, दण्ड, प्रजा और मित्र ये राज्य के सात अग है ॥४६॥

॥ चौपाई ॥

दण्डमान जो जानै राज। तौ सब होय राज के काज।
धूत ढीठ सब प्रिय परदार। परहिंसा पर द्रव्यव्यवहार॥
झूठे ठग बटपार अनेक। तिनकौं दण्ड देय सब सेक ॥५०॥

यदि राज्य को दण्डमान समझते रहें, तो राज्य के सभी कार्य हो जाते हैं। धूर्त, धृष्ठ, परदारा रत, दूसरों जीवों की हिंसा करने वाले, दूसरों के द्रव्य को हरने वाले, ठग बटपार आदि को भी दण्ड देता है ॥५०॥

॥ श्लोक ॥

तद्विद्वांश्च नृपो दण्ड दुर्वृत्तेषु निपातयेत् ।
धर्मो दि दण्डरुपेन ब्राह्मण निर्मित पुरा ॥५१॥

दुर्वृत्त वाले पुरुषों को राजा दण्डित करे लेकिन मनुष्य के लिये धर्म ही उसका सनातन दण्ड है ॥५१॥

॥ चौपाई ॥

यथापराध दण्ड को धरै । वेद पुरान मन्त्र उद्धरै ।
धर्मदण्ड गति दिव्य सपर्क । होय बहुत अधरम हैं नर्क ॥५२॥

वेद मन्त्रों का उद्धरण देता हुआ यथा योग्य दण्ड देता है । अत्यधिक अधर्म होने से नर्क मिलता है ॥५२॥

॥ श्लोक ॥

अधर्मदण्डो ह्यस्वर्ग्यो लोक कीर्ति विनाशकः ।
सम्यक दण्डश्च राज्ञां वै स्वर्ग कीर्तिकरावह ॥५३॥

राजा के लिये अधर्म दण्ड तर्क देने वाला और लोक कीर्ति का नाश करने वाला होता है । इसी प्रकार समुचित दण्ड राजा की कीर्ति का प्रसारक और उसको स्वर्ग देने वाला होता है ॥५३॥

॥ चौपाई ॥

राजा सबकौ दण्डहिं करै । जो जन पाई कुमैड़ धरै ॥
नातो गोगो कछु नहि गनै । प्रीतम सगो न छोड़त बनै ॥५४॥

जो भी कुमार्ग में पैर रखता है राज उसको दण्ति करता है । रिश्ते नाते प्रियतम आदि का कुछ भी ध्यान न

॥ श्लोक ॥

आर्य भ्राता सुतो वापि श्वसुरो मातुलोपि वा ।
धर्माच्चलितः कोपि राजा दण्ड्यो न संसय ॥५५॥

भाई, पुत्र, ससुर कोई भी धर्म भ्रष्ट स्वजन हो, राजा को चाहिये कि वह उसको दण्डित करे ॥५५॥

॥ चौपाई ॥

ब्राह्मण माता पिता परिहरै । गुरु जन कौ नृप दण्ड न धरै ।
रोगी दीन अनाथ जु होय । अतिथिहि राजा दूनै न कोय ॥५६॥

ब्राह्मण माता पिता को राजा दण्ड नहीं देता है । रोगी दीन, अनाथ और अतिथि को राजा नहीं मारता है ॥५६॥

नै जानि परै अपराधु । वृत्ति न दूरै निकारै साधु ।

यदि इनके अपराध ज्ञात होवें हैं तो उनकी वृत्ति को न छीन कर निकाल देता है ॥५७॥

॥ श्लोक ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्य्यमजानतः ।
उत्पथप्रति पन्नस्य परित्यागो विधीयरे ॥५८॥

अच्छे और बुरे कार्य को न जानने वाला कुमार्ग को जाने वाला गुरु भी परि त्याग करने योग्य है ॥५८॥

॥ चौपाई ॥

दण्ड करै द्वविधि नृप धीर । कै धन हरै कि दण्ड शरीर ।
चारि भांति रिषि एकनि कह्यौ । सो जग मैं राजनि सगृह्यौ॥५६॥

राजा दो प्रकार से दण्ड देता है—या तो धन का अपहरण कर लेता है अथवा शारीरिक दण्ड देता है । एक ऋषि ने चार प्रकार से कहा है उसे राजाओं ने सग्रह कर लिया है ॥५६॥

॥ श्लोक ॥

धिग्दण्ड स्त्वथाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा ।
क्रमसो व्यवहर्त्तव्यो पराधानुसारत ॥६०॥

धिग्दण्ड, वागदण्ड, धनदण्ड और वधस्तथदण्ड इनको अपराध के अनुसार बरतना चाहिये ॥६०॥

॥ दोहा ॥

धन के दण्डऽपराव विधि रिपिन कहे मुनि भूप ।
सबकी केसवदास वध दण क० दस रूप ॥६

धन के तथा अन्य दण्डों को ऋषियों ने दस प्रकार से कहा है ॥६१॥

॥ चौपाई ॥

धिग्दण्ड वचन दण्ड सबेध। राजलोक आगमति निषेध।
चौथे काढ़ि लेय अधिकार। पाचे दीजै देसनिकार ॥६२॥

धिग्दण्ड, वचन दण्ड, राज्य आगमन, निषेध दण्ड, अधिकार छीन लेना, देश स निकाल देना, ये पाच दण्ड हैं ॥६२॥

छठे रोकि राखै अवलोकि। सातौं बेरि देई नहि मोकि।
आठौ ताड नटाम तनु भग। दसै जीव कौ करै अनग॥
दसौं दन्ड यध के सुविवेक। जानहु धन के दन्ड अनेक ॥६३॥

छठे देखने से रोक रखे, सातवें मोकि न दे, आठवें ताड़, नवें शरीर भग और दसवें प्राण दण्ड ॥६३॥

॥श्लोक॥

योन दन्डयते दन्डयात् मान्यानथ न पूजयेत्।
अशुभं जायते तस्य पातकै. सतु लिप्यते ॥६४॥

॥ चौपाई ॥

मचला दगाबाज बहु: भाति। चेरे चेरी सेवक जाति॥
भिक्षुक रिनियाँ तावीदार। अपराधी अधिकारी ज्वार ॥६५॥
जे मुख मोदर सिप्य अपार प्रजा चोर अरु रत परदार।
ये सिख देत मरै जो लाज। हत्या तिनकी नाहि न राज ॥६६॥

अनेक प्रकार के मचला, दगाबाज, चोर, दासी, सेवक, भिक्षुक, ऋणी, अपराधी, जुवारी, दूसरे की स्त्री में रत, इनको मारने की हत्या राज्य को नहीं होती है ॥६५,६६॥

॥ श्लोक ॥

शिष्यं भार्य्यां सुतं स्त्रीच योगिन ग्रामकूटकम्।
ऋणयुक्त सप्तव च न हत्या दात्मपाहिनम् ॥६७॥

शिष्य, पत्नी, पुत्र, स्त्री, योगी ग्रामकूटक, ऋणी और आत्म पातकी को कम बध नहीं करना चाहिये ॥६७॥

॥ चौपाई ॥

इहि विधि रच्छै राजा देस । अपनै मेंड़ै है जु नरेस ।
वैरी करि माने वह देस । माने ताकहँ शत्रु नरेस ॥६८॥

इस प्रकार से जो राज्य की रक्षा करता है और यदि कोई राजा अपनी सीमा पर आक्रमण करता है, तो उसे राजा शत्रु करके मानता है ॥६८॥

ताकै पैले जो कुधा जु भूप । मानै ताहि मित्र कौ रूप ।
ताकै परै जु भूपति आहि । उदासीन कै मानै ताहि ॥६६॥

यदि राजा, उसे कुधा पैले तो उसे मित्र के रूप मे मानना चाहिये । यदि उसके भूपति पैरों पर पड़े तो उसे उदासीन मानना चाहिये ॥६६॥

॥ श्लोक ॥

अरिमित्र मुदासीनोनन्तरस्ततत्परो पर ।
क्रमशो मण्डल मेधं सामादिभिरुपक्रमै ॥७०॥

शत्रु, मित्र, उदासीन, इनको सामाजिक भेदों से क्रमशः दण्डित करना चाहिये ॥७०॥

॥ चौपाई ॥

वहुरै शत्रु त्रिविधि जानियै । पीड़ितु कसनीपु मानियै ।
छेदतु वय तीसरो वखाणि । सवही कौ समुझौ परिवाण ॥७१॥

शत्रु तीन प्रकार के होते हैं—पीड़ितु, कसनीपु तथा वाणों से मारने वाला । उन सभी को परिवाण समझना चाहिये ॥७१॥

मन्त्रहीन बलहीनहि मानि । अति पीड़ित सन्तत जियजानि ।
प्रबल मन्त्र वहु सैना साथ । ताकौ कर्षन कीजै हाथ ॥७२॥

पीड़ित को सभी लोग मन्त्रहीन बलहीन मानते हैं । जिसके साथ में बड़ी सेना हो और मन्त्र बल भी हो उसके हाथ का कर्षण करना चाहिये ॥७२॥

लघु सैना वहु वहु विलसति भूप । दुर्गहीन वहु होय विरूप ।
मन्त्री विरत मन्त्र बलहीन । गज वाजी अति दुर्बल दीन ॥७३॥

छोटी सेना हो और राजा विलासी हो, दुर्गहीन और विरूप हो और मन्त्री विरक्त तथा मंत्रहीन हो, हाथी घोड़े दुबले हो ।।७३।।

कोस हीन जाको कुलभेव । ताको होय बेगि कुलछेव ।
मित्रहि बहुव भाति दूजान । वर्द्ध अवर्द्धनीय मन मान ।।७४।।

जिसका कुल भेव कोषहीन हो, उसका कुल शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है। अनेक प्रकार से मित्र दूजान हो, उनको मन में वर्द्ध और अवर्द्धनीय मानना चाहिये ।।७४।।

वर्द्धनीय धन बल विन होय। करपनीय बल धन होय ।।७५।।

वर्द्धनीय धन बल हीन होता है और कर्षनीय धनबल युत होता है ।।७५।।

।। श्लोक ।।

तुल्यचारं धनेतुल्य मर्मज्ञं च प्रतारकम् ।
अर्द्धराज्यहर भृत्यं यो न दन्यात् से दन्यते ।।७६।।

समान आचरण करने वाला समान धनी मर्मज्ञ, प्रतारक और आधे राज्य को जला टालने वाले भृत्य को जो स्वामी नहीं मारता वह स्वामी विनष्ट हो जाता है ।।७६।।

।। चौपाई ।।

चौहूँ दिशि के गुननि गनाई। ते रह नृप मण्डल महिपाई।
मुक्त जो करै समादि उपाय। वाके निकट दुख नहिं जाइ ।।७७।।

चारों दिशाओं के गुण जो गिनाये गए हैं वे राजा के पास होने चाहिये। यदि प्रयत्न पूर्वक राजा इनको अपने पास रखे तो उसके पास दुख नहीं जा सकता है ।।७७।।

करै मित्र सौं सम सयोग । उदासीन सौं दान प्रयोग ।
सत्रु सैन मै प्रगटै भेव । करै दण्ड कै अटिकुल देव ।।७८।।

मित्र के साथ समानता का व्यवहार करे। उदासीन के साथ दान का प्रयोग करे। शत्रु सेना के साथ भेद को प्रकट करे। इस प्रकार से शत्रु कुल का विनाश करे ।।७८।।

॥ श्लोक ॥

सन्धिं च विग्रहं ज्ञानमाश्रय सश्रय तथा ।
द्वैधीभ्य भावो गुणानेतान्यथावन्तानुपाश्रयेत् ॥७८॥

सधि, विग्रह, ज्ञान, आश्रय, समप्रश्रय और वेधिभाव का आचरण राजा को समयानुसार करना चाहिये ॥७६॥

॥ चौपाई ॥

मित्र भूप सौं सन्धिहिं सचै । उदासीन सों आसन रचै ।
आपतु सबही भाइनि चढ़ै । दल कल शत्रु भूप पर चढ़ै ॥८०॥

मित्र और राजा से सधि करे । उदासीन के साथ आसन रखे । अपने आप सब भावों से युक्त होकर दलबल सहित राजा के ऊपर चढ़ाई करे ॥८०॥

रिपु का भूमि न अनभयमानि । कोसहीन वाहन कृष जानि ।
निज जनपद की रक्षा करै । दिसाति हानि सन्धि सचरै ॥८१॥

शत्रु भूमि को कभी भी भय रहित नहीं मानना चाहिये । कोष हीन वाहन को कमजोर समझना चाहिये । अपने जनपद की रक्षा करना चाहिये और जब दिशा की हानि दिखाई पड़े तब सधि कर लेना चाहिये ॥८१॥

सुखही आवे लै हितसाल । परपुर गवन करै तब नाथ ॥८८॥

जब सुख प्राप्त होता हो तब दूसरे के पुर में जाना चाहिये ॥८२॥

॥ श्लोक ॥

यदा सत्वगुणा चित्त पराराष्ट्र तदा व्रजेत् ।
परस्वहीन आत्मा च ह्युरानपूरुष ॥८३॥

अत करण जिस समय सत्व गुणों से युक्त रहे उसी समय दूसरे राष्ट्रों पर युद्ध करने के लिये प्रस्थान करना चाहिये । वही विजेता पुरुष कहा जाता है जिसकी आत्मा शत्रुओं से भयभीत नहीं रहती है ॥८३॥

॥ चौपाई ॥

अपनी फ़ौज करै दृमेज। युद्ध रचत है नर नर देव ।
एक कहत ऐसो रिषि राज। द्वैधि क्याइहि सिगरै साज ॥८४॥

अपनी सेना को दृमेज में कर देदैव युद्ध की रचना करते हैं। एक ऋषिराज ऐसा कहते हैं कि सभी साजों को द्वैधि म कर दे ॥८४॥

होय जो बड़ो एक उमराइ। ताको विसरू करावे राउ ।
कटि बहु विभरन शत्रु के जाई। युद्ध काल भागे भहराई ॥८५॥

यदि कोई उमराव सबसे बड़ा हो तो उससा विग्रह करना चाहिये। शत्रु को अनेक प्रकार से भुलाना चाहिये। इससे युद्ध काल में सेना भाग जावेगी ॥८५॥

कीनै सब अदृष्टि केय होई। यह गुण आरस करौ न कोई ।
यद्यपि रामचन्द्र जगनाथ। तिनहूँ उद्यम कीनौ हाथ ॥८६॥

सभी वस्तुओं को अदृष्ट करने में आलस नहीं करना चाहिये। ससार के स्वामी रामचंद्र ने भी अपने हाथ से उद्यम किया था। ८६॥

लै हरि सग सुरासुर रुद्र। लक्ष्मी पाई मथै समुद्र ।
तातै राजा उद्यम करे। उद्यम किये काम तरु फरै ॥८७॥

विष्णु ने देवताओं, राक्षसों और रुद्र को लेकर समुद्र मथन किया और फलस्वरूप लक्ष्मी को प्राप्त किया। इससे राजा को उद्यम करना चाहिये। इससे ही काम वृक्ष फलेगा ॥८७॥

॥ श्लोक ॥

दैवमिति का पुरुषा वदन्ति ।
दैव निहत्य कुरु पौरुष मात्मशक्त्या
यत्न कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोष ॥८८॥

उद्यमी सिंह पुरुष लक्ष्मी को प्राप्त करता है, ऐसा तो का पुरुष कहते हैं कि लक्ष्मी भाग्य से मिलती है। भाग्य को दूर फेंक कर आत्म शक्ति के

अनुसार पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थ करने पर यदि कार्य सिद्ध नहीं होता तो इसमें दोष नहीं है ॥८८॥

॥ चौपाई ॥

सत्रु ही जीतैं जग अस कहै। भूमि हिरण्य मित्र को लहै।
मित्रहि लहै और भू लहैं। ताते साचहि कौ सग्रहै ॥८७॥

शत्रु का जीतने पर सारा संसार वश का गान करता है। भूमि सोने पर मित्र को पकड़े। मित्र को पकड़ने से और भूमि प्राप्त हो जावेगी। इसलिये सत्य का संग्रह करना चाहिये ॥८९॥

इहि विधि चारयौ दिश कौ लहै। तासौं जगत बड़ो नृप कहै ॥९०॥

इस प्रकार से चारों दिशाओं को देखे, उसे लोग बड़ा राजा कहते हैं ॥९०॥

जौ अति सत्रु करै अति सेव। ताकी सेव तजे नरदेव।
ताकी प्रीति बुराई होई। मारै भलो कहै सब कोई ॥९१॥

यदि शत्रु सेवा करता है तो भी नरदेव उसकी सेवा को छोड़ देते हैं। उसका प्रीति बुराई का कारण होता है। उसको मारने पर ही सब लोग भला कहते हैं ॥९१॥

॥ श्लोक ॥

शत्रौ स्वत्यन्तमैत्री च स्वोकमैत्रीं विवर्जयेत्।
अर्थयेत्तद्विराधने प्रतिष्ठा तस्य घातने ॥९२॥

शत्रुओं के साथ अत्यन्त मैत्री और क्षणिक मैत्री नहीं करनी चाहिये। उसके विरोध में अहित और उसकी प्रतिष्ठा में हानि उठानी पड़ती है ॥९२॥

॥ चौपाई ॥

अविचारी दण्डत सचरै। मन्त्र न कहूँ प्रकाशित करै।
लोभी निधन न सौंपिये जीति। अपकारिनि सौं करै न प्रीति।
लोभ मोह मद जो करै। जय तय करता कौं घटि परै ॥९३॥

विचारी को दण्डित करना चाहिये। अपने मत्र को कभी भी प्रकट नहीं करना चाहिये। विजय में प्राप्त धन लोभी और निर्धन को नहीं सौंपना चाहिये। अपकारियों से कभी प्रीति नहीं करनी चाहिये। यदि मोह और मद से कोई लोभ करता है तो कर्ता को हानि होती रहती है ॥६३॥

॥ श्लोक ॥

नापे चैव कुविदण्ड न च मत्र प्रकाशयेत् ।
विश्वसेन्न तु लुब्धेभ्यो विश्वसेन्नामकारिपु ॥६४॥

कभी भी दण्ड की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और मत्र का भेद खोलना चाहिये। किसी प्रकार लोभी और अपकारी मनुष्य का विश्वास नहीं करना चाहिये ॥६४॥

॥ चौपाई ॥

ऐसे नर पति होत सुजान। गुरु लघु मध्यम गुनहु निधान।
अपने पुरुषागति की रीति। असुभ छाड़ि सुभ प्रगटत रीति ॥६५॥

ऐसे मनुष्य चतुर होते हैं। गुरु मध्यम और लघु गिनना चाहिये। अपने पुरुषार्थ के अनुसार अशुभ को छोड़ कर शुभ को प्रकट करते हैं ॥६५॥

राखै तिनकी धरनि असेष। लेहि और बहु विक्रम वेष।
जिनकी दीनि प्रति दिन देई। औरहि देई जीति रन लेई ॥६६॥

वे अपनी सब पृथ्वी की रक्षा कर लेते हैं और अपने पुरुषार्थ से दूसरे की भी जीत लेते हैं। वे नित्यप्रति दूसर को देकर भी रण में दूसरा को जीत लेते हैं ॥६६॥

कुल पालहि सुनि हरषै गाथ। ऐसे नरपति गुरमत नाथ।
होंहि जे अपने पिता समान। मध्यम तिनसी कहत सुजान ॥६७॥

कुल का पालन करते हैं। गाथ को सुनकर प्रसन्न होते हैं। अपने को पिता के समान होते हैं। चतुर लोग उन्हें मध्यम कहते हैं ॥६७॥

जिन पर रागी झाईन प्रजा । दई न जाइ दुष्ट को सजा ।
नाहिनकछू धर्म की सुद्धि । ऐसे लघु नृप पर है कुद्ध ॥९८॥
जो लोग प्रजा की रक्षा नहीं कर पाते और दुष्टों को दण्ड नहीं दे पाते हैं और जिन्हें धर्म का भी ध्यान नहीं रहता है, ऐसे लोग लघु रूप कहे जाते हैं ॥९८॥

स्वारथ परमारथ को साज। इहिं बिधि राजा कीजै राज ।
मारहु सत्रुनि मित्रनि राखि । बस्य करहु जग साँचो भाखि ॥९९॥
स्वार्थ और परमार्थ का सन्तुलन करके राजा को राज्य करना चाहिये। शत्रु को मारो और मित्र की रक्षा करो, सत्य कह कर संसार को वश में करो ॥९९॥

जिती भूमि राजा की लेहु। विष्णु प्रीति राजा को देहु ।
जितनै दैन कहें है दान । ते सब दीजहि बुद्धि निधान ॥१००॥
जितनी भूमि राजा की लो उसके बदले में विष्णु प्रीति दो। जितने दान देने के लिए कहे वे सभी दान दो ॥१००॥

॥ दोहा ॥

एक एक देत न बनै तातें नृपति उदार ।
ग्राम दान सब देत सब दान एकही बार ॥१०१॥
हे उदार-राजन्! एक-एक दान देते नहीं बनता। इसलिये ग्रामदान एक ही साथ देना चाहिये ॥१०१॥

॥ चौपाई ॥

राजधर्म बहु भाँतिनि जानि। बुधि बल लीजत है पहिचान ।
कहौ कहा लगि बुद्धि निधान। तुम सुसील सर्बज्ञ सुजान ।
तुमसे राजनि को उपदेस। ज्यों सूर्योदय जान्ह प्रवेस ॥१०२॥
राज्य धर्म को बुद्धि बल से अनेक प्रकार से जान लेते हैं। हे बुद्धि निधान! तुम सुशील सर्वज्ञ हो। तुमसे कहा तक कहा जाए। तुम्हारे ऐसे राजाओं को उपदेश देना उसी प्रकार है जिस प्रकार से सूर्योदय में चंद्र का प्रवेश हो ॥१०२॥

॥ दोहा ॥

तिनसों कहत न बूझियै हमें राज के कर्म ।
जिनके जानत जगत जन पुरुषागति के धर्म ॥१०३॥

वही आप मुझ से राज्य के कर्म पूछ रहे हैं जिनके पुरुषागत धर्म को सारा संसार जानता है ॥१०३॥

इति श्रीमत् सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्रीवीरसिंह देवचरित्रे राजधर्म वनन नाम विंशएकादसप्रकाश ॥३१॥

॥श्री वीरसिंह उवाच—चौपाई॥

दान कहत तुम अति चौपाई । सासन हम पर भैरी जाई ।
अपनौ कुल सब बोलहु आज । दैन कह्यौ है दोजहि राज ॥१॥

हे दान ! तुम सुखी होकर अपने कुल को कहो । जिस राज्य को कहा है उस राज्य का दो ॥१॥

नृपति काज कहिजै गुनि दान । उत्तम मध्यम अधम विधान ॥२॥

॥ दान उवाच—चौपाई ॥

देव देवरिपि सहित विवेक । ब्रह्म ब्रह्मरिपि जिहैं अनेक ।
सब जग मृत्तिकानि कौं आनि । सब औषधि मन्त्र सब जानि ॥३॥

देव, देव ऋ प, ब्रह्म, ब्रह्मऋषि ओषधि आदि जितने हैं सभी मिट्टी के हैं और सभी औषधि मत्र का जानते हैं ॥३॥

करत सीस अभिषेक उदास । ते नरपति अति उत्तम होत ॥४॥

जिस राजा पर देव, देवर्षि, ब्रह्मऋषि और माया अनुकूल है, वही राजा उत्तम राज्य का अधिकारी होता है ॥४॥

॥ श्लोक ॥

देवैश्च देवार्षिमिश्च यश्च ब्रह्मर्षिमितया ।
मूर्द्धाभिषिक्तो विधिना स राजा राजसत्तमः ॥५॥

उत्तम राजा वे हैं जो कि प्रात. होते ही ब्राह्मणों का अभिषेक करते हैं ॥५॥

॥ चौपाई ॥

बेद बेत्ता विप्र अनेक । जिनकै सीस करै अभिषेक ॥६॥

वेद का जानने वाले अनेक ब्राह्मण हैं, उनमें से किसका अभिषेक किया जाय ॥६॥

महा नृपति सौं मिलि नरनाथ । तिनकी जानौ मध्यम गाथ ॥७॥

महानृपति से जो मिले रहते हैं वे मध्यम होते हैं ॥७॥

॥ श्लोक ॥

मूर्द्धाभिषिक्तो विधिना ब्राह्मणै र्वेदपारगैः ।
अमैर्नरदेवैश्च स राजा मध्यमोमत ॥८॥

॥ चौपाई ॥

काल देस बिन बिना बिधान । जैसे तैसे विप्र अजान ।
जिहिं तिहिं जल अभिषेकहि करै । ताकौं साधु असाधु उचरै ॥९॥

बिना काल देश का विचार किये हुए, अज्ञानी ब्राह्मण का अथवा जिस तिस का जल से अभिषेक करने वाले को साधु लोग असाधु कहते हैं ॥९॥

॥ श्लोक ॥

अकुलीनैः कुलीनैर्वा ब्राह्मणैर्योऽभिषेकवान् ।
पूतापूतजलैर्यश्च सर्वे सजाधमा मतः ॥१०॥

ब्राह्मण चाहे कुलीन हो अथवा अकुलीन फिर भी उसका अभिषेक करना चाहिये । पवित्र अथवा अपवित्र जल द्वारा जो अभिषिक्त राजा करता है वह अधर्म है ॥१०॥

॥ दास उवाच—चौपाई ॥

राजा यह कुल क्रम की राज । अरु याकौ है उत्तम साज ।
ताकौं श्रद्धा सौं सग्रहै । फल अनेक जस आपुन लहै ॥११॥

हे राजन ! यही कुल का क्रम है और इसका साज उत्तम है। इसका साज श्रद्धा पूर्वक करे और अनेक प्रकार के फलों को प्राप्त करे ॥११॥

हमैं देव जानैं सब कोय। तिनकौ दरसन सफल न होय।
तुमपैं हम प्रसन्न है चित्त। अभिमत वर मांगहू नृप मित्त ॥१२॥

हमें सभी देव जानते हैं। मेरे दर्शन करने से किसी की मनोकामना अफल नहीं होती है। हम तुम से प्रसन्न हैं। इसलिये जो भी तुम्हारी इच्छा हो माग लो ॥१२॥

॥ वीरसिंह उवाच—चौपाई ॥

सुनिजै दान देवमति मित्त। जौ प्रसन्न तुम हमसौ चित्त।
सागर तीर जे सरित अमेय। सप्तदीप मृत्तिका सुदेय ॥१३॥

हे दान! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो सागर के पास जितनी नदियां हैं और सातो द्वीपों की जो मिट्टी है ॥१३॥

सब औषधी सफल फल रत्न। सकल वेद के मन्त्र सजत्न।
इनहि आदि अपने परिवार। बोलो दान सबै व्यौहार ॥१४॥

और सभी औषधियाँ, सुन्दर फल, रत्न, वेद आदि के सभी व्यवहारों को उधार करो ॥१४॥

विधि सौं हम सौं दीजै राज। हम पर कृपा भई जो आज।
या सुनि दान कह्यौ सुख पाय। करिजै नृप अभिषेक उपाय ॥१५॥

यदि आज आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो विधिपूर्वक मुझे राज्य दीजिये। यह सुनकर दान ने कहा, हे राजन! अब अभिषेक की तैयारी करो ॥१५॥

आये धर्म सहित परिवार। बाज उठे दुन्दुभि दरबार ॥१६॥

धर्म सहित दरबार में आये उस समय, दुन्दुभी बज उठा ॥१६॥

॥ कवित्त ॥

सोहत परम दिस जात मुनि मुखपाइ,
हति मङ्गीत मीत विबुध बखानिये।
सुखद सकति सम समर सनेही यह,
वदन विदित जस केसौदास गानियें।

राजै द्विजराज पद भूषण विमल,
कमलासन प्रनाम परदार प्रिय मानियैं।
ऐसे लोकनाथ कि त्रिलोकनाथ नाथ किय,
कामीनाथ वीरसिंह जिय जानियैं ॥१७॥

इन को भांति सुशोभित, मुनियों के लिये सुखदायी, संगीत का प्रेमी सभी देखते हैं। युद्ध का प्रेमी सभा रहते हैं। युद्ध का प्रेमी है और उसका यश सभा को पता है। वह द्विजराज की भांति सुशोभित है और परदार प्रिय है। ऐसे गुणों से युक्त वीरसिंह को त्रिलोकनाथ अथवा शंकर के रूप में सारा संसार जानता है ॥१७॥

॥ दोहा ॥

वीरसिंह ज्यों देखियों सकल धर्म परिवार।
अपने अपने चित्तमय बाढ़े तर्क अपार ॥१८॥

वीरसिंह ने सारे धर्म परिवार को देखा। सभी के चित्त में अनेक प्रकार के तर्क बढ़े ॥१८॥

। चौपाई ॥

तब कीनें आतिथ्य अनेक। श्रद्धा सहित धर्म सविवेक।
पूजा करी आठहू अंग। मन क्रम वचन मुदित अंग अंग ॥१९॥

उसके बाद श्रद्धा पूर्वक आतिथ्य किया। मन, कर्म, वचन से आनंदित होकर आठो अंगों की पूजा की ॥१९॥

ज्ञान सहित पूजे विज्ञान। पूजे देव सबै सविधान।
पूजि पाय परि ठाढे भये। अञ्जुलि जोरि विनय बहु ठये ॥२०॥

ज्ञान सहित विज्ञान का पूजा की और विधि पूर्वक सभी देवों की पूजा की। पैरों की पूजा करके अञ्जुलि बाधकर खड़े हो गये ॥२०॥

सुनहु प्रतिपालक धर्म। आजु सफल भये भरे कर्म।
मोपै कियो हतो अनुराग। मेरे पुरुषन कौ बड़भाग ॥२१॥

हे ससार का पालन करने वाले धर्म ! आज मेरे सभी काम पूरे हो गये। मेरे ऊपर इतना आपन प्रेम किया, यह मेरे पूर्वजों का बड़ा भाग्य है ॥२१॥

॥ दोहा ॥

पूजा करि बहु विनय करि वीरसिंह नरदेव।
बैठारे सिंहासननि सोभन देवी देव ॥२२॥

वीरसिंह ने पूजा और विनय करके देवी और देव को सिंहासन पर बिठाया ॥२२॥

॥ चौपाई ॥

तब तिहिं समय विजय सुख पाय।
कही बात नरपतिहिं सुनाय ॥२३॥

उसी समय सुखी होकर विजय ने कहा ॥२३॥

विजय उवाच

महाराज के गुन अवदात। हमकौ मिले दिगन्तनि जात।
तिहि चराइनी दीनौ हमैं। जौ सुनिजै तु कही इहि समय॥
राजा मुनि सिर नीचौ कियौ।
तिनकौ कह्यो कहन तिन लियौ ॥२४॥

महाराज के विमल गुण हमें दिगन्तों में मिले हैं। उन्हें मैंने उलहना दी, यदि उसे सुनना चाहें तो मैं अभी सुना दूँ। राजा ने इसे सुनकर शिर नीचा कर लिया ॥२४॥

॥कवित्त॥

हमही सिखाये दैन भोग भोग वन इन,
हमही सौं प्रबल प्रताप नर हारे हैं।
केसौदास हमही बढ़ायकै बड़ाई दई,
राजन के राजा आनि पाय सब पारे हैं।
वाकौं तौ हमारी बात अबही लजात सुनि,
आगे कहा करिहौं विचार यों विचारे हैं।

राजा वीरसिंह देव रावरे सकल गुन
ऐसो कहि दासहु दिसानि पाऊँ धारे हैं ॥२५॥

हमने ही भोग करना तथा भोग वन सिखाया और हमसे ६ प्रतापी मनुष्य हारे हैं। हमने हा बड़ा कर बड़प्पन दिया और राजाओं के राजा भी आ कर पांव में पड़े हैं। मेरी उस बात को सुनकर अभी लज्जित होते हो तो आगे क्या विचार करोगे? राजा वीरसिंह में ऐसे गुण हैं कि दसों दिशाओं ने उनके पैर पकड़े हैं ॥२५॥

॥ उत्साह उवाच चौपाई ॥

नृपति मुकुटमनि वीरसिंह देव। दारिद डरपि तुम्हारे भेव।
विधि सौं विनय कर्‌यौं तजि लाज। हम सब सुनी सु सुनिजै राज।

हे वीरसिंह। तुम्हारे भ्रम से दारिद्र्य डर कर विधि से जो उसने प्रार्थना की उसे सुनिए ॥२६॥

॥ सवैया ॥

चोटहु जू करतारपन्यो तुम कासीनरेस वृथा कहि डार।
आपनें हाथनि नाथ हुतौ जनके सिर राज के अंक सुधारे।
ऐसे सुरेसनिहूँ के मिटै नहि जा उत तीरथ जाल पखारे।
है गये राजतहीं तैं जहीं नर वीरनरायति नैक निहारे ॥२७॥

हे करतार आपने काशी नरेश के सम्बध में व्यर्थ ही कहा है। उसने तो अपने हाथों से ही राज्य के लोगों को सुधारा है। सुरेश भी इतना नहीं मिटा सकते जितना उस जल के तीर्थ में धोने से मिट सकता है। जिस किसी ने थोड़ा देख भी लिया वही राजा हो गया ॥२७॥

॥ वैराग उवाच—चौपाई ॥

नृपति तुम्हारे सत्रु अनन्त। इहि विधि देखे भूमि भवन्त ॥२८॥

हे राजन ! पृथ्वी पर तुम्हारे शत्रु अनेक है।

जय उवाच—चौपाई

सुख दुख सहित सकल परिवार। हमहिं मिले यह भांति अपार।
बहुधा विपति सपातिन सनै। राजा तुम्हारे अरि मा गनै ॥२९॥

सुख दुख सहित सारा परिवार हमें इस प्रकार मिला । अनेक सपत्ति वाले विरक्त युक्त लोगों की गणना शत्रु दल में होती है ॥२६॥

॥ धैर्य्य उवाच—चौपाई ॥

महाराज सुनिजै रनरुद्र । प्रगट करे तुम दान समुद्र ।
अति दीरघ अति सोभा सने । कह्यो न जाए देखतहि बने ॥३०॥

हे रणरुद्र महाराज ! सुनिये । तुमने तो दान के समुद्र ही प्रकट कर दिए हैं । वे अत्यधिक बड़े और शोभा युक्त हैं । उनको देखने पर भी नहीं कहते बनता है ॥३०॥

॥ कवित्त ॥

केसौदास सुवरनमय मनिजल जात
तरगनि तरगनि तरंगित, विभाति हैं ।
जाचक जहाज लाख लाख अभिलाख,
जातभरि भरि लै सिद्दान दिन रात हैं ।
उड़ि उड़ि जात जित देखहा सु चित हित
पचि पचि पैरि पैरि अति अकुलात हैं ।
कीरति मराली राजासिंहनि की वीरसिंह,
तेरे दान सागर मैं बूडिबूडि जाति हैं ॥३१॥

स्वर्ण और मणियों की तरंगें दिखाई देती हैं । याचक इच्छानुसार रात दिन जहाजों में भरकर उसे ले जाते हैं । हे वीरसिंह ! तेरे दान रूपी समुद्र में राजसिंहों की कीर्ति डूबी जा रही है ॥३१॥

आनन्द उवाच—चौपाई

महाराज तब दुग्ख दुरन्त । पाप पुकारत आरतवन्त ।
विधि जौं कहत भूमि हम तजी । अब हम बसे निकट की सजी॥३२॥

हे महाराज ! आप दुःखों को दूर करने वाले हैं । दुखी होकर पाप पुकार रहा है । ब्रह्मा से यह कह रहा है कि उसने भूमि को छोड़ दिया है । अब हम सबी के निकट वास कर रहे हैं ॥३२॥

॥ कवित्त ॥

कहाँ करतार हम कहा कहाँ वीरसिंह,
कलजुगही मैं कृतयुग, अवतारयौ हैं
विक्रम विटप भोग भाग बताश्रो
सैनापति तेज, `मही सौं अति पारयौ हैं
केसौदास गुनज्ञान सकल सायन साच
दान कै समुद्र मैं दारिद्र बोरि मारयौ है।
राज नी सुरालै धीर धरी धामहा कै
वन्ध भूमि लौकहा में मत्यलोक सुधारयौ है ॥३३॥

हे करतार ! अब हम क्या करे ? वीरसिंह ने कलियुग म कृतयुग की रचना की है। विक्रम रूपी वृक्ष, वीरो तथा सेनापतियों को बड़े ही प्रेम से पाला है। वीरसिंह ने अपने गुण, ज्ञान, चतुरता, सत्यता, दान आदि के समुद्र म दारिद्रता को डुबा दिया है। इस पृथ्वी पर ही उसने सत्यलोक की रचना की है ॥३३॥

॥ भाग्य उवाच -- चौपाई ॥

जहां जहां हम गये नरेस। तहां तहां तो सुजस सुवेस।
जल थल पुर पट्टन वर बाग। सुनियतु तेरै बहु अनुराग ॥

हे राजन ! जहां जहां हम गये, वहां-वहीं तेरा सुयश मुझे मिला। जल, थल, पुर, पट्टन, बाग आदि सभी स्थानों पर तेरे ही अनुराग को सुना है ॥३४॥

॥ कवित्त ॥

केसौदास मावकास तारिकन सौं अकास,
तारनि मैं चन्द सों प्रकास ही करतु हैं।
सुधा के आम पास सागर उजागर सौं,
सागर मैं गङ्गा कैसी जल परसतु है।
नागलाक सेस जू सौ देखयतु सुरपाई,
सेषजू मैं सत्य कैसी वेपहि धरतु हैं।

बीरसिंह तारो जस लोक लोकपूजयत,

नारद सौं सारद वै राम सौ रटतु, हैं ॥३५॥

जिस प्रकार से तारे आकाश को और तारों को चद्र प्रकाशित करता है उसी प्रकार आप भी सभी को प्रकाशित करते है। वसुधा के आसपास सागर में गगा के समान जल है। जिस प्रकार से नागलोक में शेष्नाग भी सत्य को धारण किए हैं उसी प्रकार से तुम भी इस पृथ्वी पर धारण किए हुए हो ॥३४॥

॥ चौपाई ॥

बात सुनि जब सुकसारिका। बूझति है सुक सौं सारिका ॥३६॥

जब सुकसारिका ने सारी बात सुनी तब सुक से सारिका ने पूछा ॥३६॥

॥ प्राक्रम उवाच—चौपाई ॥

सुनि बीरसिंह गुन ग्राम। मारैं भट जु तुम संग्राम।

निसिवासर आनन्द निधान। देखे हम दिवि देव समान ॥३६॥

हे बीरसिंह! तुमने युद्ध में अनेक वीरों को मारा:है। फिर भी मैंने आप को रात दिन आनदित ही देखा और आप सदैव देव के समान ही दिखाई दिए ॥३७॥

सवैया

केलि करैं कलपद्रुम के वन मैं तिनके सग देव मुरारी।

अक्षित दासकरै जनु देह लग हरिचन्दन चित्त सुधारी॥

लोक विलोकनि कौ सुख बोकनि मानु दियैं सुरलोक विहारी।

बीर नरपति जू जिनके सिर तोरति वे तरवारि विहारी ॥३७॥

उनके साथ कल्पद्रुम के वन में देव मुरारी क्रीड़ा कर रहे हैं। उनके थोड़ा भी हाथ करने से ऐसा लगता है कि उनकी देह रूपी लता को हरि नन्दन से बनाया गया हो। माना सुरलोक में विहार करने वाले ने सुख के घरों को ही दे दिया हो। हे बीरसिंह! ऐसे राजाओं को सिरों तक को तेरी तलवार तोड़ रही है ॥३७॥

॥प्रेम उवाच—चौपाई॥

देव राजपुर द्वार पुकार। दरदर की तिय सुनी अपार ॥३८॥

देवराज के दरवाजे पर मैंने दरदर के लोगों की पुकार सुनी ॥३८॥

सवैया

कोपि उठी वियहू तें सुवीर नरपति दान कृपानि किनारा।
कन्त हमारो कियौ बहु खण्ड बहाय दिये तिनकी जलधारा॥
कैसी करैं हम कासौं कहैं जु बचै करि कैसव कौन की सारा।
यौं बहु बार पुरन्दर द्वार पुकारति दारिद दुख की दारा ॥३६॥

इस प्रकार के दरिद्र की स्त्री इन्द्र के द्वार पर पुकार रही थी। वीरसिंह की दान रूपी कृपाण बीच में ही कोर उठी और उसने हमारे स्वामी के अनेक खड कर के जल की धारा में बहा दिया। अब मैं किससे जाकर कहूँ जिससे मेरे पति देव बच जायँ ॥३६॥

॥ सारिका उवाच – चौपाई ॥

कहियो सोभन सुक अवदात। वीरसिंह की मोसौ बात।
आयो सभाधर्म परिवार। जिन जिन वेदनि मांझ विचार।
बाढ़यो मेरैं चित्त विचार। वीरसिंह काकौ अवतार ॥४०॥

हे शुक! मुझसे वीरसिंह की सारी बात कहो। परिवार सहित धर्म सभा में आया, जिनके मध्य में वेदों का विचार था। मेरे चित्त में यह विचार उत्पन्न हुआ कि वीरसिंह किसका अवतार है ॥४०॥

॥ कवित्त ॥

किधौं मुनि तप वृद्ध केसौदास कैऊ सिद्ध,
देवता प्रसिद्ध भूमि भूपति कहाये हैं।
गुन गन युत मोहैं मेरे तन मन मोहैं,
वीरसिंह कौहै सुक तेरे मन आये हैं॥
जिन लगि दीजै दान तीरथनि कीजै न्हान,
सुनिजै पुरान बहु वेदन यु गाये हैं।

अरु तन मन कहि आवे न वचन कहि,
आवत न तन निते नैननि मैं आये हैं ॥४१॥

या ता वह कोई तपी वृद्ध मुनि है अथवा कोई सिद्ध देवता है जिसने इस भूमि पर राजा का अवतार लिया है। गुणों मे युक्त मेरे तन मन को आकर्षित करने वाले कौन है? जिनके लिए तीर्थों पर दान और स्नान किया जाय और जिनके सम्बन्ध में वेद और पुराणों ने गाया है। उनका वर्णन तन मन से नहीं हो पा रहा है, ऐसे नीरसिंह मेरे नेत्रों में हैं ॥४१॥

॥ सुक उवाच—चोपाई ।

सुनि सुक कीनो चित्त विचार। अपने उर कीना निरधार।
भली कही तै बुद्धि निधान। मोपै सुक सारिका सुजान ॥४२॥

सुक ने सुनकर अपने मन में विचार किया और हृदय में निश्चित किया। हे बुद्धि निधान! तूने मुझसे अच्छा ही कहा है ॥४२॥

कवित्त

याके उर अकबर माहि मेरे रसदाम
जाके नाहीं रुचि परतिय परधन की।
साधि साधि तन्त्र ते जन्त्र जपि जपि मूलमत्र,
ज्यों ज्यों लीनीं भार त्यों त्यों बाढ़ी जातितन की ॥
लहुरे तैं मबढ़ा कै जेठा भया माहि कै सु,
अजहूँ न जान्यौ रे तू ऐसी मूढ़ मन की।
धर्म परिवार मर चारा इन आया रान.
विरसिंह नरपुर कला नारायन की ॥४३॥

इसके हृदय में अकबर बादशाह है और उसे दूसरे धन और स्त्री का बिल्कुल लालच ही नहीं है। तन्त्र मन्त्र का जपकर तथा मूलमन्त्र द्वारा अपने शरीर की ख्याति को बढ़ाया है। छोटे से बड़ा हो गया है अभी तक तू मूर्ख इसे न जान सकी। धर्म परिवार सहित नारायन पुर की सम्पूर्ण कला उसे देने के लिए आया है ॥४३॥

॥ दोहा ॥

मुनि सुखसारा के वचन सोभन सुखद अपार।
सुख पायो मन क्रम वचन सकल धर्म परिवार ॥४४॥
शुक सारा के सुखद वचनों को सुनकर मन क्रम वचन से धर्म का परिवार सुखी हुआ ॥४४॥

॥ चौपाई ॥

यही समय विप्र इक एक। आयो सभा मध्य निरसक।
फूटे बसन दुर्बलता बढ़े। नृप के दोय सवैया पढ़े ॥४५॥
निर्भय होकर इसी समय एक भिखारी ब्राह्मण सभा में आया। फटे हुए वस्त्र हैं और शरीर से दुर्बल है। राजा के लिए दो सवैया पढ़े ॥४५॥

सवैया

आगेहु दीजतु पाछेहु दीजतु दीजोई और दूहु व्रत धार्यौ।
दीजतु हैं अध ऊरधहू बर बैठहु देत दिसानि निहार्यो।
लैबहु दीजतु दैबहु दीजतु केसव दीजोइ दीबौ बिचार्यौ।
एकहि वीर नरपति एक जिनै बड़ी दीबे कौ हाथ पसार्यौ ॥४६॥
आगे पीछे दोनों ओर ही देता है। अध ऊरध को भी देता है। दिशायें साक्षी हैं कि तू बैठे ही बैठे लोगों को भी देता है। सभी प्रकार से तूने देने का विचार किया है। एक तूही राजा है जिसने देने के लिए ही हाथ फैला रखा है ॥४६॥

सवैया

देस परदेस से कहत सब जनपद किधौं
केसौदास बाने तन्त्र नयी नय श्री।
महाराज मधुसाह सुत बीरसिंह,
किधौं जगन्नाथ है दारिद छुद्र छय कौ॥
साकगत सर्णागत बिलोकि जात रिधौं,
किधौं जाके तीन माझ लोक है अभय कौ।

सुनहरी भागि जात वैरी सब साँची कहौं,
नाँऊ यह रावरौ कि मन्त्र है विजय कौ ॥४७॥

देश विदेश के सभी जनपद कह रहे हैं कि राजा के पास कौन सा तन्त्र है। महाराज मधुकर शाह के पुत्र वीरसिंह दुद्र दारिद्रय को नष्ट करने का जगतन्त्र है। दुखी तथा शरणागतों को अभय दान देता है। तेरा नाम सुनते ही शत्रु भाग जाते हैं। क्या तेरा नाम विजय का मन्त्र है ॥४७॥

॥ चौपाई ॥

यह सुन रीझ रही सब सभा। प्रगटी उरझि दान की प्रभा।
महाराज सुख पाइ समोद। चितये कृपाराम की गोद ॥४८॥

यह सुनकर सारी सभा प्रसन्न हो गई और उसी समय दान की प्रभा प्रकट हुई। महाराज प्रसन्न ने होकर कृपाराम की गोद की ओर देखा। ४८॥

कृपाराम अति हरषित गात। कही प्रगट द्विज कौ यह बात ॥४९॥

कृपा राम ने हर्षित होकर ब्राह्मण से कहा ॥४९॥

॥ दोहा ॥

जा कारन आये इहां कहौ विप्र बड़भाग।
हय गय हाटक हरि घट धाम ग्राम,बहु बाग ॥५०॥

हे ब्राह्मण! जिस कारण से आप आये हैं उस बात को आप कहें। घोड़े हाथी, हीरे जवाहरात, धाम, ग्राम बाग आदि सभी कुछ है ॥५०॥

विप्रो उवाच —सवैया

और न मारिबे कौं कोऊ केसव वाही कौं तातै निरलय मारो।
कै अब मारिबौ छाड़ियै वाकौं कै वाकहू मारौ तौ मोहि उबारौ॥
बीर नरपति देवन तै वह भारत मोहि सुजाति तुम्हारौ ॥५१॥

अब तुम्हारे मारने के लिए और कोई नहीं बचा है जिससे कि तुम उसे ही मार रहे हो। अब या तो उसे मारना छोड़ दीजिये अथवा मुझे उबार लीजिए। हे राजन वह मुझे भी मार रहा है ॥५१॥

॥ दोहा ॥

ग्राम चारि गन्धर्व दस हाथी बीस मँगाइ।
कृपाराम दीनै द्विजहि औरै पट पहिराइ ॥५२॥

चार ग्राम, दस गन्धर्व और बीस हाथी कृपा राम ने दिए और नये वस्त्रों को भी पहनाया ॥५२॥

शुक उवाच—कवित्त

दैन कहि आये दीनो हरिचन्द लीनो रिषि,
सर्वागत कैसो सारी सिवदान कीनो है।
केसौदास रोस बस दीनी है परसुराम,
बलिहू पै वदन त्यों छल करि लीनों है ॥
बाप को बिठायो धन दीनो भोज पडितन,
तुमहू चलायो कछू मारग नबीनों है।
रंकहू कौ राजाहू कौ गुनी अनगुनीहू की,
बिरसिंह ऐसा दान काहू ने न दीनो है ॥५३॥

शरण में आये हुए ऋषि को दान देकर हरिश्चन्द्र ने शिवदान को सत्य कर दिया था। क्रोध वश परशुराम ने भी बलि को दान दिया था किन्तु वामन रूप में उसे छल लिया था। बाप द्वारा बढ़े हुए धन से भोज ने भी पतितों को दान दिया था। आपने दान देकर नवीन मार्ग ही चला दिया है। राजा रंग गुणी अवगुणी सभी को वीरसिंह दान देता है। ऐसा दान किसी ने भी नहीं दिया था ॥५३॥

सारिका उवाच—कवित्त

कारे कारे तम कैसे प्रीतम सँवारे विधि,
बारि बारि डारों गिरि केसौदास भाषे हैं।
थोड़े थोड़े मदनि कपाल फूल थूले थूले,
सौहैं जल थल बल थानसुत नाचे हैं ॥
घण्टा ठननात नाद घने घुरवानि,
भौर भननात भुवपति अति अभिलाषे हैं।

दुरजन मारिबे कौं दारिद निदारिबे कौं,
वीरसिंह हाथी यौं हथ्यार करि राखे हैं ॥५४॥

वीरसिंह के काले काले अन्धकार समान हाथी हैं। विधि ने उन्हें अच्छी प्रकार सँवारा है। उनके ऊपर पर्वतों को निछावर किया जा सकता है। उनके कपालों पर सदा मद बहा करता है उनके नाद से घनघन का शब्द होने लगता है। घूँघरों की ध्वनि भ्रमरों की गुन्जार के समान है। दुष्ट लोगों को मारने के लिए वीरसिंह ने हथियार के रूप में हाथियों को धारण कर रखा है ॥५४॥

॥ चौपाई ॥

यह मुनि कहि सुखपायौ दान। दारू सुकुमारिका सुजान।
कीनो बहुत अशुभ को भोग। ताहि रोग ये उनके संयोग ॥५५॥

दान, सुकुमारिका यह सुनकर सुखी हुए। अशुभ वस्तुओं का बहुत भोग किया है। उसी रोग से ये उनके हैं ॥५५॥

॥ सारिका उवाच —सवैया ॥

कामगवी कलपद्रुम कामना पाइयैं दान सुदान दियें कों
साधन साधन होय जो है सर्वो काम कौं पारस पुञ्ज लियें कों ॥
जारत जौ जरिजाई जरागुन केंमव को जनु एक पियें कौ।
भागेहा भी भगिहैं भवती परिमान कहा हरिनाम लियें कौ ॥५६॥

कल्पवृक्ष के नीचे जाने पर इच्छा पूरी हो, दान देने पर यदि दान मिले, साधन होने पर सभी साधन सुलभ हो, पारस को छूने पर इच्छित वस्तु मिले, जलाने पर जरागुन जलें भाग्य से ही सांसारिक बाधायें भगेंगी, तो ऐसी अवस्था में हरि का नाम लेने से क्या लाभ है ॥५६॥

॥ चौपाई ॥

यह सुनि बोल्या धर्म प्रधान। साधु साधु सारिके सुजान।
हरि की नगदी अब बल भई। इतनी कहति सबध्वनि भई ॥५७॥

यह सुनकर सारिका को सम्बोधित करके धर्म बोला। हरि की नगरी अब शक्तिशाली है। इतना कहते ही शखध्वनि हुई ॥५७॥

आई राज लैन की घरी। आइ गनिक यह बिनती करी ॥५८॥

गणक ने आकर बिनती की कि अब राज्य ग्रहण करने का शुभ समय आ गया है ॥५८॥

इति श्रीमत सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्रीवीरसिंह देव चरित्रे धर्म समागम वर्नन नाम विंशद्वादश प्रकाश ॥५८॥

॥ चौपाई ॥

झालरि भेरि सजावरि बजैं। जहँ तहँ दुन्दुभि दीरघ सजैं।
जहँ तहँ प्रमुदित लोग अभीन। जहँ तहँ सुनियत मगल गीत ॥१॥

मगल भेरी तथा दुदुभी फिर बज उठी। जहा तहा लोग निर्भय तथा आन्दित थे और जहा तहा मङ्गल गीत सुनाइ देत था ॥१॥

जहँ तहँ वेद पढैं द्विज पाति। जहँ तहँ होम होत बहु भाति।
लीपी घर चन्दन जल चारु। उपरि वितानन्नि को परिवारु ॥२॥

यत्र तत्र ब्राह्मण वेद पढ़ने थे और अनेक विधि से होम होना था। घर सुन्दर चदन और जल से लिपे हुए हैं और ऊपर वितान तने हुए हैं॥२॥

हेम दलनि मरक्त मनि खची। तिनके बदन माझ है सची।
बिच बिच होरा मानिकलरें। बिच बिच मुक्तनि की झालरी ॥३॥

सोने और मरक्त मणि से जड़े हुए हैं। बीच बीच में हीरे माणिक माण की लड़िया और मुक्ताओं की झालर है ॥३॥

कञ्चन कलस जरयनि जरे। उज्वल झलक दिव्य जल भरे।
सिंहासन दुति मन मोहियो। सोभन सभा मध्य सोहियो ॥४॥

सोने के घड़े जरायनि से जड़े हुए हैं। स्वच्छ जल से घड़े भरे हुए हैं। सिंहासन की कान्ति मन को मोहित कर लेती है। सभा के मध्य शोभा स्वयं सुशोभित है ॥४॥

स्नान दान कीनौं सुभ कर्म । तापर नृप बैठारे धर्म ।
छत्र शीस पर धीरज धर्यो । तास सौं अमृत मयूपति भर्यो ॥५॥

स्नान दान आदि शुभ कर्म किए। फिर राजा को धर्म ने बिठाया। धैर्य रूपी छत्र शिर के ऊपर धारण किया, उसे चन्द्र के समान अमृत रूप मयूखों ने कहा ॥५॥

रूप प्रेम कर दर्पन लियै। मानो निर्मलता के हियैं।
बल विक्रम कर लियें हथ्यार। बाने आनंद के परिवार ॥६॥

सौंदर्य और प्रेम का दर्पन हाथ में लिया, मानो वह हृदय की निर्मलता हो। बल और विक्रम रूपी हथियारों को हाथ में धारण कर लिया है ॥६॥

रानी पारवती तिहि काल। बोली सुमति सखि तिहि बाल।
जोरी गाठि विवेक विचारि। बाम अंग सोभी सुखकारि ॥७॥

उस शुभ काल में रानी पारवती की गाँठ विचार करके राजा से जोड़ी गयी है और सुखद रानी बाम अंग में सुशोभित हुई ॥७॥

अति उत्साह तेज करि धरि। जयहू विजय छबीली छरी।
भोग भाग करि सुमन विधान। अति आचार खवावत पान ॥८॥

अत्यधिक उत्साह से तेज को धारण किया और हाथ में विजय की सुन्दर छड़ी ली। अनेक प्रकार से भोग किया और उसके बाद आचार सहित पान खिलाया ॥८॥

विद्या अरु श्री ढारति चौंर। बीरसिंह नृपति सिरमौर॥
छमा दया सजनी सुख सिद्ध। श्रद्धा मेधा सुचि रुचि वृद्धि।
रानिहि देखि सकल सुख बढ़ी। मारी सुखद सारिका:पढ़ी ॥९॥

विद्या और श्री बीरसिंह के ऊपर चौर चला डाल रही हैं। क्षमा, दया, सिद्धि, श्रद्धा, मेधा सुचि आदि सभी रानी को देख कर आनंदित हुईं ॥९॥

॥ सवैया ॥

भाजन भूषण भूषित भूपति दुःख दसा सबही को हतीसी।

प्रात तै दीजतु है अधि राति लों कोटि करी जिन एक रतीसी।
देव सराहत देवी मवै रन देवी सराहति इन्द्रमति सी।
होय न ऐसी जौ फेरि रचे विधि पारवती सम पारवता सी ॥१०॥

भोजन और आभूषणों से विभूषित होने पर सभी प्र। दुख कम हो गया। प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक करोड़ों हाथियों का दान एक रत्ती की तरह देता रहता है। देव, देवी, रणदेवी आदि सभी सराहना करती हैं। अब विधि फिर से पारवती समान पारवती की रचना नहीं करेगा ॥१०॥

॥ दोहा ॥

दे धर्म सकल परिवार सों सजुत ज्ञान विवेक।
अपने अपने अस दै किये तिलक अभिषेक ॥११॥

धर्म ने अपने परिवार सहित तथा ज्ञान और विवेक के साथ अपने-अपने अंश का तिलक किया ॥११॥

॥ चौपाई ॥

जय अभिषेक धर्म करि लयौ। जय जय शब्द सकल जग भयौ।
प्रथमहि पहिराये द्विजराज। छीतर मिश्र अमित कविराज ॥१२॥

जब अभिषेक का कार्य पूरा हो गया तब सभी ने जयजय कार का शब्द किया। सर्वप्रथम द्विजराज, कविराज छीतर मिश्र ने पहिनाया ॥१२॥

श्रुति सुधर्म तरु विप्र बुलाई। जुक्ति उक्ति जोगा सुखदाई।
पहिराये गनि पर पवित्र। जानि मानि, सब गुननि विचित्र ॥१३॥

सभी गुणों में विचित्र समझ कर श्रुति और सुधर्म ने ब्राह्मणों को बुलाया जिन्होंने गनि पर पवित्रता के साथ पहनाया ॥१३॥

सिगरे प्राहित गन कविराज। देत असीस चिरञ्जिय राज।
पहिराये मानसाहि बुधिवन्त। पहिराये भैया भगवन्त ॥१४॥

राजा को सभी पुरोहित और मनराज आशीर्वाद देते हैं। मानसाहि और भैया भगवन्त ने भी पहनाया ॥१४॥

दै दै वर अम्बर कविराज। पुरी परगनैं भूषन साज।
बोलि जुझार राइ सुख साज। पहिराये तिन्हैं जुवराज ॥१५॥

अम्बर कविराज को वर दिया और पुरी, परगनों तथा भूषणों से भूषित किया। जुझार राय ने कहा कि आप राजन सभी सुखों के साज है, ऐसा कहकर उन्होंने पहना कर युवराज बनाया ॥१५॥

पहिराये हर धीर कुमार। प्रबल पहार खान बल मार।
बोले बाघ राज रनधीर। चारु चन्द्रमनि बुधि गम्भीर ॥१६॥

शक्तिशाली हरधीर कुमार ने पहनाया। रणधीर बाघराज ने कहा कि हे राजन! आप सुन्दर चंद्रमणि की भांति बुद्धिमान और गंभीर है ॥१६॥

अरु भगवानदास सुख पाइ। पहिराये बहुवै सुखपाई।
पुनि पहिराये नरहरि दास। कृष्णदास अरु माधोदास ॥१७॥

भगवान दास ने सुखी होकर पहनाया। फिर नरहरिदास, कृष्णदास और माधवदास ने पहनाया ॥१७॥

हँसि पहिराये बेनीदास। अति हुलास सौं तुलसीदास।
बहुरि बसन्तराइ पहिराइ। पुनि पहिराइ खाडेराइ ॥१८॥

हस कर बेनीदास ने और आनंदित होकर तुलसीदास ने पहनाया। इसके बाद बसन्त राय और खाडेराय ने पहनाया ॥१८॥

बोले ? कृपाराम मुरकारि। पहिराये पट भूषण धारि।
कटि बाधी अपनी तरवारि। पहिरायौ तिहिं कौ परिवार ॥१९॥

मुखद कृपाराम ने आभूषणों को पहनाया। कमर मे अपनी तलवार बाधी और उनके परिवार को पहनाया ॥१९॥

करि अपनैं मन प्रेम प्रकास। पहिरायो द्विज कन्हरदास।
जैनसाधु पहिरायौ गौर। बोलि बसन्तराइ तिहि ठौर ॥२०॥

अपने प्रेम को व्यक्त करके कन्हरदास ने पहनाया। जैन साधु ने पहनाया और बसन्त राई उस जगह बोला ॥२०॥

पहिराये बड़ गूजर सूर। चम्पति केसवराय समूर।
आदि प्रधान अलोभ अभूत। पहिराए सुन्दर के पूत ॥२१॥

शूर गूजरों और चम्पति ने पहनाया। लोभ रहित प्रधानों तथा सुन्दर के पूत ने पहनाया ॥२१॥

ईं मुराउर सुतनि समेत। पहिराये सब कारज देत।
सुबुधि दसौंधी साहिबराई। पहिराये बहु भाति बनाई ॥२२॥

मुर ने अपने सभी पुत्रों सहित कार्य सिद्धि के लिए पहनाया। दसौंधी के साहिबराइ ने अनेक प्रकार से बनाकर पहनाया ॥२२॥

कायथ पहिराये सुबि वास। कमलपानि नारायन दास।
पहिराये सब सुजन समाज। सिगरे देस देस के राज ॥२३॥

कायस्थों ने सुविवास तथा नारायणदास ने कमलपानि पहनाया। सम्पूर्ण समाज और देश विदेश के राजाओं ने भी पहनाया ॥२३॥

नेगी दल परिगहू उमराउ। पहिराये अति उपज्यौ चाउ।
पहिराये मरहरिया भारि। महत्ते बहु मगने विचारि ॥२४॥

नेगी दल, परिगहू क उमराव ने भी आनंदित होकर पहनाया। मरहरिया भारि ने भी पहनाया ॥२४।

एक द्विजनि पादारघ दये। एक निवृति दान रुचि रये।
जब सब लोग लये पहिराय। बोलो कृपाराम सुखपाय ॥२५॥

एक ब्राह्मण ने पादारघ दिया। एक ने निवृत्ति दान मे अपनी रुचि दिखायी। जब सभी लोगों ने पहना लिया तब सुखी होकर कृपाराम बोले। २५॥

जाके मन जैसी रुचि होय। लोग असीस देहु सब कोय ॥२६॥

जिसके मन म जैसी रुचि हो, उसी के अनुरूप सभी लोग आशीर्वाद दो ॥२६॥

सदाचार उवाच—सवैया

राम के नामनि प्रात उठौ पढ़ि ह्वै सुचि सब्बई जु मनंदैजै।
पूजि जथा विधि केसव की पुनि दान दै राज सभा मह बैसै ॥
भोग लगै भगवन्तहि भूपति भोजन कै निज मन्दिर ऐजै।
राज करौ चिर वीर नरेसनि लै जगती बस कैजै ॥२७॥

राम का नाम लेकर प्रातःकाल उठिये और सबों को आनन्दित कीजिये। यथाविधि पूजन कीजिये और राजसभा में दान दीजिये। भगवान को भोग लगा कर भोजन के लिए घर जाइये। हे नरेश! राजाओं को लेकर संसार में राज्य करके वश लीजिये ॥२७॥

॥ सत्य उवाच—दोहा ॥

सत्य सर्व हरिचन्द ज्यौं वीरसिंह नरनाथ।
पति पाल्यो पालहु जगत ज्यौं राजा रघुनाथ ॥२८॥

हे वीरसिंह! सत्य का उसी प्रकार पालन करना जिस प्रकार हरिश्चन्द्र ने पालन किया था। जिस प्रकार से राजा रघुनाथ ने पालन किया था उसी प्रकार से संसार का पालन करिये ॥२८॥

॥ ज्ञान उवाच—कवित्त ॥

भव की उतान्यौ भार उतर्‍यौ ज्यौं निजु,
भार धर्‍यौ भूमि भार फनपति के फनक ज्यौं।
साधि जय सबै साधु साजत ज्यौं मन्त्र सब,
साधि साधि सिद्ध बस करहु गनक ज्यौं ॥
ग्रन्थ छोरि तौलि ताप ताडिजै तरुन मनु,
छेदि छेदि केसौदास कसिजै कनक जब ज्यौं।
महाराज मधुकर साह सुत वीरसिंह वीर,
चिर राज करौ राजा जू जनक ज्यौं ॥२९॥

संसार के भार को उसी प्रकार से उतार दीजिये जिस प्रकार से आपने अपना भार उतार दिया है और पृथ्वी का भार धनपति की भांति आप भी धारण कीजिये। साधुओं की भाँति जय की साधना करो और गनक की भांति शत्रुओं को मिलाओ। अपने तरुण मन की ग्रंथियों को खोल करके उसे उसी प्रकार कसौटी पर कसिये जैसे सोने को कसौटी पर कसा जाता है। हे मधुकर शाहि के पुत्र वीरसिंह! तुम युग-युग तक राजा जनक की भांति राज्य करो ॥२६॥

॥ लोभ उवाच—दोहा ॥

प्रभु ज्यों पृथ्वी पालिजैं सबै रतन दुहि लेहु।
लोभ बड़ै हरि भक्ति को जस सौं करौ सनेहु ॥३०॥

राजा पृथु के समान पृथ्वी का पालन करो और उसके सभी रत्नों को दुह लो। लोभ केवल हरिभक्ति का करो और यश से स्नेह करो ॥३०॥

पराक्रम

काल कैसौ दण्ड असिदण्ड भुज दण्ड गहि,
विक्रम अखण्ड खण्ड नवखण्ड मण्डियै।
मत्त गज मुण्डन के बलिखण्ड सुण्डादण्ड,
कुण्डली समान खण्ड खंड नव खंडियै॥
तरल तुरग तुग कवच निखग संग,
चमू चतुरग भट भग कर छंडियें।
राज करौ चिरु चिरु वीरसिंह रनसिंहजीति,
जीति दीह देस मत्रनि कौ दंडियै॥ १॥

अपनी शक्तिशाली भुजाओं तथा विक्रम से नवों खण्डों को मण्डित कर दीजिये। मस्त हाथियों के झुण्डों को जिस प्रकार सिंह खड-खड कर देता है उसी प्रकार आप भी नवों खण्डों को खड खड कर दीजिये।

कवच, तलवार, चतुरंगिनी सेना को खंड खड कर दीजिये। देशों को जीत कर तथा शत्रुओं को दड देकर युग-युग तक वीरसिंह राज्य करो ॥३१॥

॥आनन्द उवाच—दोहा॥

राज करौ आनन्दमय वीरसिंह सबकाल।
महि केसव सकलित कुल भूतल के सुरपाल ॥३२॥

सभी समय आनंद से वीरसिंह देव राज्य करो और पृथ्वी का पालन करते रहो ॥३२॥

उधम उवाच—सवैया

तेरह मडल मडित है भुव मडल कौ सुरग साधन कीजै।
राज वढौ धन धर्म वढौ जिनही जिमि वैरनि की कुल छीजै॥
मित्रनि सों मिलि मित्रनि सो मिलि केसव उधम को मन दीजै।
वीर नरपति श्रीपति सौं जय श्री रनसागर सौं मथि लीजै ॥३३॥

तेरह मडल हैं उन सभी को सुख साधनों से युक्त कीजिये। राज्य में धन धर्म बढ़ता रहा जिससे शत्रुओं का कुल विनष्ट होता जाए। मित्रों से मिलकर रन सागर मे जयश्री को मथ लीजिये ॥३३॥

॥ विजय उवाच—दोहा ॥

राजा विरसिंह देव चिरु राज करौ भर लोक।
कुसलव ज्यों जह जाउ तह विजय होय सब लोक ॥३४

हे राजा वीरसिंह ! तुम समार में उसी प्रकार विजयी होकर राज्य करो जिस प्रकार कुश और लव करते रहे ॥३४॥

॥ प्रेम उवाच सवैया ॥

देवन की भुव देवन की दिन सेवन की रुचि चित्त वढ़ी जू।
हय की जय की जस की सिगरो जग जोति समूह मढ़ी जू॥
धर्म विधाननि श्री हरिदाननि वेद पुरानन जीव पढ़ी जू।

तीरथ न्हान सौं सुद्ध सयान सों युद्ध विधान सों प्रेम बढ़ौ जू ॥३४॥

देवताओं और ब्राह्मणों की सेवा में तुम्हारी रुचि दिन प्रति दिन हो। घोड़े, जस और यश को सारे संसार से जीत लो। धार्मिक विधान, हरिदान तथा वेद पुराणों आदि का पाठ होता रहे। तीर्थ में स्नान करने से चतुरता, शुद्धता और युद्ध के विधानों में तुम्हारी अनुरक्ति बढ़ती रहे ॥३४॥

॥ भोग उवाच—दोहा ॥

आखंडल ज्यौं भोगिवौ भूमंडल के भोग।
बलि यौं बावन बाँधि कै दूरि करोगे रोग ॥३६॥

इसी पृथ्वी मंडल का भोग करना और रोगों को बाल और बामन की तरह बाँध देना ॥३६॥

॥ दान उवाच—कवित्त ॥

ऐसे दीजे दासनि अभय दान वीरसिंह,
जैसे नरसिंह प्रह्लाद राखि लीने हैं।
ऐसे दीजे भूषण औ भोजन भवन हरि,
जैसे दिये हरषि सुदामा कौ नवीने हैं॥
ऐसैं सरणागतन दीजै जो बड़ाई बहु,
जैसे रामदेव बडे विभीषन कीने हैं।
ऐसे दीजै नागनि बसन दान केसौदास,
जैसे मेरे दीनानाथ द्रोपदी कौ दीने है ॥३७॥

जिस प्रकार से नरसिंह ने प्रह्लाद को अभय दान दिया था उसी प्रकार से आप भी अपने दासों को दीजिये। आभूषण, भोजन भवन भी उसी प्रकार दीजिये जिस प्रकार कृष्ण ने सुदामा को दिए थे। शरणागतों को उसी प्रकार बड़ाई दीजिये जिस प्रकार राम ने विभीषण को दी थी।

नम्र लोगों को उसी प्रकार वस्त्र दीजिये जिस प्रकार दीनानाथ ने द्रोपदी को दिए थे ॥३७॥

॥ उदय उवाच—दोहा ॥

राज तुम्हारे राज कौ उदय होय सब काल।
प्रभु पियूपनिधि कौ प्रगट ज्यौं प्रभाव भुव भाल ॥३८॥

तुम्हारे राज्य का सभी कालों में उदय उसी प्रकार होता रहे जिस प्रकार पियूषनिधि का प्रभाव सभी को प्रकट है ॥३८॥

॥ विवेक उवाच—कवित्त ॥

तुमकौ जु देय मन ताकौं तुम देउ धन,
चाहे तुम्हैं चित्त मैं सु चहु ओर चाहिये।
तुमकौं बड़ो कै जानै ताकहँ बड़ाई देउ,
सपनैंही देहि दुख दुखही सुदाहियैं ॥
जोई जोई जैसे भजै ताही ताहां तैसै भजो,
केसौदास सबही की मति अब गाहियै ॥
वीरसिंह जुग जुग राज करो इहि विधि,
थिर चर जीवनि की जीविका निबाहियैं ॥३९॥

जो तुम्हें अपना मन दे उसे आप धन दें। यदि तुम्हें कोई चित्तसे चाहता है तो उसी तरह तुम सब समय चाहते रहो। तुम्हें बड़ा करके जो माने तो तुम उसे बड़ाई दो और यदि कोई स्वप्न में दुख देने की इच्छा करता है तो उसे दुख दो। जो जिस प्रकार से तुम्हारे साथ व्यवहार करता है उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करो। लोगों की जीविका का निर्वाह करते हुए वीरसिंह युग-युग तक राज्य करो ॥

॥ भाग उवाच—दोहा ॥

राज तुम्हारो भाग कौ भव मैं बढ़ै प्रताप।
सब कोई वन्दन करैं गंगा के सम आप ॥४०॥

तुम्हारे राज्य में प्रताप बढ़ता रहे। आपकी सभी लोग वन्दना गंगा के समान करें ॥४०॥

कवित्त

बैठे एक छत्र तर छाँह सब छिति पर,
सूरज कमल कुल हरिहित मति है।
तिक्तधाम लोचन कहत गुन केसोदास
विद्यमान लोचन ह्वै दुखियतु अति है॥
अकर कहावत धनुष धरै केसोदास,
परम कृपाल पै कृपानि कर पति है।
चिरु चिरु राज करौ राजा वीरसिंह,
तुम लोग कहैं नरदेव कैसी गति हैं॥४१॥

जिस प्रकार सूर्य सभी कमलों का समान रूप से हित करता है उसी प्रकार आप भी सिंहासन पर बैठ कर सभी का हित करें। तिक्त लोचन तुम्हारे गुणों का पान करते हैं और उन्हें विषमा नेत्रों से देखते हैं। धनुष धारण किए हुए भी अकर कहाते हैं। कृपाण के स्वामी होने पर भी कृपाल कहाते हैं। हे वीरसिंह ! तुम युग युग तक राज्य करो और तुम्हें सभी लोग नरदेव कहें॥४२॥

चित्रहीं में मित्र वर्ण सकर विलोकियत,
व्याह ही में नारिनि कै गारिन को काज है।
ध्वज कम्प जोगिनी सी चक्र है वियोगी,
कहैं केसोदास मित्र जागी कुमुद समाज हैं॥
मेघै तो घरनि पर गजत नगर घेरि,
अपजस डर जसही को लोभ आज है।
राजा मधुकरसाहि सुत राजा बीरसिंह,
चिरु चिरु राज करौ जको ऐसो राज है॥४२॥

चित्रों में ही मित्र वर्ण सकर दिखाई देता है और व्याह के अवसर पर ही स्त्रियों की गालियाँ सुनाई पड़ती है। कम्पित ध्वज योगिनी के चक्र के समान है और वियोगी कहते हैं कि मित्र योगी कुमुद समाज है।

घरों पर गर्जना केवल मेघों की ही होती है और डर केवल अपयश का है और लोभ केवल यश का है। इस प्रकार का जिसका राज्य है वह वीरसिंह युग-युग तक राज्य करता रहे ॥४३॥

॥ कन्हरदास—उवाच ॥

अमल चरित तुम बैरिन मलिन करो,
शुद्ध कहे साधु पर दार पिय अति है।
एकाथलत पै जग जन जिय द्विपद,
बिलोकि थित जबहु पद गति ॥
भूपन बसन युत सास धरैं भूमि भार,
भू पर फिरत सुभ्रभूत भुवपति है।
रजसिंह लीन्हें साथ राखौ गाय ब्राह्मननि,
चिरजीवै वीरसिंह अद्भुत गति है॥४३॥

तुम्हारा चरित्र स्वच्छ है, मलिन शत्रुओं को तुम शुद्ध कर दो। साधु कहते हैं कि दूसरी स्त्रियों को अत्यधिक प्रिय है। सारे ही लोग एक पथ गामी हैं किन्तु द्विपद गामियों को भी अच्छी गति प्राप्त है। भूपन वस्त्रों को सास भूमि का भार धारण किए हुए पृथ्वी पर घूमती हुई शुभ्रभूत भुवपति है। रानसिंह को साथ में रखते हुए गाय और ब्राह्मणों की रक्षा करते हुए आप चिरजीवी रहें ॥४४॥

॥ छीतर मिश्र—उवाच ॥

जीवै चिर वीरसिंह जाको जस केसौदास,
भूतल है आस पास सागर कौ बास सौ।
सागर कौ बड़ भाग वेप सेप नागनि को,
सेप जू में सुरदानि विष्णु कौ निवास सौ॥
विष्णु जू में भूरिभाव भव कौ प्रभाव जैसौ,
भव जू के भाल में विभूति के विलास सौ।

भूति माह चन्द्रमा सौ चन्द्र मैं सुधार कैअसु,
अमनि मैं सोहै चारु चन्द्र कौ प्रकास सौ ॥४५

वह वीरसिंह चिरजीवी रहे जिसका यश पृथ्वी से लेकर सागर तक फैला हुआ है। सागर का बड़ा भाग है कि उसमें शेष नाग जी वास करते हैं जिनके कारण विष्णु जी भी वहां निवास करते हैं। विष्णु जी में भूमिभाव भव के प्रभाव के समान है और भव जू के भाल में विलास के समान है। भूति में चद्रमा और चद्रमा में अमृत का अंश चन्द्रमा के प्रकाश की भाँति शोभित होता है ॥४५॥

राजा वीरसिंह नरसिंह जीति राजसिंह,
दीरघ दुमह दुख दासन बिदारिये।
केसोदास मन्त्र दोष मित्र दोष ब्रह्मदोष,
बेद दोष दीन दोष देस तें निकारियें ॥
कलह कृतघ्नी क्रूर सारे महि मण्डल के,
बलिखड खड खंड खड करि डारियें।
वञ्चक कठोर ठेलि कीजै वार आठ आठ,
झुड पाठ कराठ पाठ कारी काट मारियें ॥४६॥

हे राजा वीरसिंह ! युद्ध में राजसिंह को जीत करके दुखों को मिटा दो। मत्र दोष, मित्र दोष ब्रह्मदोष, वेद दोष, दीन दोष को देश से निकाल दीजिये। कलह और कृतघ्नी लोगों ने खड-खड कर दीजिये वञ्चक तथा कण्ठ पाठ कारियों को काट-काट करके मार डालिये ॥४६॥

॥ साहिबराय—उवाच ॥

बैरी गाई ब्राह्मन को काल सब काल जहाँ,
कवि कुलही के सुबरन हर काजु हैं।
गुरु सेज गामी एक बल के बिलोकियत,
मतगिनी के मतवारै कैसो साजु है ॥
अरिनगरिनि प्रति करत अगम गौन,

दुर्गनिही केसोदास दुर्गति सी आजु है।
राजा मधुकरसाहि सुत राजा बीरसिंह,
चिरु चिरु राज करौ जाको ऐसो राज है ॥४७॥

गाय और ब्राह्मणों से द्वेष रखने वालों का जहां सदा काल हो और कवियों के कुलों का मान हो। गुरु सेज मार्गों ही केवल दिखाई देते हैं और मातंगिनी के मतवारे की भांति राज है। अगम शत्रुओं की कदराओं और दुर्गों में तू जाता है। हे मधुकर शाह के पुत्र वीरसिंह। तुम युग-राज्य करते रहो ॥४७॥

॥ उदैमनि मिश्र—उवाच ॥

सब सुखदायक हौ सब गुन लायक हौ,
सब जगलायक हो अरिकुल बन हर।
आखर दुहू कै रीझ पाखर बनाये गज,
बाखर बनाय गजराज देय राज वर॥
चिरु चिरु जीवौ राजा बिरसिंह तुम,
केसौदास दीबौ करै आसिखा अमेय नर।
हय पर गय पर पलिग सुपीठि पर,
अरि उर ऊपे अवनीसनि के सीस पर॥४८॥

सभी को सुख देने वाले, सभी गुणों से युक्त शत्रुओं का विनाश करने वाले हो। दो अक्षरों की कविता पर भी प्रसन्न होकर दान में हाथियों को दे देते हो। हाथी घोड़ों की पीठ पर शत्रुओं के हृदय पर, पृथ्वी के शीश पर बैठ कर तुम युग-युग तक राज्य करते रहो ॥४८॥

दुर्जन कमल कुह्मलानेई रहत मित्र,
फूलेई रहत कुवलय सुखधाम जू।
बिछुरेई रहे चक चकई ज्यों आठों जाम,
चौंक चौंक परैं चित्त चौहू कोप त्रास जू॥
बीरसिंह राजचन्द्र तेरे मुख चन्द्रमा की,
चन्द्रिका की चारु निसिवासर प्रकास जू।

सोई कीजै साहिब समुद्र मधुसाहि सुत'
देखिबोई करैं जू चकोर केसादाम जू ॥४६॥

दुर्जन कमल सदा कुम्हलाया हुआ ही रहता है और कुवलय सदा खिला रहता है। जिस प्रकार से चकवा चकवी आठों याम बिछुड़े रहते है और बार-बार भय से चौंक पड़ते हैं। तुम्हारे चंद्रवत मुख का रातदिन प्रकाश फैला रहता है। हे वीरसिंह अब कुछ ऐसा ही कीजिये जिससे चकोर चकवी को देखा करें ॥४६॥

॥ धर्म उवाच—सवैया ॥

करौ चिरु बीर नरपति बामन के पद सौं पद बाढ़ौ।
दु.ख ह्रौ नित दाननि के नृप विक्रम ज्यौं करि विक्रम गाढ़ो॥
भूतल तै कहि केसव बेगि दै दारिद दुष्टन को गहि काढ़ौ।
ऐसहि भांति सदा तुमसों हरहो हरि सो गुरु सों पूवि बाढ़ौ॥५०॥

तुम सदैव राज्य हो किया करो और तुम्हारा बामन की भाति पैर बढ़ता ही रहे। विक्रमादित्य की भांति विक्रम करो और दानों के दुखों को हर लो। इस पृथ्वी से पकड़ कर दुष्टों को निकाल दो। इसी प्रकार तुम सदैव फलते फूलते रहो और गुरु का प्रति तुम्हारा अनुराग बढ़ता रहे ॥५०॥

दोहा

सबके लै सब आसिखनि सब सुख दै सुख पाई।
सिंहासन तै उतरि प्रभु गहे धर्म के पाई ॥५१॥

सब के आशीर्वादों को लिया और सभी को सुख देकर सुखी हुई। सिंहासन से उतर कर वीरसिंह ने धर्म के पैर पकड़ लिये ॥५१॥

धर्म कह्यो सुखपाई कै माँगो वर वर मित्त।
देहु मया कै तानि उर जौ प्रसन्न हौ चित्त ॥५२॥

धर्म ने कहा कि हे मित्र! तुम वर माग लो। यदि आप प्रसन्न हैं तो कृपा करके मुझे तीन वर दें ॥५२॥

बीर चरित सन्तन सुनत दुख की बंस नसाय।
मो उर बसहु बढ़ाय जों जहांगीर को आय ॥५३॥
सतो का वीर चरित्र सुनते ही दुख का वश नष्ट हो जाय। दूसरे मेरे हृदय में बास करते रहो ॥५३॥

आसिष दै वर तीन दै दै सिष परम प्रधान।
धर्म भये सुख पाई के केसव अन्तरध्यान ॥५४॥
धर्म तीना वर आशीर्वाद और शिक्षा देकर अन्तर्धान हो गया ॥५४॥

इति श्रीमत् सकल भूमंडलाखंडलेश्वर महाराजाधिराजा राज वीरसिंह देवचरित्रे विंशत्रिंशत्तमो प्रकाशः ॥३३॥

॥ इति समाप्त ॥